श्री सहजानन्द शास्त्रमाला

सिद्धभक्ति प्रवचन

अध्यात्मयोगी, न्यायतीर्थ पूज्य श्री १०५ क्षुल्लक
मनोहरजी वर्णी "सहजानन्द" महाराज

प्रकाशक:—
खेमचन्द जैन सर्राफ,
मन्त्री, श्री सहजानन्द शास्त्रमाला
१८५ ए, रणजीतपुरी, सदर मेरठ (उत्तर प्रदेश)

प्रथम संस्करण १००० मूल्य ५) रु०

परमात्म-आरती

ॐ जय जय अविकारी ।

जय जय अविकारी, ॐ जय जय अविकारी ।
हितकारी भयहारी, शाश्वत स्वविहारी ।।टेक।। ॐ
काम क्रोध मद लोभ न माया, समरस सुखधारी ।
ध्यान तुम्हारा पावन, सकल क्लेशहारी ।।१।। ॐ
हे स्वभावमय जिन तुमि चीना, भव सन्तति टारी ।
तुव भूलत भव भटकत, सहत-विपति भारी ।।२।। ॐ
परसम्बंध बंध दुख कारण, करत अहित भारी ।
परमब्रह्मका दर्शन, चहुं गति दुखहारी ।।३।। ॐ
ज्ञानमूर्ति हे सत्य सनातन, मुनिमन सचारी ।
निर्विकल्प शिवनायक, शुचिगुण भण्डारी ।।४।। ॐ
बसो बसो हे सहज ज्ञानघन, सहज शांतिचारी ।
टलें टलें सब पातक, परबल बलधारी ।।५।। ॐ

आत्म-कीर्तन

हूं स्वतंत्र निश्चल निष्काम । ज्ञाता द्रष्टा आतम राम ।।टेक।।

मैं वह हूं, जो है भगवान, जो मैं हूं वह है भगवान ।
अन्तर यही ऊपरी जान, वे विराग यहँ रागवितान ।।१।।

मम स्वरूप है सिद्ध समान, अमित शक्ति सुख ज्ञाननिधान ।
किन्तु आशवश खोया ज्ञान, बना भिखारी निपट अजान ।।२।।

सुख दुख दाता कोई न आन, मोह राग रुष दुखकी खान ।
निजको निज परको जान, फिर दुखका नहिं लेश निदान ।।३।।

जिन शिव ईश्वर ब्रह्मा राम, विष्णु बुद्ध हरि जिसके नाम ।
राग त्यागि पहुंचू निज धाम, आकुलताका फिर क्या काम ।।४।।

होता स्वयं जगत परिणाम, मैं जगका करता क्या काम ।
दूर हटो परकृत परिणाम, सहजानन्द रहूं अभिराम ।।५।।

अध्यात्मयोगी न्यायतीर्थ गुरुवर्य्य पूज्य श्री १०५ क्षुल्लक
मनोहर जी वर्णी "सहजानन्द" महाराज

सिद्धभक्ति प्रवचन

प्रथम भाग

प्रवक्ता—अध्यात्मयोगी, न्यायतीर्थ पूज्य श्री १०५ क्षुल्लक
मनोहरजी वर्णी "सहजानन्द" महाराज

सिद्धानुद्धूतकर्मप्रकृति समुदयान्साधितात्मस्वभावान्, वंदे सिद्धि प्रसिद्धयै निरुपमगुणप्रग्रहाकृष्टितुष्टः। सिद्धिः स्वात्मोपलब्धिः प्रगुणगुणगणोच्छादिदोषापहाराद्योग्योपादानयुक्त्या दृषद इह यथा हेमभावोपलब्धि. ॥१॥

सिद्धप्रभुकी भक्ति—इस भक्तिका नाम सिद्धभक्ति है। शरीररहित, रागादिक विभावरहित, अष्टकर्मोंसे रहित सिद्ध भगवानकी इसमे भक्ति की है। भक्तिका नाम भजन भी है। 'भज सेवाया' भज धातुका अर्थ सेवा है। मै सेवता हू, मै भजता हूं, मैं सिद्धको सेवता हूं। इस 'सेवन' शब्दमें यह भी अर्थ अन्तर्निहित है कि सिद्धको एकमेक करता हू। सिद्ध मुझमें एकमेक नही होते, किन्तु जैसे कि वस्तुतः सिद्धभक्तिमे अपने आपमे जो सिद्धप्रभुके सम्बंधमे ज्ञान किया, जो जानकारी बना रहे उनके गुणोका ध्यान करके, अपने स्वरूपका

स्मरण करके जो एक सहज आल्हाद उत्पन्न किया जा रहा है मैं उसे सेव रहा हू, और वस्तुत. इस आल्हादके होनेमे, इस विकल्पके होनेमे जो आश्रयभूत हुये है वे हैं सिद्ध महाराज। तो मै सिद्धको भज रहा हू, सिद्धकी भक्ति कर रहा हू। जिस सिद्धभक्तिको हमे अपने आपमे इस तरहसे भजना है कि अद्वैत भजन बन जाय, अद्वैत नमस्कार हो जाय। तो उस सिद्धके उस स्वाभाविक परिणमनको निरखकर अपने आपके स्वभावका परिज्ञान हो जाय और उस परिज्ञान स्वभावमे मै उपयोग उपयोग द्वारा एक रस हो जाऊँ, यही है सिद्धका अद्वैत नमस्कार अर्थात् अपने आपमे जो सिद्धस्मरणके समय एक शुद्ध स्थिति बनायी उसमे एक रस होकर, विभोर होकर मै निर्विकल्प हुआ, ऐसा निर्विकल्प रहू, इस प्रकारके अनुभवनको कहते है अद्वैत भजन। मै सिद्ध प्रभुको भजता हू और भजनेसे पहिले आती है वदन अवस्था। तो यहाँ 'वदन' शब्दसे कहा गया है, क्योकि आरम्भमे ही सिद्ध महाराजका जब हम स्मरण करने चले है तो शुरू-शुरूकी अवस्थामे भजन, सेवन, अद्वैत भक्ति आदि न आयें उससे पहिले प्रभुवदनकी बात कही है।

सिद्धके दो विशेषणोंका परस्पर सम्बन्ध—जो सिद्ध महाराज समस्त कर्म प्रकृतियोके समूहको जला चुके है, नष्ट कर चुके है उन सिद्धप्रभुको मै बन्दता हू। कैसे सिद्धप्रभुको मै बदता हू जिसने आत्मस्वभाव सिद्ध कर लिया है। आचार्यों

की कृतियोमे अथवा कवि सत जनोकी कृतियोमे जिन शब्दोंका प्रयोग किया जाता है विशेषरणोमे वे परस्परमे कार्य कारण आदिक सम्बन्ध रखते है। कर्मप्रकृतियोका जिन्होने विनाश किया है उन पुरुषोने आत्मस्वभावको साध लिया है। तो आत्मस्वभावकी सिद्धि कार्य है और कर्म प्रकृतिसमूहको जला देना कारण है अर्थात् कारणभूत कर्मप्रकृतिके विनाशसे आत्मस्वभावका पूर्ण साधन (सिद्धि) होता है। अब दूसरी तरहसे निरखिये। आत्मस्वभावकी साधना कारण है और कर्मप्रकृति समूहको नष्ट कर देना कार्य है। जिन पुरुषोने आत्मस्वभावका भेदविज्ञानके प्रयोगसे परिज्ञान किया है और फिर उपादेय रूपसे जानकर उस आत्मस्वभावमे ही उपयोग दिया है वे पुरुष कर्मप्रकृतियोको जला डालते है। कर्मप्रकृति कहा भावकर्मकी आदतको, उसको जला डालता है, फिर द्रव्यकर्मकी जो आदत है वह अपने आप दूर हो जाती है। यो आत्मस्वभावकी भावना और कर्मप्रकृति समूहका वियोग करना—इन दोनोमे परस्पर कार्यकारण भाव है। कर्मप्रकृतियोको दूर कर देने वाले, आत्मस्वभावको सिद्ध कर चुकने वाले सिद्धप्रभुकी मै वदना करता हू।

सिद्धभक्तियोग्य मस्रू—कैसा होता हुआ मै और किस प्रयोजनके लिये वदना करता हू—इन दोनोका भी प्रकाश इस छन्दमे दिया गया है। प्रभुके अनुपम गुणोका समूह परिज्ञान

जो है उसकी आकृष्टिमे तुष्ट होता हुआ यह मै वदना करता हू। वास्तवमे भक्तिपूर्वक वन्दना तब होती है कि जिनकी वन्दना की जा रही है। उनके गुणोमे इतना आकर्षण हो, और आकर्षण ही नही केवल, किन्तु ऐसा आकर्षण जिस आकर्षण से मैं स्वयं शान्त तृप्त हो जाता होऊँ, तब भक्तिपूर्वक वन्दना की क्रिया होती है। सो यह मैं उनके अनुपम गुणोके आकर्षण से तुष्ट होता हुआ वन्दना करता हूं। इस सिद्धभक्तिको किसने बनाया है, यह किसी पुष्ट इतिहासमे स्पष्ट तो कही उल्लेख देखनेमे नही आया, किन्तु ऐसा बडोके मुखसे सुनते आये है व प्रस्तावनामे उल्लिखित है कि भक्तियोमे जो प्राकृत भक्तियाँ हैं वे कुन्दकुन्दाचार्य द्वारा रचित हैं और जो सस्कृत भक्तियाँ है वे पूज्यपाद स्वामी द्वारा रचित है। और हम इन कृतियोको निरखकर ऐसा भाव भी बनाते हैं कि ऐसा हो सकता है।

सिद्धभक्तिका प्रयोजन—ये आचार्यदेव उन सिद्ध भगवान को किसलिये नमस्कार कर रहे है? सिद्धकी प्रसिद्धिके लिए। मेरे सिद्धि प्रकट हो, इसके लिए सिद्ध भगवानको नमस्कार कर रहे हैं। सिद्ध भगवानके नमस्कारके सम्बधमे दो मंत्र आते हैं—एक 'ॐ नमः सिद्धेभ्य.' और दूसरा—ॐ नम सिद्ध। ॐ नम सिद्ध भी बहुत प्राचीन मन्त्र है और इससे भी आप अदाजा लगा सकते है कि अति प्राचीन कालमे व तब ही नही, किन्तु अबसे करीब ५० वर्ष पहिले जब

अध्यापक लोग विद्यार्थियोंका अध्ययन प्रारम्भ कराते थे तब छोटे-छोटे बालकोको सबसे पहिले ॐ नमः सिद्ध को पढाते थे। यह मंत्र वे बालक लोग लिख नहीं सकते थे, किन्तु मुखसे कहलवानेकी परिपाटी थी। और थोडे ही अक्षर सीखनेके बाद सबसे पहिले ॐ नमः सिद्ध लिखना सिखाते थे। जो आजके देहातोमे रहने वाले वृद्ध पुरुष है वे इस बातको जानते होंगे। इस मंत्रको कुछ अशुद्ध रूपमे सिखानेकी रूढ़ि रही। ओनामासीघ। यह ॐ नमः सिद्धका बिगडा हुआ रूप है। अब आप अंदाज कर ले कि ॐ नम सिद्धं कितना प्राचीन मत्र है। तो ॐ नम. सिद्धेभ्य. और ॐ नम सिद्ध—ये दोनो ही मन्त्र सही है, पर प्रयोजन देखो—तो इसके अन्दर मर्म छिपा हुआ है उसपर दृष्टि डाली जाय तो द्वैत और अद्वैतकी भावनाका अंतर इसमे स्पष्ट होता है। ॐ नमः सिद्धेभ्यः मे सिद्ध भगवन्तोके लिये जो कि व्यक्तिशः अनन्तानन्त है उनका वदन किया है और ॐ नमः सिद्धं मे व्यक्ति सिद्धको न कहकर उन सिद्धोका स्वरूप एक जानकर उस सिद्धस्वरूपको ही सिद्ध कहकर उस सिद्धस्वरूपके अनुकूल अपने आपको करनेके लिये यहाँ नमस्कार किया है। 'नमः' शब्दका प्रयोग व्याकरण शास्त्रके अनुसार जहाँ होता है वहाँ चतुर्थी विभक्तिके योगमें होता है, जिसको कि नमस्कार किया गया है। 'नम इस व्याकरण सूत्र से चतुर्थी विभक्तिमे नमस्कार शब्द आता है, किन्तु अध्यात्मकी

प्रक्रियामे जिनको नमस्कार किया गया है उनके अनुकूल होने का प्रयोजन रहता है, इसलिये नम के साथ द्वितीया विभक्ति भी आती है, जिसका अर्थ होता है त अनुकूलयितु नम. । यह है सिद्धका भजन, सिद्धका सेवन, सिद्धके एकरस होनेका उद्यम । ऐसे सिद्धकी प्रसिद्धिके लिए मै सिद्ध भगवन्तको वन्दन करता हू । अब उस सिद्धका क्या स्वरूप है, जिस सिद्धिके प्रयोजनके लिये मै वदना कर रहा हू ? उस सिद्धका स्वरूप इस छन्दके उत्तरार्द्धमे कहा जाता है ।

सिद्धि, सिद्ध और वन्दनका प्रयोजन—सिद्धि शब्द षिध् धातुसे बना है जिसस सिद्धिका अर्थ है उत्कृष्ट गति, उत्कृष्ट उपलब्धि, विकारोका विध्वस । सो निर्विकार, परिसमृद्ध जिनकी परिणति हुई है उन्हे कहते है सिद्ध भगवान । सर्व आत्माओमे अति विशुद्ध, सारभूत, सर्वप्रकारके सकटोसे विमुक्त सदाके लिये निर्विकल्प स्वच्छ वने रहने वाले ये सिद्ध भगवन्त उत्कृष्ट है, आदर्श है । चूंकि जैसी सिद्धि उन्होने प्राप्त की है, जो दशा उन्होने प्राप्त की है वही अवस्था हम आप सबकी हो सकती है, वैसा ही स्वरूप हम आपका है, अतएव सिद्धिकी प्रसिद्धिके लिये सिद्ध भगवानका वन्दन किया गया है । प्रभुकी वन्दना करनेके दो ही तो ध्येय हो सकते है—एक तो यह कि प्रभु सर्व समर्थ है, हमे सुख दु ख देते है, उसकी वन्दना करे तो दुःख न देगा, सुख देगा । पर यह प्रयोजन तो लौकिक

मूर्ख जनोका है जिन्हे भगवत्स्वरूपका परिचय नही। दूसरा प्रयोजन यह हो सकता है कि जैसी भगवान सिद्धकी शुद्ध अवस्था है, सकटहीन, विकारहीन जैसी पवित्र आनन्दमय अवस्था है ऐसी अवस्था मेरी भी हो सकती है। सो मै उस पवित्र अवस्थाका ध्यान करूँ, जो अवस्था स्वरूपके अनुरूप है, जिस अवस्थाका ध्यान करनेसे स्वरूपका ध्यान हो जाता है और इस ही ध्यानके प्रसादसे आत्माको स्वरूपमग्नता प्राप्त हो सकती है, स्वात्माकी उपलब्धि हो सकती है। इस प्रयोजनसे परमार्थ प्रभुकी परमार्थ वन्दना होती है। तो यही एक मात्र प्रयोजन है, दूसरा प्रयोजन रखना एक भूल है, अज्ञान है। तो यहाँ आचार्यदेव सिद्ध भगवतोसे सिद्धिकी प्राप्तिके लिए वन्दना कर रहे है। वह सिद्धि क्या चीज है? उसका लक्षण इस छन्द के उत्तरार्द्धमे कहा जा रहा है।

सिद्धिका भाव—स्वात्माकी उपलब्धि होनेका नाम सिद्धि है। सिद्धि शब्दका यह अर्थ इतना व्यापक है कि जिस चाहे विशुद्ध अवस्थाकी सिद्धिका अर्थ कर लीजिये। अष्ट कर्मविमुक्त सिद्ध भगवन्तकी सिद्धि, अरहतदेवकी सिद्धि, उत्कृष्ट अन्तरात्मा के गुणस्थानोमे निर्विकल्प अनुभवस्थानकी सिद्धि और सम्यग्दर्शनरूप सिद्धि। सब जगह इस सिद्धिका अर्थ घटित हो सकता है, पर सिद्ध भगवन्तोका प्रसग है तो हमे उत्कृष्ट सिद्धि का स्वरूप ध्यानमे रखना है। अपने आत्मकी उपलब्धि होनेका

नाम सिद्धि है। आत्माकी प्राप्ति उपयोग द्वारा होती है। कही इस आत्माको प्राप्त करनेके लिये गमनागमन नही करना है। कही जाकर इसे पकडना नही है, किन्तु वह अन्तस्तत्त्वमय आत्मा आत्मामे शाश्वत विराजमान है और जिस रूपमे सहज है उसी रूपमे प्रकट हुआ है। उसे स्वात्माकी उपलब्धि कही जाती है। उस रूपकी शक्ति इस आत्मामे सतत है अथवा जिस शाश्वत स्वरूपको ग्रहण करनेपर आत्मामे शुद्ध पर्यायोंके विकासका तॉता लेकर पूर्ण विकसित हो जाता है वह शाश्वत आत्मस्वरूप यही है, हम आपमे है। केवल विषयकषायोंके आकर्षणमे परदृष्टि करके हम अपनेसे रीते बन रहे है और इसी कारण स्वात्माकी हम उपयोग द्वारा प्राप्ति नही कर पाते।

स्वात्मोपलब्धिका प्राथमिक प्रकाश — सम्यग्दर्शनरूप सिद्धि शाश्वत सहज ज्ञानस्वरूप आत्माकी अनुभूति प्रतीति प्राप्तिके मायने है और यह प्राप्ति एक ऐसे आश्चर्यके साथ होती है जैसे किसी पुरुषके हाथमे एक स्वर्णकी अगूठी हो और भूल गया हो कि वह अगूठो है कहाँ? तो घरमे देखता है, सन्दूकमे देखता है, वह इतना ज्यादा भूल गया कि मानो दाहिने हाथ मे तो वह अगूठी है और सदूक रोज तो दाहिने हाथसे खोलता था, पर आज वह बाये हाथसे सन्दूक खोलकर देख रहा है। तो देखो अपने ही हाथमे वह स्वर्णकी अगूठी वह पुरुष रखे

हुये है, पर उसे भूलकर उसके ही ख्यालमे वह व्यग्र रहता है और उसकी प्राप्ति इतनी सहज है कि ख्यालभर करना है कि यही तो है, मेरे ही हाथमे तो है। तो जैसे उसका ख्याल न रहनेसे उसमे व्यग्रता है इसी तरहसे मानो कि आत्मा यह स्वय है ज्ञानस्वरूप, आनन्दस्वरूप, रचा ही गया है यह ज्ञान और आनन्दसे। न कोई ज्ञानकी कमी है, ज्ञानमय ही तो है यह, न आनन्दकी कमी है, क्योकि आनन्दमय ही तो है यह। कौनसी कमी अब रह गयी जिसके लिये यह जीव व्यग्र होता फिर रहा है। यह ज्ञानको चाहता है। प्रत्येक जीव ज्ञानको चाहते है, मेरे ज्ञान बढे, पर ज्ञानस्वरूप तो है यह स्वय। यदि इसको अपने ज्ञानस्वरूपकी अनुभूतिमे सन्तोष हो गया तो इसने सब ज्ञान पा लिया। अब कौनसा ज्ञान चाहिये ? इसने यदि अपने उस सहज स्वाधीन आत्मीय आनन्दका अनुभव कर लिया तो अब इस अनुभवके बाद किस जातिके आनन्दके अनुभव करनेकी दौड लगायी जाय ? ज्ञानानन्दमय ही है यह स्वय। ऐसा ज्ञानानन्दस्वभाव निज आत्माके उपयोग द्वारा प्राप्ति होनेका नाम परमार्थ सिद्धि है।

आत्मोपलब्धिका विधान—यह आत्मउपलब्धि कैसे होती है ? यह आत्मगुणोको ढाकने वाले दोषोके दूर होनेसे होती है। प्रबल प्रकृष्ट गुण वाले अत्यन्त महिमानिधान गुणसमूहको ढाकने वाले जो दोष है, निश्चयसे तो विषय कषाय आदिक

विभाव परिणाम दोष है। इन दोषोके दूर होनेसे इस स्वात्मा की उपलब्धि होती है। यही अपने आपकी स्थितिसे अदाजा लगा सकते है कि जब हम इन्द्रियके विषयोकी ओर दृष्टि लगाये हुये है तो अपने आत्माकी सुधि भी नही हो पाती। तृष्णा जगती है, सन्तोष नही हो सकता है और जब बहुत स्वच्छ भावमे हो, विषय कषायोके परिणाम न सता रहे हो, अपने आपका कभी परिचय भी पा लिया हो उस समय देखिये कि इसकी दृष्टिमे यह सहज ज्ञानानन्दस्वरूप आत्मा ऐसा विराज रहा है, जैसे कोई यह कह सकता है कि यह मै। प्रत्यक्षीभूत मै हो जाता है। तो स्वात्माकी उपलब्धि गुणोको आच्छादने वाले, आवरण करने वाले विभाव दोषोके अपहार से, कर्म दोषोके अपहारसे होती है।

सिद्धिका साधन--यह सिद्धि किस उपायसे होती है? उस उपायका वर्णन किया है—योग्योपादानयुक्त्या" इन शब्दोमे। योग्य उपादानके योगमे सम्बधसे नुयोगसे इस स्वआत्माकी उपलब्धि होती है। जैसे कि स्वर्णपाषाणमे जब योग्य उपादान का सयोजन हो जाय, योग्य द्रव्य, क्षेत्र, काल, भावका मिलाप हो जाय तो स्वर्णपाषाणमे स्वर्णभावकी उपलब्धि हो जाती है। योग्यप्रक्रिया मिली, योग्य सम्बन्ध आ गया, उपादान योग्य है, विधि योग्य बनी, वहाँ स्वर्ण पाषाणमे कूडा-कचरा हटकर केवल एक शुद्ध स्वर्णताकी उपलब्धि हो जाती है, इस

प्रकार जब यह आत्मा योग्य साधनोंको प्राप्त करता है, विशुद्ध उपदेश मिला, विशुद्ध वातावरण मिला, सम्यग्ज्ञानीका सत्संग मिला, प्रभुके स्मरण चरणोंकी छाया मिली, चित्त शान्त हुआ उस समय इसको अपने इस सहज ज्ञानानन्दस्वरूपकी अनुभूति जगती है और वहाँ यह आत्माको प्राप्त कर लेता है। यही है सम्यक्त्वस्वरूप सिद्धि। यह सिद्धि, यह अनुभूति अधिक देर तक टिके ऐसा जो प्रयत्न है वह चारित्र द्वारा होता है। तब इसकी सिद्धि और विशुद्धि बढ़ी, यों बढ़ते-बढ़ते जब समस्त गुणोंके ढाकने वाले दोषोंका सर्वथा दूरीकरण हो जाता है तब इसको पूर्ण सिद्धि मिली, किन्तु सिद्धिमें बाधा डालनेके कारण-भूत जो पहिले थे, ऐसे शरीर और अघातिया कर्मोंका सम्बन्ध वह अब भी है। उसके दूर होनेपर यह सर्वतः विशुद्ध सिद्ध प्रभु हो जाता है। उसकी सिद्धि सर्वसिद्धि है। उस सिद्धिकी प्राप्तिके लिये आचार्यदेव अपने भाव रख रहे है। मैं उस सिद्धि के लिए वंदना करता हूं।

नाभावः सिद्धिरिष्टा न निजगुणहतिस्तत्तपोभिर्न युक्ते-रस्त्यात्मानादिबद्धः स्वकृतजफलभुक् तत्क्षयान्मोक्षभागी। ज्ञाता द्रष्टा स्वदेहप्रमितिरुपसमाहारविस्तारधर्मा, ध्रौव्योत्पत्तिव्ययात्मा स्वगुणयुत इतो नान्यथा साध्यसिद्धिः ॥२॥

आत्मस्वरूप सिद्धिका मन्तव्य—सिद्धिका क्या स्वरूप है और किस प्रकार होती है ? इस तत्त्वको विस्तारपूर्वक बताते

के लिये यह दूसरा छन्द कहा जा रहा है। अभावका नाम सिद्धि नही है। प्रथम तो उन अभिप्रायोकी बात कही जा रही है जो सिद्धिके विरुद्ध अभिप्राय है। कोई सिद्धान्त आत्मा के विनाशका ही नाम सिद्धि मानते हैं। जब तक आत्माका असिद्धत्व है तब तक आत्मा दुखी है। जब इस आत्माका अभाव होगा तो सिद्धि ८/६ होगी। यहाँ शका की जा सकती है कि जो मंतव्य आत्माके अभावका नाम सिद्धि मानते हैं उनके यहाँ तो आत्मा क्षणिक है, क्षण-क्षण बाद अभाव होता रहता है, एक-एक क्षण बाद प्रत्येक आत्माका निर्वाण हो जाता है तब फिर और सिद्धि क्या ? उनके भावानुसार सिद्धि का अर्थ यह है जब तक आत्मामे परम्पराकी बात चलती है तब तक उन्हे संसारी माना है और जब उन आत्मावोमे परम्परा मिट जाती है तो मुक्ति होती है। एक शरीरके आधार मे क्षण-क्षणमे निरन्तर नवीन-नवीन आत्मा पैदा होते रहते हैं क्षणिकवादियोके सिद्धान्तमे। ऐसा प्रश्न किया जानेपर कि जिस जीवने किसीको कुछ रुपया उधार दिया वह जीव तो नष्ट हो गया। अब उस शरीरमे एक नया जीव आया। क्षण-क्षणमे नये-नये जीव आते है इन क्षणिकवादियोके सिद्धान्तमे। तो रुपया देने वाला जीव तो अब नही रहा। फिर और जीवो को याद कैसे रहता है कि मैने इन्हे रुपया दिया और इनसे अपनेको रुपया लेना चाहिये ? तो वहाँ समाधान उनकी ओरसे

यह है कि यह आत्मा क्षण-क्षणमे नष्ट तो होता है, पर अपना चार्ज दूसरे आत्माको सौप करके यह नष्ट होता है। तो इस आत्माने अपना चार्ज दूसरेको सौपा, दूसरेने तीसरेको। और इस देहमे जितने आत्मा हो रहे है वे सब अपना सस्कार दूसरे को सौंप करके नष्ट होते है। तो आत्मा-आत्मा होते रहनेकी परम्परा मिटे तब मुक्ति बन सकती है। जब तक यह आत्म-परम्परा है तब तक ससार है—एक बात।

नैरात्म्यरूप सिद्धिका मन्तव्य—दूसरी बात—इस अभाव रूप सिद्धिका मन्तव्य रखने वाले सिद्धान्तका दूसरा नाम नैरात्म्यवाद भी है। मै आत्मा हू—इतनी बुद्धि जब तक रहेगी तब तक ससारमे रुलता रहेगा। मै आत्मा हू, यह बुद्धि मिटे, विनाश हो तो इसका निर्वाण है। जैसे दीपकका निर्वाण क्या ? एक तेलका दीपक ले लीजिये। दीपकमे प्रतिक्षण तेल की एक-एक बूंद जलती है। वही दीपकके रूपमे आ रहा है। और जैसे मान लो कि एक हजार बूद भरा दीपक है तो वे एक हजार बूद क्रम-क्रमसे उस दीपकके लौ के पास आते है और वे बूद दीपक बन जाते है और एक तेलकी बूँदका जो उजाला है उसके बाद दूसरे तेलकी बूदका जो उजाला आया उनके बीचसे ऐसा अन्तर तो नही देख पाते कि इस बूदका उजाला था अब वह तो मिट गया, अब दूसरी बूँदका उजाला आया है। इस बीच आपने कभी अधकारक अनुभव किया

क्या ? नही मालूम पडता । तो जैसे लगातार वह बूँद दीपक बन-बन करके जलता रहता है, उनकी निरन्तर परम्परा बनती रहती है तो ऐसा लगता है कि वह दीपक है । वही तो दीपक है जो १५ मिनटसे जल रहा है वही तो दीपक है । तो यह बात वहाँ असत्य है कि १५ मिनटसे जो जल रहा है वही दीपक है । इस पकारसे सिद्धातमे यह बात असत्य है कि जो १० वर्षसे हो, २५ वर्षसे हो, ५० वर्षसे हो वही तो मै आत्मा हू । इसको कहते है आत्मवाद । जब तक आत्मा मानने की बात चित्तमे रहेगी तब तक ससारमे दुख उठाना पडेगा । ऐसा क्षणक्षयवादी ससारका स्वरूप बताते है, और जैसे उस दीपकमे तेल परपराके वीच किसी भी तेलकी बूदका धोखा हो जाय वह बूँद न जले तो सारा दीपक बुझ गया । उस परपरा के बीचसे इसकी बूद खिसकी, वह काम न कर सकी तो अब प्रदीप कहाँ ठहरेगा ? इसी प्रकार जब कोई आत्मा अपने सस्कार दूसरे आत्माको न सोपे और सस्कार सौंपे बिना आत्मा नष्ट हो जाये तो वहाँ उसका निर्वाण हो गया । ऐसा अभाव-रूप निर्वाण माना है किन्ही लोगोने ।

अभावरूप सिद्धिकी असिद्धि—आचार्यदेव कहते है कि आत्माके अभावका नाम सिद्धि नही है । कोई पुरुष अपना अभाव करना पसद न करेगा । देखो हमारा अभाव होगा, विनाश हो जायगा, हम कुछ न रहेगे ऐसी दशा चाहते हो

क्या ? कोई न पसद करेगा । विकास सभी पसद करेंगे, पर विनाश नही । दूसरी बात यह है कि उस निर्वाणके प्रयत्नके लिये हम नो प्रयत्न करें और हम क्षणिक है सो गुजर जायेंगे ? इस प्रयत्नका लाभ आगे कोई दूसरा आत्मा उठायेगा । तब फिर ऐसा प्रयत्न करनेकी आवश्यकता क्या है ? कौन व्यर्थका प्रयत्न करना चाहेगा ? तो अभावका नाम सिद्धि नही है । आत्माका अभाव भी होता नही है । जो सत् है उसका सर्वथा अभाव किस प्रकारसे होगा ? जो है, जो सत् है, जो स्वरूप है वह सर्वथा कैसे मिट जायगा ? किसी भी सत्का सर्वथा अभाव नही होता, उसकी पर्याये बदलती है । यह मैं आत्मा एक सत् पदार्थ हू, इसका अभाव हो जायगा, यह कल्पना ही न कीजिये । ऐसा त्रिकाल हो ही नही सकता । तब मुक्ति किसलिये चाहिये ? मुक्तिके मायने आत्माकी शुद्ध दशा । शुद्ध दशामे कोई आकुलता नही है, कृतार्थता है । जो कुछ किया जाना चाहिये था आत्माके भलेके लिए वह सब किया जा चुका है अथवा वे सर्व प्रकारसे ऐसे कृतार्थ हो गये है कि बाह्यमे कुछ करनेका विकल्प भी नही, रचमात्र यत्न भी नही । ऐसी कृतार्थता निष्ठितार्थता सिद्ध भगवन्तोको प्राप्त हुई है । यही है आत्माकी शुद्ध दशा । अशुद्ध दशा मिटे और ऐसी शुद्ध अवस्था जहां मिले यही तो चाहिये है ना । बस इसके लिये मुक्तिका

यत्न होना चाहिये।

अहितमय रवैया बदलनेका अनुरोध--भैया! हम आप कुछ थोडी देर अपने आपके वर्तमान रवैयेपर ध्यान दे तो विदित होगा कि हमारा कितना तो सहज आनन्दका उपाय है और उसे भूलकर क्यो कठिन दु साधनामे लग बैठे? भला बतलावो आप, अपने जीवका किसी दूसरेके साथ कुछ नाता लगा हुआ है क्या? घरमे जो दो-चार जीव आये है, इकट्ठे हुये है, पैदा हुये है, इन जीवोके साथ आपका कुछ सम्बध है क्या, नाता जुडा है क्या? इन अनन्तानन्त जीवोमे से अटपट अपने उदयके अनुसार आपके घरमे ये जीव आ गये है। यदि ये जीव न आते, कोई और जीव आते तो क्या यह सम्भव न था? बहुत कुछ सम्भव है। तब फिर यह मेरा पुत्र है, यही मेरी स्त्री है, यही मेरा पिता है, यही मेरा सर्वस्व है, ऐसा जीवका जीवके साथ कोई नाता लगा है क्या? व्यवहारकी बात, व्यवहारधर्मकी बात, व्यवस्थाकी बात अपनी पात्रता रखनेके लिये मानी जाती है मानो, पर यह तो बतलावो कि वे जीव आपके कुछ हो गये क्या? उनसे आपका कुछ सम्बध है क्या? यह बात बहुत गम्भीरता और तत्परताके साथ साथ जाननेकी कही जा रही है। इस ओर यदि प्रमाद रखा तो धर्मके नामपर आप कितना ही श्रम कर डाले, पर भीतर मे कुछ भी विकास न होगा, कुछ भी परिवर्तन न आयगा।

पहिले यह निर्णय तो रखे कि परिवारमे जितने जीवोंका सबध है इनमेसे किसी भी जीवके साथ मेरा नाता नही है। इस निर्णयके बिना आप धर्मके नामपर कितना ही गाये, बजायें, कितना ही कुछ करे, पर धर्म जहाँ होना है, भीतरमे तो पकाश आना चाहिये, जब यही बात नही है तो धर्म कहाँसे पाया, धर्म किसका नाम है ?

मोहमें व्यर्थका अनर्थ प्रयास—भैया ! अपना रचमात्र सम्बध इस समागमसे नही है, लेकिन लोग क्या कर रहे है ? धनके सग्रहमे होड लगा रहे है। उनसे पूछा जाय कि भाई क्यो होड लगा रहे हो ? आखिर यह स्थिति तो तुम्हारी होगी कि यहांसे जाना पडेगा। देह भी साथ न देगा, यहांका फिर कुछ न रहेगा। इस भवके छोड़नेके बाद जिन जीवोको खुश रखनेके लिये, समृद्धिशाली बनानेके लिए रात-दिन तृष्णा की, अपनेको व्याकुल बनाया, वे क्या रचमात्र भी मददगार हो सकेंगे ? मोही जीवोने एक श्राद्ध करनेका विभ्रम किया है—मरेके बादमे उस जीवके पास भोजन, वस्त्र, चारपाई आदि पहुचाना है तो किसी पडा जी को ये चीजे दे देते है, वह पंडा जी भी कह देता है—हां वे सभी चीजें हम तुम्हारे उस जीवके पास पहुचा देगे। इस प्रकारसे उन लोगोको अपने लिए जिन चीजोकी जरूरत हुई, लोगोसे कह देते है कि तुम हमे अमुक चीज दे दो, हम उस चीजको तुम्हारे घरके मरे हुये अमुक

यक्तिके पास पहुचा देंगे। परिवारके लोग दे देते हैं और वे
ससे अपना काम चलाते है। पर जरा विचार तो करो कि
स आत्माको अब वे सब चीजें मिल सकती है क्या ? कुछ
द्धि लगाकर सोचोगे तो स्पष्ट विदित होगा कि जो गुजर गया,
ला गया वह जहाँ गया, जैसा भाव रख रहा, जैसे कर्म
ाधा उस अनुकूल अपनी जगहपर होगा और वैसा ही सब
छ भोग रहा होगा। उसपर अब यहा जिन्दा रह जाने वालो
ा कोई वश नही चल सकता। तो कितना व्यर्थका मोह ?
छ आना नही, जाना नही, कुछ सम्बध नही, कुछ मिलना
ही, पर रात-दिन विकल्प किये जा रहे है। विकल्परहित
वशुद्ध ज्ञानमय यह मै आत्मा हू, इसके अनुभवके लिए, इसकी
र्चा करनेके लिए समय नही है, बुद्धि नही लग सकते है,
ठिनाई पड रही है, और ये धन आदिक बाहरी बातें—इनके
ंग्रहके लिये, इसके वैभवके जोडनेके लिए रात-दिन उपयोग
ल रहा है। अपने वर्तमान रवैयेपर थोडा ध्यान तो दीजिये
क मेरा हित किसमे है ? जिस भावमे हित है उस भावकी
ो चर्चा न हो और जो व्यर्थके प्रसग है उनमे बुद्धि जागृत
हे तो यह तो अपनी बरबादी वाली बात है। अपना यह
वैया बदलना चाहिये। जो हो सो हो, मै अपने आपके स्व-
पको जानूं, मानूं और उसमे ही मग्न होनेका यत्न करू।
सके लिए स्वाध्याय, सत्सग, ज्ञानार्जन जो-जो कुछ भी आव-

श्यक है उन सब प्रसगोमे रहे, यह रवैया बनना चाहिये और मोहकी वह पद्धति अब दूर की जानी चाहिये, अन्यथा निकट समय है, आयु समाप्त होगी, फिर क्या करेगा यह जीव, किस गतिमे जायगा, क्या होगा ? चेत जाये अभीसे और अपने आत्माकी सुधि लेने और रखनेका यत्न करे ।

निजगुणहतिरूप सिद्धिका मन्तव्य---सिद्धि किसे कहते है इसका स्वरूप बताया जा रहा है । साधु पुरुष किस बातके लिए घर-बार त्यागकर लौकिक आरामको छोडकर, एकान्त वास रखकर लोगोकी दृष्टिमे कष्ट उठा रहे है, उन साधु पुरुषो की दृष्टिमे तो वे स्वयं आनन्द पा रहे है । यह सब सन्यास किसलिये है ? सिद्धिके लिये है । उस ही सिद्धिका स्वरूप कहा जा रहा है । अभावका नाम सिद्धि नही है । यह बात तो बता दी गई थी । अब दूसरी बात कह रहे है कि अपने गुणोंके विनाश करनेका नाम भी सिद्धि नही है । पहिले मंतव्यने तो आत्माका सर्वापहार लोप कर दिया था । कुछ बचना ही नही, उसका नाम सिद्धि है । तो इस दूसरे मतव्यने आत्माके विनाश को तो बचाया, आत्माको तो नही नष्ट बताया, किन्तु आत्मा के गुण खतम हो जाये उसका नाम मुक्ति है, यो निजगुणहनन किया । उनके मतव्यमे आत्माका गुण चैतन्य नही, स्वरूप है । गुण है ज्ञान, दर्शन, आनन्द आदिक । उनका जब विनाश होता

इस मंतव्यमे ऐसी शुद्ध दृष्टि रखनी चाही होगी शायद कि परमार्थ शुद्ध निश्चयनयसे जो स्वरूपदृष्टिमे आता है करीब ऐसा ही भाव लाकर इसको पकड़े रह जानेकी बात तो की, लेकिन उसपर टिक न सके। और व्यवहारमे आये तो ऐसा व्यवहार मे आये कि जहां यह कह देना पडा कि आत्मामे ज्ञान नीह है, दर्शन आनन्द नही है। ये जब तक रहते है तव तक आत्मा दुःखी रहता है। बुद्धि जब लक है, ज्ञान जब तक है तब तक विकल्प है, ख्याल है, क्लेश है। यह ज्ञान मिटे तो सारा क्लेश मिट जायगा। ऐसी दृष्टि वनी जिस आधारपर वे कहते है कि आत्माके गुणोका विनाश होनेका नाम मुक्ति है।

निजगुणहृतिरूप सिद्धिका सिद्धिसे सामञ्जस्य—इस निज-गुणहति मन्तव्यका अगर कुछ सामञ्जस्य बैठाया जाय, एक जान-बूझकर, अर्थ लगाकर, आखिर जिस किसीने कह दिया वह भी तो एक चेतन है। कुछ बुद्धिसे विचारकर ही तो कहा है। तो किस अभिप्रायमे लग गया था वह जहाँ यह बात जची कि अपने गुणोका विनाश होनेका नाम मुक्ति है तो देखिये—वे जिन-जिन गुणोका विनाश मानते है मोक्षमे। वे गुण ६ प्रकारके है—बुद्धि, सुख, दु ख, इच्छा, द्वेप, प्रयत्न, धर्म, अधर्म, सस्कार। इनमेसे कुछ तो प्रकट ही बुरे लग रहे है— जैसे दुःख, अधर्म, इच्छा। कुछ भली बातें भी है। किंतु ये सभीके सभी विभावरूप है। इस मतव्यन ज्ञानका बुद्धिरूप

माना है। ज्ञानका विशुद्ध स्वरूप क्या है ? जाननका क्या लक्षण है ? इस बातपर उनकी दृष्टि नही पहुची। और कल्पना बुद्धि इसको ही गुण समझ लिया। तो सही बात है कि इस विभावरूप बुद्धिका नाश हो तो मोक्ष होता है। सुखका सही स्वरूप तो समझा नही और ससारमे जो सुख भोगे जा रहे है इनको दृष्टिमे रखकर कहा गया कि सुखका विनाश हो तो मोक्ष है। तब क्या यह बात गलत है ? इस सासारिक सुख का अभाव है मोक्षमे। दु खके विनाशको मोक्ष कहते ही है, इच्छाके नाशका नाम मुक्ति है ही। धर्म अधर्मसे प्रयोजन लिया पुण्य-पापका। आत्माका स्वभाव धर्म है, इसपर दृष्टि न रखकर केवल व्यवहारमे जो धर्म अधर्म कहा जाता है। जैसे एक चन्द्र, सूर्यग्रहण होनेपर छोटी श्रेणीके लोग भी उपदेश देते है—धर्म करो, धर्म करो, उनका कितना धर्म है ? थोडा सा अन्न दे दो, बस यही धर्म है। तो लोकव्यवहारमे जिसे धर्म कहते है दान, सेवा, परोपकार, इनका अभाव तो मुक्तिमे है ही। अधर्मका अभाव तो प्रकट सिद्ध है। जीव जैसा ससार मे प्रयत्न करता है उस तरहका प्रयत्न मोक्षमे कहाँ है ? अन्त॰ यत्न, सहज यत्न, ज्ञानका जाननमात्र यत्न। यह अर्थ नही भरा है इस प्रयत्नमे। पहिले भोगी बातोंका सस्कार बनाना धर्म अधर्मका जन्ममरणका विचार यह भी मुक्तिमे कहाँ है ? तो इस दृष्टिसे तो सही है, किन्तु आत्माका जो

असाधारण वास्तविक गुण है उस गुणका अभाव मोक्षमे नही है, क्योंकि ऐसे गुणोके अभावरूप मुक्तिको कौन चाहेगा ? वह न तपश्चरणसे मिलता है, न युक्तियोसे मिलता है, न यह बात मुक्त होती है। इससे सिद्धि नाम आत्माकी उपलब्धिका ही है। सिद्धिके लिये आचार्यदेव कहते है कि मै सिद्ध भगवतो का वन्दन करता हू।

सिद्धिस्वरूप जाननेके लिये आत्मपरिचयकी आवश्यकता—सिद्धिके स्वरूपमे दो बाते बताई गई हैं कि आत्माके विनाशका नाम सिद्धि नही है और न आत्माके गुणोके विनाशका नाम सिद्धि है। क्यो नही ? पहिले निजकी बात तो समझिये। यह आत्मा क्या है, कैसा है ? आत्माकी बात यथार्थ समझ जानेपर फिर इसे समझनेमे दिक्कत न रहेगी कि मोक्ष किसका नाम है ? मोक्ष नाम है कैवल्यका। जैसा यह आत्मा केवल अपने आप अपने स्वरूपसे है उतना ही मात्र रहे, इसके साथ उपाधि शरीर विभावकी विडम्बना न रहे इसका नाम मोक्ष है। इस ही को कहते है सिद्धि। इस ही का नाम है निज आत्माकी उपलब्धि। तो आत्माका स्वरूप जानना होगा। यह मै आत्मा हू, सदासे हू, मेरा कभी विनाश नही होता। तो हू, इतना कहनेके ही साथ यह बात तो आ गयी कि इसका अभाव न होगा। अब आगे और सोचिये। यह आत्मा कैसा है ?

आत्माकी वर्तमान अवस्था—आत्माके शुद्ध स्वरूपकी

चर्चा जरा पीछे हो जायगी, पर अभी कैसा है? यह भी निरखिये—यह बन्धनबद्ध है, शरीरमे बधा है, रागादिक भावोसे बधा है, कर्मोसे बँधा है, तभी तो देख लीजिये ना कि वर्तमानमे क्या अवस्था हो रही है, और यह दशा आजसे नही अनादि परम्परासे है। यदि यह आत्मा पहले कभी शुद्ध होता तो अशुद्ध होनेकी नौबत कैसे आ गयी? शुद्ध भी अशुद्ध हो हो जाय तो फिर शुद्ध होनेका यत्न ही क्यो किया जाय? पता नही कब तक शुद्ध रहे, फिर अशुद्ध होना पडेगा। फिर उस शुद्धकी महत्ता ही क्या रही? यह मै आत्मा अनादिकाल से बद्ध हू। जैसे खानमे से जो स्वर्ण मिट्टी निकलती है वह मिट्टी शुरूसे ऐसी ही है, वहाँ स्वर्ण शुद्ध पडा हो और फिर वह मिट्टी बनी हो, ऐसा तो नहीं है। खानसे मिट्टी ही निकली, उस मिट्टीका शोधन किया तब उस हजारो मन मिट्टीमे से दो-चार तोला स्वर्ण निकला। इस प्रकार यह आत्मा अनादिसे ही मलिन है, बद्ध है, 'कुछ प्रयत्न किया जाय, अपना स्वरूप समझा जाय, इसे आत्मसयममे तपाया जाय, मै ज्ञानमात्र हू, ऐसे अनुभवनमे इसे संयत किया जाय तो इसके दोप दूर होगे और मुक्ति प्रकट होगी। पर यह है अब अनादिपरम्परासे बन्धनबद्ध। इसी कारण अपने किये गये कर्मोके विपाकमे उत्पन्न हुए फलोको भोग रहा है। यह इसकी प्रथम स्थिति है। अब जब उन कर्मोका क्षय होगा तब यह मोक्षका पात्र

होगा। तो चीज तो वही रही जो थी। केवल ऊपरी जो विडम्बनायें लग गयी उन विडम्बनाओंका परित्याग हुआ, उन मलिनताओंका विनाश हुआ, न कि आत्माका और न आत्मा के स्वरूपका, न गुणोंका। केवल कर्म और कर्मफलके क्षयसे मुक्ति प्रकट हुई।

जीवका स्वरूप—खुदकी सिद्धि पानीके लिए सिद्ध भगवतकी वन्दना की जा रही है। तो जिसको सिद्ध होना है, जिसकी सिद्धि पाना है उसका स्वरूप न जाना हो तो क्या सिद्धिका उपाय किया जा सकता है? इसी हेतु यहाँ आत्मतत्त्वका वर्णन चल रहा है। यह आत्मा जो कि अनादिबद्ध है, अपने किये हुये कर्मोंका फल भोगता है वह उन कर्मोंके क्षयसे मोक्षका पात्र होता है। उस आत्माका सामान्यस्वरूप क्या है? वह है ज्ञाताद्रष्टा। जीवका स्वरूप है जानन और अवलोकन। यह जीव ज्ञानसे सबको जान रहा है। यह जीव जितना जान पा रहा है, जान रहा है, पर इस जानते हुए इस जाननेकी क्रियाको करने वाले इस निज स्वरूपका अत अवलोकन भी कर रहा है। मिथ्यादृष्टियोंको इसका पता नही चलता। वे भी नवीन ज्ञान उत्पन्न करनेसे पहिले अपने इस ही आत्मतत्त्वका स्पर्शन कर लिया करते है, किन्तु उनकी धुन बाह्य विषयोंमे लगी है, इस कारण अपने आपके स्वरूपका स्पर्शन, दर्शन, शक्तिसञ्चयन करके भी जान नही पाते है कि

यह मै हू। यह आत्माका दर्शनगुण कहा जा रहा है—ज्ञानोपयोग और दर्शनोपयोग। दर्शनोपयोगके द्वारा अपने आपमे जिसके दर्शन होते है, उसकी श्रद्धा बन जाय तो ऐसी श्रद्धा पूर्वक दर्शन अर्थात् दर्शनके बाद यह निर्णय आना कि यह मै मै हू, बस इसी दर्शनके विषयका दर्शन कर लेनेका नाम भी सम्यग्दर्शन है। यह जीव ज्ञाता है और द्रष्टा है, जाननहार है और अपने आपका लखनहार है।

जीवकी देहप्रमाणता—यह जीव अपने देहके प्रमाण रहता है। जीव कितने आकारमे फैला हुआ है—इस बातको हम स्वय सहज किस आकारमे है यह नही बता सकते, क्योकि जीवका स्वय अपने सत्त्वकी ओरसे आकार नही है। आकार की जीवमे प्रमुखता नही है। जीवतत्त्वमे भावकी प्रमुखता है, फिर भी अनादिकालसे यह जीव किस आकारमे चला आ रहा है? जब जो देह मिला उस देहके प्रमाण आकारमे यह जीव रहता है। समुद्घातकी कुछ स्थितियोको छोडकर यह जीव सदा ही अपने देहके प्रमाण रहा आया और यहा तो रहा आया देहप्रमाण, किन्तु जब कर्मोका क्षय होता है, शरीररहित भी हो जाता है तब भी जिस शरीरमे वह था, जो अतिम शरीर था, जिसका परित्याग करके यह मुक्त हुआ है मुक्त अवस्थामे अब उस देहके प्रमाण रह रहा है। यह देह प्रमाण है। संसार अवस्थामें इस जीव प्रदेशमे सकोच विस्तार होना चला आया।

यह सकोच विस्तार स कारण हुआ। जब जैसा देह मिला उस प्रकार सकोच विस्तार हुआ। हाथीकी पर्यायमे रहने वाला जीव मरकर यदि चीटीकी पर्यायमे पहुचे तो इतने परिमाण वाले विस्तार वाला जीव लोक एक ही समय बाद कितने लघु परिमाणमे आ गया? तो यह सकारण हुआ सकोच। इसी प्रकार विस्तार भी सकारण होता है।

जीवकी अभेदभावकी दृष्टिसे परख होनेपर निर्विकल्पताका अवसर—स्वय जीव क्या है इसको परखना है तो, भली-भाँति अगर निरखना है तो द्रव्य, क्षेत्र, काल इन तीन स्वरूपोकी मुख्यता न करके भाव, और भावमे भी अभेद भावकी मुख्यता से जीवको जाने तो हम जीवका स्वरूप भली प्रकार अनुभवमे लाते हुये विदित कर सकते है। यह जीव समस्त पदार्थोसे निराला है, अपने अस्तित्वसे है जो गुण पर्यायरूपमे फैल रहा है, गुण पर्यायोका पिण्ड रूप है यह जानने और निर्णय करनेकी बात है, और कुछ आगे बढनेकी तैयारी है, पर इस दृष्टिमे हम विकल्पोमे न बच सके। यह आत्मा अपने प्रदेशोसे है। इसमे असंख्याते प्रदेश है। उनका हम विस्तार देख रहे है। इस दृष्टिमें अपने आत्माके क्षेत्र की असलियत तो जानी, पर निर्विकल्पताका अवसर न मिला। यह आत्मा इस पर्यायमे है। वर्तमानमे इस प्रकार परिणाम रहा है। हमने कालदृष्टिसे देखा, जाना तो अपनेको

निर्विकल्पताका अवसर न मिला। यह आत्मा ज्ञान दर्शन चारित्र सुख आदिक गुणोसे है। भावदृष्टिसे कहा जा रहा है। हमने भावोसे गुणोसे अपने आपको तो परखा, किन्तु अनेक भावोसे देखा। जीवभेदसे देखा तो उस तैयारीमे भी हमे निर्विकल्पताका अवसर न मिल पाया। जब हम अपने आपको सर्वभावोके अभेदस्वरूप एक ज्योतिमात्र, चैतन्यमात्र अथवा सर्वके प्रतिनिधि ज्ञानमात्रमे हम अपनेको तकते है, ज्ञानको जुटाते है, ज्ञानमे वह ज्ञानमात्र समाता है तो ऐसे अभेदभावकी दृष्टिसे अपने आपका अवलोकन करनेसे निर्विकल्पताका अवसर मिल जाता है। यह मै ज्ञाता द्रष्टा हू और एक अभेदभावमे चैतन्यमात्र हू।

त्रिगुणात्मक आत्मतत्त्वकी स्वगुणरूपता—यह आत्मा उत्पादव्ययध्रौव्य युक्त है, प्रति समय बना रहता है और नवीन पर्यायोमे आता रहता है, पुरानी पर्यायोको विलीन करता है। ऐसा यह अपने ही गुणोसे युक्त आत्मा है, ऐसी श्रद्धा अपनेमे लाइये तब विदित होगा कि इस आत्माके गुणोके विनाशका नाम मोक्ष है क्या? विदित हो जायगा कि आत्मामे जो मलिनतायें लदी है उन उपाधियोका अभाव होनेसे जो स्वयके स्वरूपका शुद्ध विकास है उसका नाम मोक्ष है। आत्माके ऐसे स्वरूपको न जाने तो साध्यकी सिद्धि नही हो सकती। सिद्धत्व रूपसे साध्य अपना आत्मा है। सिद्ध होना है, इसकी सिद्धि

उस आत्मतत्त्वके परिचयमे आये बिना नही हुआ करती है। ऐसे कुछ आत्मतत्त्वके विवेचनोका प्रसग लाकर सिद्धके गुणो की महिमा ही बताई जा रही है।

स त्वतर्बाह्यहेतुप्रभवविमलसद्दर्शनज्ञानचर्यासपद्धेतिप्रघात-क्षततुरिततया व्यज्जिताचिन्त्यसारैः। कैवल्यज्ञानदृष्टिप्रवरसुख-महावीर्यसम्यक्त्वलब्धिज्योतिर्वातायनादिस्थिरपरमगुणैरद्भुतै-र्भासमान ॥३॥

जीवन्मुक्तावस्थापूर्वक मुक्तिलाभ—सिद्धभक्तिमें सिद्धकी वन्दनाका प्रयोजन यह है कि ऐसी मेरे भी सिद्धि प्रकट हो। तो वह मै क्या हू जिसकी सिद्धि अभीष्ट है उसका जानना अनिवार्य है। सो उस आत्माके सम्बधमे ही कुछ वर्णन चल रहा है। अभी-अभी वर्णन इस रूपमे हुआ है कि मै आत्मा वर्तमानमे किस प्रकारका हू ? सो वैसी पर्यायके वर्णनके साथ ही साथ स्वरूपका भी वर्णन किया गया है। अब रागद्वेषलिप्त आत्माकी परिस्थितिसे उत्थान कराकर साधुतासे और ऊपर जो एक अरहंत प्रभुकी स्थिति होती है, उस स्थितिको लक्ष्यमे लेकर आत्माका ही वर्णन किया जा रहा है। ये सिद्ध भगवान अरहत अवस्थापूर्वक ही हुये है। कोई भी साधु साधुपद के बाद एकदम सिद्ध न हुआ, न होगा। अनेक मुनियोको शत्रुवोने, व्यतरोने उठाकर समुद्रमे पटक दिया और इस ही बीचमे वे ध्यानस्थ हो गये। देखो ध्यानकी गति कि आकाशमें

ठा ले गये, आकाशसे पटक दिये गए, शरीरकी इतनी बडी क्रिया हो रही है, लेकिन वे अपने स्वरूपमे निष्क्रिय रहे, निर्विकल्प रहे। ऐसे अनेको महामुनि थोडे ही समयमे शरीर-रहित होकर सिद्ध हुये, किन्तु इस थोडेसे ही समयमे उनको पहिले अरहत अवस्था प्राप्त हुई, पश्चात् सिद्ध हुये। तो अर-हत परिणमनपूर्वक सिद्ध होते है, इस कारणसे भी आत्माके स्वरूपके साधारण वर्णनके बाद अब अरहंत अवस्थाकी मुख्यता से वर्णन किया जा रहा है।

आवरण के क्षयसे गुणसम्पत्तिका लाभ—वह ज्ञानज्योति, वह आत्मतत्त्व, जिसकी सिद्धि होना है वह आश्चर्यकारक उत्कृष्ट गुणोसे देदीप्यमान होता है। कब? ··जब अन्तरङ्ग कारण और बहिरङ्ग कारणकी लब्धि होती है और उस समय निर्मल सम्यक्त्व, सम्यग्ज्ञान, सम्यक्चारित्रकी सम्पत्ति प्राप्त होती है अर्थात् जब यह जीव अपने इस सहज शाश्वत चैतन्य-स्वभावमास निज तत्त्वको जानता है और यही मै परमार्थ सत् हू– इस प्रकार श्रद्धान् करता है और उस श्रद्धान् ज्ञानके फलमे केवल ज्ञाताद्रष्टा रहने रूप स्थिति बनती है तब इस अलौकिक पुरुषार्थके प्रतापसे इस गुण सम्पत्तिका आवरण करने वाले, विनाश करने वाले कर्मोका विनाश होता है, जिससे आत्माके ये सब घातियाकर्मजन्य विभाव दूर हो जाते है और उस समय उनका वह ज्ञान दर्शन विकास एक अचिन्त्य हो जाता है।

प्रभुके ज्ञानकी अचिन्त्यसारता—हम प्रभुके ज्ञानके स्वरूप का चिन्तन करे तो हम उसका पार नही पा सकते। वह अचिन्त्य है। प्रभु सर्वज्ञदेव ज्ञानके द्वारा किस प्रकार जानते है, इसको आप किस पद्धतिसे समझ सकेगे ? कहनेमे तो सीधा कह दिया जा सकता है, अजी हम थोडी चोजको जानते है और वे समग्र वस्तुवोको जानते है, पर किस प्रकारसे जानते है ? हम जिस प्रकार समझ लेते है कि यह मीठा है, खट्टा है, चरपरा है आदि, क्या इस प्रकारसे उन्हे भी रसोका ज्ञान होता है ? जैसे हम यहाँ इतने विचित्र रगोके आकारमे, इन ढगोमे पदार्थोंको जानते है, क्या ऐसे ढगोमे वह सर्वस्त्र इस विश्वको जानता है ? जैसे हम यहाँ वडे जानकारसे वन रहे है—यह इनका है, यह मेरा है, क्या इस प्रकार प्रभु भी जानते है कि यह अमुक लालका घर है, यह अमुकका है ? जैसे हम इन पदार्थोंकी एक तोल माप जानते है—यह इतने फिटका है, यह इतने गजका है, यह इतने कोशका है, यह इतने योजनका है, क्या इस प्रकारकी नाप-तौलको प्रभु भी जानते है ? अरे जानते सब है, परपदार्थोंमे जो जितनी बाते चलती है, जो आरोपित नही है पदार्थमे उनका जो कुछ परिणमन चल रहा है उसके बारेमे जानते सब है, पर हम उसकी चिन्तना क्या कर सकते है ? हाँ इतना तो समझमे आता है कि आरोपित ज्ञान जैसा कि हम आप किया करते है—यह मेरा घर है, यह उनका

दूकान है, ऐसा आरोपित ज्ञान प्रभुमे नही होता है। यदि प्रभु भी इस तरहकी समझ बना ले कि यह मकान इनका है तो शायद इसकी यहाँ तहसीलोमे रजिस्ट्री करनेसे भी अधिक रजिस्ट्री हो जाती है। अब कहाँ मिटेगा उसका घर, क्योंकि प्रभुने भी जान लिया। जो पदार्थ है उनमे जो कुछ है वह ज्ञात है, पर आरोपित बातें ये मिथ्या हैं। मिथ्याका ज्ञान प्रभुके नही है। जो मायारूप, ग्रनूल, काल्पनिक मिथ्या बात है उसको प्रभु कैसे जानते है ? सब जानकर भी कुछ छूटा नही है, फिर भी आरोपित मिथ्या मायारूप उनका ज्ञान नही है।

प्रभुके आनन्दकी अचिन्त्यसारता—प्रभुके एक ज्ञानकी ही अचिन्त्यताकी बात क्या सोचो, आनन्दकी बात सोच लो। प्रभुका आनन्द भी अचिन्त्य है, वह सर्वतः अनन्त है। हा, आनदका विषय पर न होनेसे आनन्दका कुछ दर्शन, आनन्दको झाँकी हम आप ले सकते है। ज्ञानकी झाँकी लेनेकी अपेक्षा प्रभुके आनन्दकी झाँकी लेना सुगम है और उसकी झाँकी लेनेका उपाय यह है कि चूंकि प्रभुका आनन्द किसी इन्द्रियसे उत्पन्न नही होता, एक केवल आत्माके आधारसे होता है, इन्द्रियके साधन बिना होता है। तो हम आप इन इन्द्रियोंके साधनोसे जिस क्षण अपने उपयोगको हटा ले, जिन क्षण मनके भी साधनको दूर कर दे तो वह तो परिणमन निराधार होकर टिक न सकेगा। तो ऐसी स्थितिमे सहज सुगम अपनेमे आनन्द

की अनुभूति जगती है और चूंकि वह टिकाऊ नही है और अन्त कोई पीडासस्कार पडा है, इन बातोसे वह एक आंशिक झाँकी हो पाती है। लेकिन किसी अच्छे हलवाईकी बर्फी कोई गरीब आदमी आधी छटाक लेकर खाये और कोई धनिक आधा किलो बर्फी लेकर खाये तो भले ही छकनेमे अन्तर हो जायगा, किन्तु स्वाद तो वह गरीब भी परख लेगा। तो यो प्रभुके ज्ञान और आनन्दका मर्म, सार अचिन्त्य है। वह जिसके प्रकट हुआ है, ऐसे गुणोसे सम्पन्न ये अरहंत प्रभु है। उन अरहंत प्रभुमे क्या आन्तरिक गुण है और क्या बाह्य अतिशय होते है, उन सब गुणोका भी वर्णन इस छदमे आया है।

कैवल्यप्राप्तिकी युक्ति कैवल्यकी अनुभूति—इस आत्माकी अर्हद्दशामे अर्थात् पूज्य दशामे कौनसे आन्तरिक गुण प्रकट होते है और कैसे बाहरी गुण प्रकट होते है—इसका एक सक्षेपमे वर्णन है। प्रभुके कैवल्य हुआ है अर्थात् जैसा वह स्वरूपसे केवल है, अकेला है, स्वय अपने सत्त्वमे हुआ है तैसा अब प्रकट रूपमे आ गया है। इस ही का नाम परमात्मदशा है। जो आत्मा परमार्थत जैसा है वैसा ही प्रकट हो जाय बस इसीको कहते है प्रभु होना। जैसे मलिन स्वर्ण है। शुद्ध होकर क्या निकला ? जो था वही निकला। जो स्वर्ण अपने आपके स्वरूपमे जैसा था बस वह प्रकट हो गया, इस ही का नाम शुद्ध होना कहलाता है। जिस पुरुषको अपने आपके इस सहज

स्वरूपपर श्रद्धा होती है उसके उस स्वरूपकी उपासनाके प्रसाद से ऐसा ही कैवल्य प्रकट हो जाता है। इस कैवल्यकी प्राप्तिके लिए यह अनिवार्य (आवश्यक) है कि साधक अपनेको ऐसा जाने कि मै इतना केवल हू और उस ही की बार-बार अनुभूति करे तो इस कैवल्यकी अनुभूतिके प्रसादसे कैवल्य प्रकट होता है।

कैवल्यावस्थामे ज्ञानकी अनन्तता—कैवल्यदशामे कैसा विकास होता है उसे ज्ञान दर्शन आदिक गुणोके माध्यमसे बताया गया है कि उनका ज्ञान अनन्त होता है। क्षेत्रकी दृष्टिसे भी अनन्त है अर्थात् समस्त लोकका ज्ञान होता है। कालकी दृष्टिसे भी अनन्त है याने उसका कभी विनाश नही होता, और परपदार्थोमे जो उनका काल है, अतीत अनागत परिणमन है वह सब ज्ञान है। भावदृष्टिसे भी वह ज्ञान अनन्त है। अवधिज्ञान, मन.पर्ययज्ञान प्रत्यक्ष होकर भी उनका भाव अनन्त विषय नही है, पर अनन्त ज्ञानमे प्रत्येक इकहरे पदार्थ परमाणु आदिकमे जो भाव है, जो गुण है उनके सर्वांश परिणमन है, वे सबके सब ज्ञात है। और द्रव्यदृष्टिसे अनन्तका ज्ञान है, इसलिए भी अनन्त है। अब ज्ञान हमारा अनन्त है तो ऐसे अनन्त ज्ञानसे परिणमे हुये अपने आपका जो दर्शन होता है वह भी अनन्त दर्शन कहलाता है। अरहत अवस्थामे जो महिमा प्रकट होती है उसका कुछ यह दिग्दर्शन किया जा

रहा है । अनन्त ज्ञानके साथ अनन्त आनन्द होता है प्रभुके ।

सांसारिक सुखोंकी विडम्बना—यह तो बडी विपत्ति समझो, विडम्बना समझो कि यदि थोडेसे वैभवके साधन मिल जाते है और विषयोके साधन मिल जाते है तो उसमे लोग मौज मानते हैं, अपनेको बडा अनुभव करते है, पर लोग इस बातको समझते नही । निरन्तर क्षोभ बना रहता है । वैसे आप बतलावो कोई गरीब पुरुष है, जिनशासनका बडा शरण ग्रहण किये हुये है, ज्ञानमे स्वाध्यायमे, चिन्तनमे ध्यानमे अपने आत्माकी बडी सुधि रख रहा है, और अपने आत्माके अनन्त गुणोके जौहरको निरख-निरखकर तृप्त रहा करता है, एक तो ऐसा पुरुष और दूसरा ऐसा पुरुष जिसके लाखोका कारोबार है, और बडी तरक्की है, बडा वैभव आ रहा है, बडी व्यवस्था की जा रही है, सब कुछ वैभव है, पर आत्माकी खबर लेनेका अवकाश नही है, आत्माकी सुधि लेनेकी बुद्धि नही उत्पन्न होती है तो आप यह बतलावो कि मनुष्यभवमे जीना है, जब तक जी रहे है, इसके बाद लाभमे कौन रहा ? और बादके भी लाभकी बात क्यो सोचे, इस ही जीवनमे लाभमें कौन रहा ? जो शान्त हो सका, तृप्त हो सका वह लाभमे है । ये बाहरी पदार्थ अपने मानते जाइये, पर इनको अपना माननेसे अपने हो जायेगे क्या ? कभी नही हो सकते । तो कितनी विपत्ति है कि अपने तो होते नही है और अपने मान-मानकर अपनेको

बरबाद किये जा रहे है । यह क्या कम विडम्बना है, पर लोक मे मोही जीव मोही जीवोकी तारीफ किया करते है । सब मोही जीवोको यही आदत पड़ गई है, इसके ही सुख, इसमे ही बडप्पनका अनुभव किये चले जा रहे है, किन्तु यह खबर नही है कि यह दुर्लभ नर-जीवन पाया है तो क्या इन विकल्पो मे अपनेको बरबाद करनेके लिये पाया है या हमारे पूर्वज बड़े ज्ञानी विवेकी पुरुष, साधु सतजन शान्ति आनन्दके लिये जो अनुभव लिख गये है इस अनुभवको चित्तमे उतारनेके लिये यह नर-जीवन है, यह भूल जाते है । बात तो जिस प्रकार जहाँ जो होनी है वही होकर रहेगी । माननेसे कही फर्क न पड जायगा । तो यहाँका सुख, सुख नही है । दु ख है, मूढ़ता है, अविवेक है, बरबादी है ।

आनन्दधाम अन्तस्तत्त्वकी उपासना बिना दयनीय बरबादी—आनन्द तो आनन्दधाम निज परमात्मप्रभुकी उपासना मे है । जितना चित्त लगे, जितनी दृष्टि आये, जितना अपने इस सहजस्वरूपका ज्ञान हो, इसमें ही बुद्धि रहे, बस यही स्थिति है एक नर-जीवनको सफल बनाने वाली, और जिन स्थितियोमे लोग मौज मान रहे है वे सब विपत्ति और विडम्बना है । कितनेसे लोगोको दिखानेके लिये ये विकल्पोकी विडम्बनायें मचाई जा रही है ? उत्तर ले लीजिये । कितने जीवो को प्रसन्न करनेके लिए, किन जीवोमें अपनी मान्यता रखनेके

लिए, ये लोग कह दे कि यह बहुत खासे पुरुष है, यह बडे प्रधान धनिक माने जाते है, ऐसा किनमे कहलवानेके लिए यह विडम्बना की जाती है ? नाम ले लेकर, दृष्टि पसारकर कुछ ख्याल कर लो, क्या है ? कोई तुम्हारा यहाँ ईश्वर है क्या ? तुम्हारा भाग्य बनाने वाला है क्या ? अरे ससारमे रुलाने वाले मोही, कर्मोसे प्रेरे हुये ये लोग है जिनमे यह चाहा जा रहा है कि ये हमे अच्छा कह दे । इसी वास्ते धनकी होड़मे ऐसा लग गये कि धर्मकी और अात्माकी सुधि भी खो बैठे । तो यहाँके समस्त सुख विडम्बनारूप है । कोई तरस-तरसकर मर रहा है, कोई बडप्पन मान-मानकर रम रहा है, कोई किसी तरह से बरबाद हो रहा है, ये तो सब बरबादीकी बाते है । इसके लिये क्या ज्यादा उदाहरण दें ? एक मदिरापानका व्यसनी पुरुप एक मदिरा वालेकी दूकानपर गया और दूकानदारसे बोला कि हमे बहुत अच्छी शराब दो, तो दूकानदार बोला— हाँ हाँ बहुत अच्छी देगे । "अजी बहुत ही ऊँचे नम्बरकी शराब होना चाहिये ।" अरे तुम्हे विश्वास न हो तो ये जो तुम्हारे काका बाबा हमारी दूकानपर बेहोश पड़े हुये है, उन्ही को देखकर तुम जान सकते हो कि शराब अच्छी है या नही । भाई ससारके ये सुख सब विपदाये है । इन सबका विश्वास अपनेपर गुजर रही बातोसे कर लो अथवा दूसरोपर गुजर रही बातोसे कर लो । सभी लोगोका कहाँ दिमाग है, कहाँ प्रवृत्ति

है, कहाँ उपयोग है, कैसे बेसुध है ? ये सारी बातें देखकर भी विश्वास कर लो कि यह सारा संसार दुःखमय है, यहाँ सुखका काम नही, सब विडम्बनायें है। यहाँ सुख नही है। अरहंत देवने जो सुख प्राप्त किया है वह उनका उत्कृष्ट सुख है, आनन्द है, निराकुलता व्यक्त हो गयी है। यहाँ हम घबड़ाते है जरासे वियोगमे, पर उन अरहंत प्रभुके तो सभीका वियोग हो गया। उनके अब न स्त्री रही, न पुत्र रहे, न घर रहा, न धन वैभव आदिक रहे। तो जिनका हम आप पूजन, वंदन, विश्वास किये बैठे है, उनके स्वरूपस्मरणसे लाभ नहीं उठाते, उनकी पूजा करते जाते और यहाँ बड़ा वियोग सता रहा है उनका भी कोई विश्वास नही है। अरे भगवानने यही मार्ग बताया कि सबका वियोग सहते जावो और चित्तसे स्वीकार करते जावो, सबका वियोग हो। जब सबका वियोग हो जायगा तब तू परमात्मा बनेगा। संयोगमे लाभ न मिलेगा, वियोगमे ही लाभ मिलेगा। कर्मोका वियोग होने दो, शरीरका वियोग होने दो। होने दो कैवल्य, वहाँ उत्तम आनन्द प्राप्त होगा। जो प्रभुमे स्वाधीन सहज निर्बाध अनन्त आनन्दरूप विकास है। यो यह सिद्धभक्तिमे आन्तरिक गुणोके विकासका वर्णन चल रहा है।

परमात्मत्वावस्थामें अनन्तवीर्यादि आन्तरिक व अनेक बाह्य अतिशयोकी प्रकटता—आत्मामे अरहंत अवस्थामे अनन्त वीर्य गुण प्रकट होता है। वीर्य गुणका कार्य है कि जो अनन्त

ज्ञान, अनन्तदर्शन आदिक अनन्त विकास हुआ है वह विकास बना रहे, स्थित रहे, इस प्रकारका सामर्थ्य अनन्त अरहत अवस्थामे प्रकट हुआ है। सम्यक्त्वका भी विशुद्ध विकास वहाँ अरहत अवस्थामे है। यद्यपि सम्यक्त्व, क्षायक सम्यक्त्व चतुर्थ गुणस्थानसे भी है, लेकिन जो कुछ अनन्तज्ञानविकासके साहचर्यसे बात विशिष्ट मानी जा सकती है वह सब प्रकट है, जिसे परमावगाह सम्यक्त्व कहते हैं और कर्मोंके क्षयसे समस्त लब्धियाँ उनके प्रकट है। अनन्तज्ञान, अनन्तदर्शन, क्षायक सम्यक्त्व, क्षायकचारित्र, दान, लाभ, भोग, उपभोग, वीर्य ये समस्त लब्धियाँ उनके प्रकट है। यह सब उनका आन्तरिक आतिशय है, और बाह्य अतिशयमे जैसे अरहत प्रभुका प्रतिहार्य समवशरण आदिक जो कुछ विशिष्ट आतिशय है वे सब अतिशय अरहत अवस्थामे प्रकट हुये है, ऐसे परमगुणोसे शोभायमान यह आत्मतत्त्व है। सिद्धि कैसे होती है? सिद्धिके प्रकृतमे यह सब वर्णन चल रहा है।

जानन्पश्यन्समस्त सममनुपरत सप्रतृप्यन् वितन्वन्,
धुन्वन्ध्वान्त नितान्त निचितमनुपम प्रीणयन्नीशभावम्।
कुर्वन्सर्वप्रजानामपरमभिभवन् ज्योतिरात्मानमात्मा,
आत्मन्येवात्मनाऽसौ क्षणमुपजनयन्सत्स्वयभूः प्रवृत्तः ॥४॥

कैवल्योपासनासे प्रभुत्वकी स्वयभुता—कैवल्योपासनामे यह आत्मा अपने आपमे अपने आपको उत्पन्न करता हुआ,

प्रसिद्ध करता हुआ स्वयंभू हो जाता है। स्वयंभूसे दो शब्द है—स्वयं और भू। स्वय अव्यय है। स्वयका व्यय नही है, स्वयं अविनाशी है। व्याकरणमे स्वयं अव्यय है, जिसका सभी विभक्तियोमे अर्थ होता है। स्वयके द्वारा, स्वयसे स्वयके लिए भवन हुआ, विशुद्ध विकास हुआ। यही स्वयभूका स्वयंभुत्व है। यह बात जब होती है तब उसे स्वयभू कहते है। इसमे यह सकेत दिया है कि परमात्म-अवस्थामे जो बात प्रकट होती है वह कुछ यन्त्र तन्त्रसे लाई हुई बात नही है, किन्तु वह स्वयं आत्मा जैसा सहजस्वभावमे है उस प्रकारका अब प्रकट हुआ है। जैसे इस ही को टङ्कोत्कीर्णवत् ज्ञायकस्वभावरूपसे कहा गया है। जैसे टाँकीसे उकेरी गयी प्रतिमा कही बाहरसे लायी हुई चीज नही है, जैसे मिट्टीसे सानकर प्रतिमा बनाये तो वे बाहरके तत्त्व भी उसमे जोडे जा सकते है, लेकिन जिस पाषाण मे प्रतिबिम्ब प्रकट हुआ है वह समस्त अवयव उस जगहसे पाषाणमे मौजूद था अर्थात् प्रतिमा होनेपर जो अवयव व्यक्त हुये है, प्रकट हुए है वे सब स्वय पहिले थे। उनको जो ढाकने वाले अगल-बगलके पाषाणखण्ड थे उन्हे अलग भर किया गया, प्रतिमाको नही बनाया गया न कहीसे कुछ लाया गया। वहाँ जो कुछ था सो प्रकट हुआ। इस प्रकारसे उपायोके द्वारा आत्मामे जो परमात्मत्व प्रकट हुआ है वह परमात्मत्व कहीसे लाया नही जाता है। यह आत्मा उस जातिका है ही। वह

पदार्थ ही ऐसा है, इसपर जो आवरण पडे है विपयकषायोके और भी अन्य बाह्य कर्म शरीरादिक उपाधिके वे सब दूर हुये कि जो था वही प्रकट हो जाता है।

आत्माकी अभी सहज ज्ञानानन्दात्मकता—यह आत्मा सहज स्वाधीन उपायोके द्वारा स्वयभू होता है जो कि समस्त अर्थसमूहको जानता हुआ और देखता हुआ है, अर्थात् जिसका ज्ञान केवलज्ञान है, जिसका दर्शन केवलदर्शन है, निरन्तर तृप्त रहता हुआ ऐसा आत्मा स्वभावत ज्ञानानन्दमय है। देखिये आत्माको चाहिये ज्ञान और आनन्द। जो चाहिये वही इसका स्वरूप है। प्रत्येक प्राणीमे यह चाह रहती है कि मेरा ज्ञान और आनन्द बढे। मूल चाह ये दो ही है। मूलतः धनकी चाह किसीको नही है, पर धनमे आनन्द है, ऐसी भ्रान्ति होनेपर धनकी होड है। उस होडमे भी वह ज्ञान और आनन्दको ही चाह रहा है। प्रत्येक स्थितियोमे प्रत्येक जीव केवल ये दो ही बातें चाह रहा है—ज्ञान और आनन्द। सो देखो—ये दोनो ही मेरे स्वरूप है, इन दोनो ही भावोसे रचा गया मै अनादिसिद्ध हू। तब एक असुविधा तो मिट गयी समझिये कि जो मेरा उद्देश्य है, जो मेरी चाह है वह मुझे कही बाहरसे नही लाना है। मै एक अपने आपपर दृष्टि देता हुआ स्वय आनन्दमय हू। तो यह स्वय ही आनन्दमय है आत्मा। एक अज्ञान अधकार को दूर करने भरका विलम्ब है। अज्ञान दूर हुआ कि स्वयमे

यह तृप्त रह सकता है, आनन्दमय रह सकता है। ये सब बातें परमात्मामें पायी जाती है और इसी कारण प्रभुसूर्य भव्य-कमलोको विकसित कर देता है। इसीसे समस्त लोकोके ईश भावको पा रहा है।

परमेश्वरका परम ऐश्वर्य—स्वय ही यह प्रभु ईश्वर है। ईश्वर कहते हैं उसे जो अपने आपके ऐश्वर्यमे स्वय समर्थ है। सो इसके स्वरूपका निर्णय जो इसका काम है, स्वरूपमे जो बात बसी हुई है उसको करनेमे यह आत्मा स्वयं समर्थ है। जानन इसका काम है, और विशुद्ध आनन्दरूप बर्तते रहना इसका काम है। तो यह आत्मा इस कामके करनेमे स्वयं शोभायमान है। किसी अन्यकी इसमे अपेक्षा न चाहिये, अत-एव यह ईश्वर है। लोकमें भी ग्रामेश्वर हुआ करते है। जो निरपेक्ष हो, जिसको अपनी सुख-सामग्रीके बनानेमे किसीका मुह न ताकना पडे उसे ईश्वर कहते है। जैसे एक ग्रामेश्वर को उसे जो कुछ चाहिये वह सब कुछ उसे अपने ही वैभवसे खेतोसे प्राप्त होता है। तैल चाहिये तो वह भी खेतोमे सरसो पैदा करके उत्पन्न कर लेता है, वस्त्र चाहिये तो खेतोमें कपास बोकर उत्पन्न कर लेता है। बर्तन भी खेतोंसे उत्पन्न कर लेता है। कोई तांबा वगैरा अच्छी धातु निकली तो उससे बर्तन बना लेता है। नमक चाहिये तो मिट्टीसे नमक भी बना लेता है, खाने-पीनेके लिए भी उसी भूमिमे सब कुछ

प्राप्त होता है तो उसे किसीका मुह ताकनेकी जरूरत नही पडती, अतएव उसे ग्रामका, घरका ईश्वर बोलते है लौकिक दृष्टिमे। तो इसी प्रकार वह आत्मा परमेश्वर है, उत्कृष्ट निरपेक्ष ऐश्वर्यवान है, जो अनन्त ज्ञान और ऐश्वर्यसे सम्पन्न है और उसको भोगनेमे जिसे किसी अन्यकी अपेक्षा नही रहती।

आत्मीय सहज सुविधाका दिग्दर्शन—आत्माके ऐश्वर्यका वर्णन सुनकर हम अपने आपमे यह बात घटित करें कि जो हमे अभीष्ट है, परम हितस्वरूप है, वह बात मुझमे स्वभावत है। हैरानीकी आवश्यकता नही है। हैरानी छोडनेकी जरूरत है। जो विषयकषायोमे वृत्ति रखकर द्वैत भावमे उपयोग बनाकर अपनेको हैरान कर रखा है उस हैरानीको छोडनेकी जरूरत है। आत्मा स्वय हैरान नही है। यह अपने आपमे ज्ञानानन्द विभाव से भरपूर है। यो यह आत्मा जब अपने आत्माको अपने आत्मामे निरखता है और अन्य तत्त्वोको दूर करता है उस क्षण यह अपनेको अपनेमे उत्पन्न करता हुआ स्वयभू बनता है। अध्यात्मपद्धतिसे स्वयभू होनेका वर्णन अमृतचन्द्र जी सूरिने किया है प्रवचनसार ग्रथमे कि यह आत्मा अनादि अनन्त अहेतुक असाधारण ज्ञान स्वभावको कारणरूपसे उपादान करके स्वय ही अपने आपमे उस परिपूर्ण अवस्था रूपसे बनता है और तब यह स्वयभू इस प्रकारसे कहा जाता है। वह स्वभाव ही तो प्रकट हुआ है जो मौजूद है, इसीका

नाम स्वयभू हुआ है। तो उस स्वभावपर दृष्टि जाय, हम अनुभव करे कि मेरेमे यह असाधारण सहज ज्ञानस्वभाव अनादि अनन्त है, अहेतुक है। किसी हेतुसे कारणसे मेरा यह स्वभाव निष्पन्न नही हुआ है, रचा नही गया है, अहेतुक ही यह स्वभाव है। चूँकि मैं अहेतुक सत् हूँ अपने आप ही सत् हुआ हू तो मेरा समग्र स्वभाव भी अहेतुक सत् है, सर्व द्रव्योसे विलक्षण मेरा ज्ञानस्वभाव है। उस ज्ञानस्वभावको दृष्टिमे लाकर जो उसमें ही अपने उपयोगको बनाये रखे तो यही उपादान कारण, यही ज्ञानस्वभाव निरावरण होकर स्वयभू हो जाता है।

श्रेयस्करी ज्ञानभावनाका कर्तव्य—कल्याणके लिए हमे प्रतिक्षण यह करना चाहिये कि हम अपने आपका ऐसा अनुभव करते रहे कि मै ज्ञानस्वभावमात्र हू, ज्ञानमात्र हू, जाननमात्र हू। जैसे कि लोग अपने आपको ऐसा अनुभवते है कि मै अमुक चद हू, इतने पुत्रोका पिता हू, ऐसी पोजीशनका हू आदि, तो उनका यह अनुभवन तो मिथ्या है अर्थात् यह मिथ्यातत्त्वका अनुभवन है, परमार्थस्वरूपका अनुभवन नही। इसके बजाय ऐसा अनुभव करें कि मै ज्ञानमात्र हू, भीतर निरखे तो यह मिलेगा कि एक जाननके सिवाय अन्य कुछ मुझमे नही पाया जाता। मै ज्ञानमात्र हू, ज्ञानस्वभावमात्र हू, ऐसा अनुभवन करने वाले पुरुषोको कुछ लाभ भी है, और जो लोग उस स्वभावानुभवनसे हटकर नाना रूप अपनेको अनुभवते है वे तो

अपने आपको ही बरबाद कर रहे हैं, एक स्वरूपसागरसे बाहर चोंच निकालकर अपने आपको दुखी किये जा रहे है। जैसे कोई कच्छप जलसे बाहर अपनी चोंच निकालकर तैर रहा है तो उसे बहुतसे पक्षी चोंटनेके लिए आते है और यह कच्छप दुःखी होकर यत्र-तत्र भागता फिरता है। उस दुःखी होने वाले कछुवेमे यह बुद्धि आनी चाहिये कि दुःखी मै क्यो होऊँ, मैं जरा अपनी कलासे अपने आपको इस पानीके अन्दर गुप्त कर लू तो सारे दुःख मिट गये। इसी प्रकार अपने ज्ञानसमुद्रसे बाहर उपयोगको निकालकर बाह्य पदार्थोमे उपयोगको लगाकर हम व्यर्थ दुःखी होते है। उस समय हमे नाना विपदाये आती हैं, क्योकि उपयोगको हमने अपने स्वरूपसे हटाकर बाह्य अर्थोमे लगा रखा है। तो वे अर्थ बिगड़े, कोई दूसरे लोग छुडा ले जायें, उसकी कुछ अननुकूल परिणति हो, उसका वियोग हो, अनेक स्थितियाँ आनी है तब यह मैं अपने आपको व्यग्र कर डालता हू। मुझमे अपने आपमे जो एक सहज कला है उसका उपयोग करूँ, अपनेको ज्ञानस्वरूपमे डुबो दू, मै ज्ञानमात्र हू, ऐसा अनुभवन करनेमे ही अपने आपको लगा लूँ तो फिर किसी भी प्रकारकी विपत्ति नही आ सकती।

बाह्यमे कुछ कर सकनेका अनधिकार—हम चाहे कि बाहरी पदार्थोका सुधार-बिगाड करके, संग्रह विग्रह करके अपनेको सुखी कर ले तो यह बात कभी हो नही सकती। भले ही

यह मनुष्य सोचता है कि मै बाह्य पदार्थोमे इतना कुछ अपने को बना लूँ तो मै निश्चित हो जाऊँगा और सबका परित्याग करके आत्मसाधनामें लगूँगा, लेकिन ये सब उनकी कल्पनायें मात्र है। आज इस प्रकारकी कल्पना है, पर उतनी स्थिति बन जानेपर फिर कल्पना अन्य प्रकारकी होने लगेगी। परके स्नेहमे यह जीव सुखी नही हो सकता, शात नही रह सकता। शान्ति चाहिये तो समग्र परविषयक विकल्प एक साथ छोडने होंगे। धीरे-धीरे मै छोडूँगा, इस प्रकारसे तो बात नही बनती, अतः सब कुछ एक साथ त्यागना योग्य है। मैं अपने आपको निर्विकल्प ज्ञानमात्र अनुभवता रहूं, बस यही मेरेको करनेका काम पडा है, अन्य कोई काम करनेको नही पडा है। इस तरह जो एक सहज ज्ञानमात्र अपने स्वरूपका अनुभवन करता है वह पुरुष स्वयंभू होता है।

छिन्दन्शेषानशेषान्निगलवलकलीस्तैरनतस्वभावैः, सूक्ष्मत्वाग्रदर्शावगाहागुरुलघुकगुणैः क्षायिकै शोभमानः। अन्यैश्चान्यव्यपोहप्रवणविषयसम्प्राप्तिलब्धप्रभूवैरूर्द्धव ब्रज्यास्वभावात्समयमुपगतो धाम्नि सतिष्ठतेऽग्रये ॥५॥

शेष औपचारिक दोषोके भी विलयसे सिद्धता—अरहन्त अवस्था भी एक मुक्त अवस्था कहलाती है। जीवन्मुक्त अवस्था आत्माके गुण सिद्धको तरह ही अनन्त रूपमे प्रकट हुए हैं—इस दृष्टिसे वह एक मुक्त अवस्था ही है। अब जो कुछ थोडीसी

बाहरी उपाधियाँ शेष रह गयी थी उनका भी विनाश हुआ तो पूर्ण मुक्त अवस्था हो जाती है। जो शेष बची हुई उपाधियाँ रह गयी, द्रव्यकर्मोमे चार अघातिया कर्म रह गये, नोकर्म शरीर रह गया, जो कुछ भी शेष अशेष दोष है उन सबको दूर करता हुआ अब यह अनन्तस्वभाव क्षायिक गुणोसे शोभायमान हो जाता है। जो कुछ शेष रह गया था विकास जो किसी भी कारणसे परम्परासे समझिये वह पूर्ण प्रकट हो जाता है, अर्थात् चार अघातिया कर्म वेदनीय, आयु नाम और गोत्र, इनका जब अभाव होता है तो चार गुण और प्रकट होते है। वेदनीयका अभाव होनेसे अव्याबाध गुण प्रकट होता है, आयुका अभाव होनेसे अवगाह गुण प्रकट होता है, नामकर्मका अभाव होनेसे सूक्ष्मत्व गुण प्रकट होता है और गोत्रकर्मका अभाव होनेसे अगुरुलघु गुण प्रकट होता है। यद्यपि मोहनीयकर्मका अभाव होनेपर वेदनीयकर्म कुछ फल देनेमे समर्थ नही है, पर मोहनीयका सहारा लेकर भी वेदनीय यह काम करता है। वेदनीय अभी मौजूद है। अरहत भगवानके अन्तमे वेदनीयका भी नाश होता। पूर्णरूपसे अव्याबाधगुण प्रकट हुआ है, किसी भी प्रकारकी अब बाधा नही है।

ससारकी बाधारूपता और वेदनीयकर्मके अभावसे अव्याबाधता—देखिये दुःख भी बाधा है और सुख भी। जैसे यह जीव दुखसे क्षुब्ध रहता है, व्यग्र रहता है, इसी प्रकार यह

जीव सासारिक सुखसे भी व्यग्र रहता है। सांसारिक सुखोमें शान्तिलाभ नही है। यह मोहवश मानता है कि मुझे शान्ति है, बडा सन्तोष है, बडप्पन पैदा हुआ है, मै अब सही हू, ठीक हूं, मानता है। परसुखसे, उपभोगसे जीवको शान्ति नही प्राप्त होती। किसी भी प्रकारका सासारिक सुख लो, एक खानेका ही सुख देखिये, जब यह मनुष्य खाता-पीता है उस कालमे भीतरके परिणाम और यत्नको देखिये—वहाँ शान्ति है या क्षोभ मचा हुआ है, काम करनेको पडा हुआ है। अब दूसरा कोर खाया, अब इसके बाद क्या खाता है, विभिन्न बाते होती रहती है, कहाँ-कहा उपयोग घूमता रहता है, कैसे-कैसे यत्न होते रहते है ? तो वहां क्षोभ है या शान्ति ? वहाँ तो क्षोभ है। कैसा भी इन्द्रियसुख हो, उसके भोगनेके समय इस जीव को शान्ति नही हैं, किन्तु क्षोभ रहता है। तो सांसारिक सुख से भी क्षोभ है और दुःखमे भी क्षोभ है। तो वेदनीयका अभाव होनेसे अब अनन्त अव्याबाध प्रकट हुआ है।

आयुकर्मके अभावसे सिद्धोका अवगाहन गुण—आयुकर्म का अभाव होनेसे सिद्ध प्रभुके अवगाह गुण प्रकट हुआ है। यहाँ ससार अवस्थामे इस जीवके आयुकर्मका उदय था तो इस शरीरसें बँधा हुआ था, यह एक दूसरेमे समा न सकता था, ऐसा एक मूर्त रूप आ गया था। अब आयुकर्मका अभाव होने से वहाँ ऐसा विकास है कि जहाँ एक सिद्ध भगवान है वहाँ

अनन्त सिद्ध भगवान विराज रहे है, एक दूसरेमे समाये हुए है। जैसे हिन्दीस्तुतिमे कहते है कि "एकमांहि अनेक राजे एक मांहि अनेकनो। एक अनेकनकी नही सख्या नमो सिद्ध निरञ्जनो ॥" इस स्तुतिमे कितने ही मर्मोका प्रकाश पडा हुआ है। एकमे एक राज रहा है, प्रत्येक सिद्ध, प्रत्येक आतमा अपने आपमे ही विराज रहा है। अपने आपके ज्ञानसे, अपने आपके आनन्दसे वे अपने आपमे तृप्त है, परिणम रहे है। एकमे दूसरा नही बैठा है, एकमे दूसरेका स्पर्श नही है, और एकमे अनेक विराज रहे है। जहा एक सिद्ध भगवान है वहाँ अनेक सिद्ध भगवान है, यो एकमे अनेक भी हैं। और तीसरी बात और भी सुनो कि जहाँ एक अनेककी कोई सख्या नही, कोई विधान नही, वह एकस्वरूप है। जब स्वरूप दृष्टि जाती है तो स्वरूपद्रष्टा पुरुषको न वहाँ एक दिखता है, न अनेक दिखता है। अद्वैतवादियोने तो समग्र तत्त्वोको अभेद करके एक स्थापन किया है कि तत्त्व एक है, लेकिन इस अध्यात्मदृष्टाने जो कुछ अनुभव किया है अपने आपके उस स्वरूपके अनुभवके सम्बधमे एक अनेकका भी विकल्प नही है। तो वह अब सोचिये सिद्ध एक है अथवा अनेक है। जब स्वरूपदृष्टि जाती है तो वहाँ एक और अनेककी कुछ सख्या नही है, वह तो एक निरञ्जनस्वरूप है। भक्त पुरुष ऐसे निरञ्जनस्वरूपको प्रणाम करते है। तो सिद्धप्रभुमे ऐसा अवगाह गुण प्रकट हुआ है।

नामकर्म व गोत्रकर्मके अभावसे सिद्धोमें सूक्ष्मत्व व अगुरुलघुत्वका प्रकाश—नामकर्मके अभावसे अब वह स्थूलता मूर्तरूपता मिटी और सूक्ष्मत्व गुण प्रकट हुआ। आत्मा यद्यपि सूक्ष्म है, स्थूल नही बन गया, रूप रस गध स्पर्शमय नही हो गया, लेकिन ससारावस्थामे आत्मा ऐसा बन्धनबद्ध है कि जैसे यह शरीर एक भीतको पार नही कर सक रहा है तो हमारा आत्मा भी इस समय भीतको पार नही कर सक रहा है। यह मूर्तता, यह स्थूलता भी मिट जाती है तब नामकर्म नहीं रहता। गोत्रकर्मके अभावसे ऐसा अगुरुलघुत्व गुण प्रकट होता है कि जहाँ कुछ भी छोटे बडे का व्यवहार नही। लोग अरहन्त अवस्था तकमे भी छोटे बडेका व्यवहार करते है। यद्यपि वहाँ उच्च गोत्र ही है, सब उच्च ही उच्च है, लेकिन लोगोंकी दृष्टि तो देखिये—तीर्थंकर भी अरहत हुए, सामान्य भी अरहंत हुए, लेकिन वहाँ भी इनमे भेद डाल लेते है, और इनके भेद डालने की आदतको कहाँ तक रोका जाय ? सिद्ध होनेपर भी भूतपूर्व न्यायसे भेद डाल लेते है, लेकिन वर्तमान परिणमनसे वहाँ भेद नही डाला जाता है। ऐमा अगुरुलघुगुण प्रकट हुआ है कि वहाँ कौन बडा है और कौन छोटा है ? ऐसे इन बाह्य अतिशयोसे भी, इन गुणोसे भी शोभायमान है, सिद्ध भगवानकी महिमामे यह बताया जा रहा है। वस्तुत तो आत्माके गुण सभी अरहत अवस्थामे प्रकट हो गये। अब अघातिया कर्मोंके

कारण जो बात न हो सकी थी, अघातिया कर्मोंके दूर होते ही वे गुण भी प्रकट हो जाते है। यो सिद्ध भगवतमे ऐसी विशुद्धि निरखी जा रही है कि वे सर्व प्रकारसे पूर्ण विशुद्ध है।

सिद्धिके लिये सिद्धकी प्रतिच्छन्दस्थानीयता—हम आपको क्या बनना है, इसके लिए हम यदि उस सिद्ध स्वरूपको जान रहे है तो उपयोगसे सकेत कर लेंगे कि हमको यह बनना है। संसारकी किसी भी परिस्थितिमे आत्माकी पूर्णता नही, आनद नही, समृद्धि नही। आत्माकी समृद्धि तो एक इस सिद्ध अवस्थामे है। तो हमे जो बनना है वह हमारे उपयोगमे न आये तो हम बनेंगे क्या ? क्या कदम बढायेंगे ? इससे हम सिद्ध स्वरूपका निर्णय कर रहे है कि सिद्ध भगवन्तका कैसा स्वरूप है जो कि प्रकट हुआ है, और स्वरूप जब जानेंगे तब हममे उनके प्रति अतिशयभक्ति प्रकट होगी, इससे हम अपने आपके ही स्वरूपको जान रहे है। सिद्ध भगवानका स्मरण करके सिद्ध भगवानमे जिसका विकास हुआ है वह स्वरूप मुझमे वैसा ही है जैसा कि सिद्ध भगवानका है। यो अपनेको और सिद्ध प्रभुको कभी एक करता हुआ, कभी भेद डालता हुआ यह भक्त सिद्धकी भक्ति कर रहा है।

असिद्धकी युक्तिसे सिद्धरूपता—यह आत्मा आत्मातिरिक्त भावोसे नेह तोडकर जब केवल स्वमे स्थित होता है तब यह अपनी साधना करने वाला कहा जाता है। यह अवस्था होती

है एक निर्ग्रन्थस्थिति मे। वही पुरुष जब इस आत्मतत्त्वकी उपासनाके बलसे घातियामलोसे दूर होता है तब अरहंत होता है। अर्ह धातु पूजा अर्थमें है, अल् धातु भी पूजा अर्थमे है। अर्हन् अल्य. आदिक सकलपरमात्माके नाम है। इस सकल परमात्माके अपनी आयुके समाप्त होते ही कर्मोंका एक साथ वियोग होता है और उसी समय शरीरका भी वियोग होता है तब यह द्रव्यकर्म, भावकर्म तथा नोकर्म, इन तीन कर्ममलोंसे रहित पूर्ण सिद्ध परमात्मा कहलाता है। भावकर्मसे रहित तो यह सकलपरमात्मा भी था, पर अब त्रिविध कर्ममलसे वर्जित हो जाता है। उस समय सिद्ध भगवान शरीररहित केवल ज्ञानपुञ्ज विशुद्ध ज्योतिर्मय आनन्दानुभवसहित तृप्त रहता है।

सिद्धोमे प्रतिक्षण विशुद्ध परिणमन—सिद्ध भगवान सिद्ध पर्याय परिणत चेतन द्रव्य ही तो है, अतएव प्रतिक्षण अपनी नवीन पर्यायोमे अपना नवीन-नवीन अनुभव करते है, पर उनकी पर्याये सब सदृश होती रहती है। इसका कारण यह है कि आत्माकी विसदृश विषमपरिणतिका कारण कर्म है। कर्मबन्धन से वे विमुक्त है इस कारण जान रहे है सबको, सो प्रतिक्षण सबको जान रहे है। जानन कोई ऐसा काम नही है कि एक बार जान लिया सो काम पूरा हो गया। अगर जाननेका काम पूरा हो गया तो दूसरे समयमे फिर क्या वह जानता नही है? सदृश, ज्योका त्यो जाना, तिसपर भी नवीन समयकी जानन-

ये जीव अष्टकर्मोंसे मुक्त होनेके बाद सीधा ऊपर ही जाकर लोकाग्रभाग पर विराजमान होते है अथवा जैसे एरण्ड बीज ऊपर पेडमे लगे होते है जिनका छिलका सूखनेपर बहुत जल्दी फूट जाया करता है। तो जब तक वह बीज छिलकेमे बधा हुआ था तब तक जहाँका तहाँ था और जिस समय छिलका फूटता है उस समय वह बीज ऊपर जाता है। दृष्टान्त केवल इतना ही लेना है। इसी प्रकार जब यह जीव कर्म नोकर्मके बन्धनमे था तब जहाँका तहाँ था। अब बन्धनसे छुटकारा पाने पर, अष्ट कर्मोंसे रहित होनेपर वह सीधा ऊर्ध्वगमन करता है अथवा जैसे कीचडसे भरी हुई तूमी पानीमे पडी है तो वह नीचे दबी है, पर जिस समय उस तूमीका सारा कीचड धुलता है, पतला होकर बाहर निकलता है तो पूरी तरहसे वह कीचड निकल जानेके कारण तूमी स्वय हल्की हो जानेके कारण, निर्भार निसग होनेके कारण ऊपर आ जाती है, पानीके ऊपर पहुच जाती है। इसी प्रकार अनेक सगसे दबा हुआ होनेसे यह जीव इस भवसागरमे डूबा हुआ है। जब युक्तियोसे, उपायोसे, ज्ञानप्रकाशसे, ज्ञानभावनासे इस कर्म कीचडको यह जीव धो देता है, पूर्वसगसे रहित होनेपर निर्भर होता है तब यह ऊपर लोकाग्रपर विराजमान हो जाता है अथवा जीवमे ऐसा स्वभाव ही पडा है कि इस प्रकार गमन करे जीव, निसग हो, केवल रहे, सर्वसे रहित हो तो जीव ऊपर ही पहुचेगा। यह

रोकेसे रुका है यहाँ। निसर्गतः तो ऊपर ही रहनेका स्वभाव रखता है। जैसे बच्चोके गुब्बारे होते है उनका भी ऊपर ही ठहरनेका काम है। बच्चे लोग उसे डोरीमे बांधे रहते है, हाथसे पकडे रहते है तव वह रुका रहता है और जब उसे हाथ से छोड़ देते है तो वह झट छत पर उडकर पहुच जाता है। तो ऐसे ही निर्भार होकर यह जीव एक समयमे ही लोकाग्र शिखरपर विराजमान हो जाता है।

गति प्रगति—जीवकी गति देखिये—एक समयमे यह जीव ७ राजू पहुच जाय लोकाग्रपर, यह तो निर्भार जीवकी गति बतायी। वह नीचे नही मौजूद होना। अगर नीचे भी होता तो कर्मरहित एक समयमे १४ राजू पार कर जाता और सिद्धकी बात भी क्या कहे, मलिन जीव भी एक समयमे १४ राजू गमन कर जाते है। निगोदिया जीव मरणके बाद जन्म के लिये एक समयमे नीचेसे ऊपर पहुच जाते है। और जीव की ही बात क्या कहे एक अणु भी अपनी गति शक्तिसे चौदह राजू गमन कर जाता है एक समयमे। तो ये क्षायिक गुणोसे शोभायमान आत्मीय गुणोसे विराजमान सिद्ध प्रभु विशुद्ध होकर एक समयमे ही लोकके अग्र भागपर विराजमान हो जाते है। यह सब प्रभाव है स्वसमयना प्राप्त करनेका।

अन्याकाराप्तिहेतुर्न च भवति परो येन तेनाल्पहीनः,
प्रागात्मोपात्तदेहप्रतिकृतिरुचिकराकार एव ह्यमूर्तः।

और आनन्दानुभवन करते रहते है। यही परिणमन उनमे अनन्त काल तक चलता जायगा।

पर्यायोंके होते रहनेके अव्ययसे वस्तुकी अवस्थितता— देखिये नित्य शब्दका क्या अर्थ है ? जैसे सूत्रजी मे कहा गया "तद्भावाव्यय नित्यम्" वस्तुस्वरूपके जानने वाला पुरुष किसी भी अर्थमे ढाल ले, उसके लिए वे सब अर्थ होते है, पर हो वह तत्त्वमर्मका जानने वाला। इसके शब्दानुसार अर्थ यह है कि वस्तुके भावका विनाश न होना उसे नित्य कहते है। भाव का क्या अर्थ है ? भवन भाव., सो वस्तुमे होते रहनेका विनाश न होना इसका नाम नित्य है, इसे थोडा अब और आगे चल-कर यो कह लीजिये कि वस्तुमे पर्यायके होते रहनेका विनाश न होना, इसका नाम नित्य है। कोई भी पदार्थ कूटस्थ नित्य नही हो सकता। नित्यता यही है कि उसमे पर्यायें निरन्तर होती रहे, उसमे अन्तर न आये।

सिद्धोंकी सर्व गुणोसे शोभमानता—ये प्रभु ऐसे अपने अनन्त अविनाशी क्षायिक गुणोसे शोभायमान है और जिन गुणोसे अवगुणके परिहारसे जो कुछ सत्त्व पाया है उनसे भी प्रभाव आत्मगुणोका बढ गया है। इसे यो समझिये कि अरहत अवस्थामे अनन्तज्ञान, अनन्तदर्शन आदिक अनुजीवी गुण व्यक्त हो ही गये थे, पर जो अवगुण ससारमे लद रहे थे, स्थूलता होना, समाई न होना, छोटा बड़ा होना, बाधायें होना, ये

अवगुण दूर हुए कि चार प्रतिजीवी गुण और प्रकट हुए। तो इन गुणोके प्राकट्यसे भी महान प्रभाव बढ गया है। ऐसे अनन्त गुणो करके शोभायमान है वे प्रभु। ये अरहत प्रभु कब तक शरीरमे रह सकेंगे ? जब स्थिति पूर्ण होगी उस समय यहाँ कहाँ विराजे होगे ? शरीर तो कर्पूरवत् उड जायगा, फिरसे कहाँ विराजेंगे ? कोई लोग सोचते है कि वे प्रभु विश्वव्यापी हो जायेंगे, कोई लोग सोचते है कि वे अणुवत् रह जायेंगे, पर जिस हालतमे वह तत्त्व समाया है, जिस प्रदेशमे, जिस आकारमे उससे वे घट-बढ गये नही हो सकते। उस ही आकारको लिए हुए एकदम ऊर्ध्वगमन स्वभावके कारण लोकके शिखरपर जाकर विराजमान हो जाते है। जब लोग ऐसे महादेवको, बडे देवको नमस्कार करते है तो ऊपर देखकर करते है—हे प्रभो। तो यह प्रणाली भी इस बातको साबित करती है कि परमात्माका वासस्थान ऊपर ही होना चाहिये।

सिद्धोके ऊर्ध्वगमनका वृत्तान्त—जैसे कुम्हार जिसपर घडा बनाता है उस चाकको एक बार खूब तेजीसे घुमाकर उसे छोड देता है और फिर वह चाक घूमता रहता है, क्योकि उसकी उस क्रियामे पहिला प्रयोग है, सस्कार है, इसी प्रकार साधु पुरुषोने साधु अवस्थामे जो अहर्निश लोकके अग्र भागपर विराजमान सर्वत शुद्ध सिद्ध भगवन्तकी उपासना की थी वहाँ ध्यान बहुत-बहुत लगाया था तो उस प्रयोगसे समझिये—अब

परिणति उस समयकी है और वह दूसरी है। जैसे कोई आदमी २ मनका बोझ १५ मिनटसे अपने सिरपर लादे हुए खडा है तो देखनेमे ऐसा लगता है कि वह तो कोई काम नही कर रहा है, पर वह बराबर १५ मिनट तक लगातार काम कर रहा है। कही ऐसा नही है कि उसने पहिले मिनटमें ही काम किया और बाकी १४ मिनट कोई काम नही किया। उसके भीतरी श्रमको देखिये। वह १५ मिनट तक बराबर नया-नया श्रम कर रहा है। यो ही समझिये कि सिद्ध भगवान जान रहे है, एक समयमें जान लेते है समस्त अर्थसमूहको, दूसरे समयमे उसी समस्त अर्थसमूहको जाने तो वे नवीन जाननके श्रम है। यो प्रतिसमय उनमे नवीन-नवीन परिणमन होता है और पूर्व परिणमनका विलय होता है, यथार्थता तो उनमे यह है। अब इस तरहसे भी समझ सकते है कि अभी निकट भविष्यकी लाइनमे स्थित हुआ जान रहे है, अगले समयमे वर्तमान लाइन मे स्थित हुआ जान रहे है और फिर अगले समयमे भविष्य-कालकी लाइनके स्थित हुआ जान रहे है। इस तरहसे भी हम कह सकते है।

सामयिकी परिणतिसे विशुद्ध द्रव्यका अस्तित्व—देखिये परिणमन बिना कोई पदार्थ रह ही नही सकता। सदृश परिणमे तो विसदृश परिणमे तो। जैसे तेलका दीपक जलता है कुछ समय तक तो क्या वह अन्त तक वह नया-नया अपना

अपना परिणमन करता रहता है, तभी तो तमाम तेल जल जाता है अथवा बिजलीका बल्ब जलता रहता है तो दिखनेमें ऐसा लगता है कि यह बल्ब जैसाका तैसा ही जल रहा है, कोई नया काम नही कर रहा, पर ऐसी बात नही है। वह निरन्तर नया-नया काम करता रहता है तभी तो बिजलीका बिल बनकर आता है। इसी प्रकार भगवान प्रतिसमय नया-नया जानते रहते है। प्रतिसमय भगवानका नया-नया जानन है, नया परिणमन है, नया विकास है। अगर नवीनता नही है तो जानना भी नही है और कार्य भी नही है। तो वे प्रभु निरन्तर परिणमते रहते चले जा रहे है और विशुद्ध आनन्द निराकुलताका अनुभव किये चले जा रहे है। इस सदृश-परिणमनमे भी द्रव्यके नाते अगुरुलघु गुणमे अवस्थित षड्गुण हानि-वृद्धि रूपसे परिणमन, धर्म, अधर्म, आकाश आदिक द्रव्यो की भाँति चल रहा है। जो परिणमन अवक्तव्य है, लेकिन थोडा ऐसा अंदाज कर सकते है कि एक परिणमनके बाद जब दूसरा परिणमन होता है तो हानि-वृद्धि उसमे आ ही जाती है। जहाँ मोटे परिवर्तनमें हम मोटे रूपसे जान लेते है वहाँ सूक्ष्म परिवर्तनको हम सूक्ष्म रूपसे जान लेते है। और कही हम उसका ज्ञान नही कर पाते, मगर एक समयके परिणमनके बाद दूसरे समयमे परिणामन होता है तो वहाँ हानि वृद्धियाँ आ रही है। यो सिद्ध भगवान भी प्रतिसमय जानते रहते हैं

ये जीव अष्टकर्मोंसे मुक्त होनेके बाद सीधा ऊपर ही जाकर लोकाग्रभाग पर विराजमान होते है अथवा जैसे एरण्ड बीज ऊपर पेडमे लगे होते है जिनका छिलका सूखनेपर बहुत जल्दी फूट जाया करता है। तो जब तक वह बीज छिलकेमे बधा हुआ था तब तक जहाँका तहाँ था और जिस समय छिलका फूटता है उस समय वह बीज ऊपर जाता है। दृष्टान्त केवल इतना ही लेना है। इसी प्रकार जब यह जीव कर्म नोकर्मके बन्धनमे था तब जहाँका तहाँ था। अब बन्धनसे छुटकारा पाने पर, अष्ट कर्मोंसे रहित होनेपर वह सीधा ऊर्ध्वगमन करता है अथवा जैसे कीचडसे भरी हुई तूमी पानीमे पडी है तो वह नीचे दबी है, पर जिस समय उस तूमीका सारा कीचड धुलता है, पतला होकर बाहर निकलता है तो पूरी तरहसे वह कीचड निकल जानेके कारण तूमी स्वय हल्की हो जानेके कारण, निर्भार निसग होनेके कारण ऊपर आ जाती है, पानीके ऊपर पहुच जाती है। इसी प्रकार अनेक सगसे दबा हुआ होनेसे यह जीव इस भवसागरमे डूबा हुआ है। जब युक्तियोसे, उपायोसे, ज्ञानप्रकाशसे, ज्ञानभावनासे इस कर्म कीचडको यह जीव धो देता है, पूर्वसगसे रहित होनेपर निर्भर होता है तब यह ऊपर लोकाग्रपर विराजमान हो जाता है अथवा जीवमे ऐसा स्वभाव ही पडा है कि इस प्रकार गमन करे जीव, निसग हो, केवल रहे, सर्वसे रहित हो तो जीव ऊपर ही पहुचेगा। यह

रोकेसे रुका है यहाँ। निसर्गतः तो ऊपर ही रहनेका स्वभाव रखता है। जैसे बच्चोंके गुब्बारे होते है उनका भी ऊपर ही ठहरनेका काम है। बच्चे लोग उसे डोरीमे बाँधे रहते है, हाथसे पकड़े रहते है तब वह रुका रहता है और जब उसे हाथ से छोड़ देते है तो वह झट छत ार उड़कर पहुच जाता है। तो ऐसे ही निर्भार होकर यह जीव एक समयमे ही लोकाग्र शिखरपर विराजमान हो जाता है।

गति प्रगति—जीवकी गति देखिये—एक समयमे यह जीव ७ राजू पहुच जाय लोकाग्रपर, यह तो निर्भार जीवकी गति बताई। वह नीचे नही मौजूद होता। अगर नीचे भी होता तो कर्मरहित एक समयमे १४ राजू पार कर जाता और सिद्धकी बात भी क्या कहे, मलिन जीव भी एक समयमे १४ राजू गमन कर जाते है। निगोदिया जीव मरणके बाद जन्म के लिये एक समयमें नीचेसे ऊपर पहुच जाते है। और जीव की ही बात क्या कहे एक अणु भी अपनी गति शक्तिसे चौदह राजू गमन कर जाता है एक समयमे। तो ये क्षायिक गुणोसे शोभायमान आत्मीय गुणोंमे विराजमान सिद्ध प्रभु विशुद्ध होकर एक समयमे ही लोकके अग्र भागपर विराजमान हो जाते है। यह सब प्रभाव है रत्नत्रयको प्राप्त करनेका।

अन्याकारासिहेतुर्न च भवति परो येन तेनाल्पहीनः,
प्रागात्मोपात्तदेहप्रतिकृतिरुचिराकार एव ह्यमूर्तः।

क्षुत्तृष्णाश्वासकासज्वरमरणजरानिष्टयोगप्रमोह-
व्यापत्त्याद्युग्रदुःखप्रभवभवहते. कोऽस्य सौख्यस्य माता ॥६॥

कर्मयुक्तसिद्ध प्रभुका आकार—यहाँ प्रश्न होता है कि कर्ममुक्त हो जानेपर यह जीव किस आकारमे रहता है ? समाधान यह है कि जब यह जीव अष्टकर्मोसे मुक्त हुआ उस समय इस जीवका क्या आकार था, जिस आकारमे यह सदेहताके अत समयमे था, उसके बाद अब मुक्त होनेपर दूसरा आकार बदलनेका वहाँ कोई कारण नही। आत्माके प्रदेशोके आकारका बदले जानेका कारण है कर्मोका उदय। जब जिस प्रकारका कर्मोदय है, जिससे जीव जिस शरीरमे उत्पन्न होता है, उस शरीरमे जो भी जैसा आकार है उस आकाररूप फैलता है। तो कर्मोसे लिप्त होनेपर तो यह जीव नाना आकारोमे रहा करता है, आकार बदलता रहता है, पर मुक्त होनेपर अन्य कर्मोकी प्राप्तिका कारणभूत परउपाधि कर्म तो अब रहा नही तो आकार कैसे बदले ? जो था उससे न हीन होता है, न अधिक। कुछ हीन बताया है वह न हीन होनेकी तरह है। जैसे देहके बाह्य अवयवोमे जो देहसे सम्बन्ध होनेके कारण देह मे रहते है, पर देहसे अलग ऊपर है तो उन अवयवोमे अब भी आत्मा नही है, सो मुक्त होनेपर भी नही है, पर इस समय देह तो लगता है उतना बडा जितने तक केश फैले हुए है जितने तक नख निकले हुए है जितने तक ऊपरकी पतली चाम

फैली है, पर प्रदेश अब भी वहाँ नही है। तो इस तरह हीन है अथवा किसी सिद्धातसे जो थोडी बहुत भीतर पोल है वहाँ ठोस हो जाता है तो ऐसे भी हीनता हुई, पर वह हीनता कुछ नही जैसी है। ज्योका त्यो रह गया — यह स्पष्ट समझमे आता है।

भावदृष्टिसे परिज्ञान सिद्धप्रभुका सुख—हम उस प्रभुके स्वरूपको जाननेके लिए उस निर्णय किए हुए ज्ञानमे से हमे भावोकी प्रधानता रखनी होती है। सिद्ध कितने लम्बे चौडे है, कितने फैल गये है ? कोई सवा पाँच सौ धनुषमे फैले है, कोई साढे तीन हाथमे फैल रहे है, ऐसी दृष्टि देनेमे हम निर्विकल्पता नही पाते है। निर्विकल्पता पायेंगे तो सिद्धका जो भावस्वरूप है, जो स्वभाव है, विकास है उस भावस्वरूपकी दृष्टिसे हम निर्विकल्पता पायेंगे। तो वह वहाँ पहिले पाये हुये देहके प्रमाण आकार वाले है और उसी रुचिर, मनोज्ञ आकार वाले रहते है अनन्तकाल तक। वहाँ साकार होनेपर भी अमूर्त होनेके कारण निराकार ही है। वहाँ क्षुधा, तृषा, श्वास, खाँसी, बुढापा, मरण, अनिष्टसयोग, बेहोशी, बाधा, दुःख आदिक कुछ भी स्थितियाँ नही है। जब ये स्थितियाँ न रही तब फिर उस सिद्धके सुखका माप करने वाला कौन हो सकता है ?

प्रभुके आनन्दकी अवक्तव्यता—सिद्धमे कैसा सुख है, कितना आनन्द है, इसका कौन माप कर सकता है ? सिद्धको

जो अनन्त आनन्द उपलब्ध है हम उसे स्पष्ट कहकर नहीं बता सकते। जब यहांके पदार्थोंके उपभोगका सुख भी नहीं बता सकते लोग, तो स्वाधीन निर्विकल्प अनन्त आनन्दको बता ही क्या सकेंगे? जैसे हम पूछे कि भला दूधका स्वाद कैसा होता है? तो आपको बताना कठिन हो जायगा। एक बार एक भाईसे हमने पूछा कि बताओ गोभीके फूलका स्वाद किस तरहका होता है? न जाने इतनी अभक्ष्य चीजको भी क्यो लोग खाते है? हमे तो इसके स्वादका कुछ पता नही है, सो बतावो कि कैसा होता है उस गोभीके फूलका स्वाद? तो उसने बहुत-बहुत विचार किया, पर कोई उत्तर ही न दे सका। थोडी देरके बादमे कुछ सोचकर बोला कि जैसे बाजरेका पेड़ जिसमे बाल होते है वह हरा ठूठ, उसको जलानेपर जैसे फस फसका स्वाद होता है वैसा स्वाद गोभीके फूलमे आता है। इतना उसने बताया, फिर भी हमारी समझमे कुछ न आया। सो भाई यह भी तो बताओ कि उसमे मिठास होती है यो कैसा स्वाद होता है? वह बेचारा कुछ भी न बता सका, पर मुद्रासे यह समझमे आया कि बदबू और बिरसता ही उसमे है। तो भाई जब यहांके सुखोका ही कोई स्वाद नही बता सकता तो फिर प्रभुके उस अनन्त आनन्दका तो ये मोही जीव कुछ अनुमान भी नही कर सकते। तो उनका सुख ऐसा सहज स्वाधीन है उसका यहाँ कोई माप कर सकने वाला नही है।

सिद्ध भगवंतके आनन्दकी आत्मोपादानसिद्धता—भगवान सिद्धका आनन्द परम आनन्द कहलाता है। उस आनन्दमे क्या विशेषता है, किस तरहका वह आनन्द है जिससे कि वह परम आनन्द कहलाता है? इस बातको इस छंदमे अनेक विशेषणों से बताया गया है। प्रभुका आनन्द आत्माके उपादानसे सिद्ध है। यद्यपि सभी प्रकारके आनन्द, आनदके विकार, सुख दुःख आदिक सभी आत्माके उपादानसे ही सिद्ध होते है, किन्तु यहाँ आत्माके उपादानसे सिद्ध है ऐसा कहनेका प्रयोजन यही है कि वहाँ बाह्य परपदार्थ आश्रयभूत नही है उस आनन्दके लिए। केवल आत्माके उपादानसे ही सिद्ध है। जैसे धर्मद्रव्य, अधर्म-द्रव्य, आकाशद्रव्यके परिणमन उपादानसे ही सिद्ध है अर्थात् केवल काल ही निमित्तमात्र है, सो कालके सर्वसाधारण निमित्त होनेके कारण उसे निमित्तके विचारमे नही रखा जाता है, सो धर्मादिक शुद्ध द्रव्योका परिणमन उनके उपादानसे ही सिद्ध है। उसमे किसी परपदार्थके निमित्तकी आवश्यकता नही होती जिससे उनका परिणमन बने। इसी प्रकार सिद्ध भगवानके आनन्दमे किसी भी बाह्य पदार्थका आश्रय करनेकी आवश्यकता नही है। होता ही नही है कोई परपदार्थ आश्रय, बल्कि जितने आश्रयसिद्ध सुख है, बाह्य पदार्थोका आश्रय लेकर जो सुख बनते है वे सुख आनन्दरूप नही है, किन्तु वे क्षोभकी ही कक्षायें है।

सांसारिक सुखकी क्षोभरूपता—क्षोभ दो रूपोमे प्रकट होता है। जैसे दु खसे सतप्त पुरुप क्षुब्ध है, आकुलित है अन्त. शान्त नही हे इसी प्रकार सुखसे भी संतप्त पुरुप क्षुब्ध है, उन्हे अन्तरङ्गमे शान्ति नही है। तभी तो देखो ना, कोई विशेप विद्यावान है उसके भी सुख नजर नही आते, कोई मूर्ख हो उसके भी सुख नजर नही आते, कोई धनी हो, वडा आराम हो, वडा वैभव हो फिर भी वह सुखी नजर नही आता। कोई मनुष्य ऐसा नही दिख रहा है इस तृष्णा जगतमे कि जिसने यह मान रखा हो कि मेरे पास तो अव खूव धन हो गया, इससे अधिक धन वढानेकी क्या जरूरत है ? और एक दृष्टिसे देखा जाय तो जिसके पास जो कुछ है वह आवश्यकतासे वहुत अधिक है। सभी लोग अपने आपके बारेमे ऐसा निरख सकते है, क्योकि आवश्यकता है तो एक आत्माको सम्यग्ज्ञानकी और धर्म-अवधारणाकी। यह आवश्यकता ऐसी है कि जिसे मना नही किया जा सकता। यदि इन आवश्यकतावोको मना कर दिया जाय तो जीवन उसका बेकार रहेगा, पतित रहेगा। ससारमे फिर पता नही कहाँके मरे कहाँ जन्मे, क्या हालत होगी ? इस वैभवकी आवश्यकता नही है इस मनुष्यको, इस जीवको, किन्तु सम्यग्ज्ञानके प्रकाशकी और स्वरूपावधारणाकी आवश्यकता है।

जगतकी अरम्यता—यह तो दुनिया है, मायारूप है।

यहाँ कौन किसका प्रभु है ? किसको प्रसन्न करना चाहते हो ? किसे दिखाना है ? अरे अपने आपके आत्मामे अपने आपको दृढ करनेका यत्न होना चाहिये। बाह्यमे किसे क्या दिखाना ? एक नीतिकारने कहा है कि ये चार बाते अनर्थके लिए होती है—अगर एक एक भी हो इन चारोमे से तो भी अनर्थके लिए है—जवानी, धनसम्पदा, प्रभुता-चला और अविवेक अज्ञान। यदि मनुष्यमे ये चारो बाते आ जाये—जवानी भी हो, धन वैभव भी हो और समाजमे लोगोमें घरमे चला हो, जिसकी बात चलती हो और साथ ही अज्ञान हो तो उसके अनर्थकी तो कहानी ही कौन कह सकता है ? तो यहाँके सुख, यहाँकी बाते ये विश्वासके लायक नही हैं, ये रम्य नही है। यहाँ मन रमाना योग्य नही। इन्हे तुच्छ समझा जाय। जिसे सत्य आनन्दकी अनुभूति होती है, यथार्थ तत्त्वका ज्ञानप्रकाश होता है उस पुरुषको ये तीन लोककी सम्पदा इन्द्र सरिखे भोग ये सब उसे तुच्छ दीखा करते है। क्या है उनमे दम ? पौद्गलिक है, रूप, रस, गंध, स्पर्शके ढेर है। इनमे आत्माको तृप्तिका क्या साधन पडा हे ? तो यहाँके आश्रयसिद्ध सुख सुख नही है, ये रच भी रमण करनेके योग्य नही है। यहाँके सुहावने लुभावने ये बाह्य पदार्थ इस जीवको पतित कर देनेके कारणभूत है। केवल आत्मसंयमन ही उत्थानका हेतु है। साधुवोका आतरिक तपश्चरण क्या होता है ? यथार्थज्ञान बनाये रहना, पर-

पदार्थोंसे मेरा रच भी सम्बंध नही है। इस तरह अपने इस ज्ञानस्वरूप आत्मतत्त्वको पृथक् निहारना और उस ही एकत्व-स्वरूपको निहारकर निरन्तर तृप्त बने रहना, यही है साधकका तपश्चरण। इस ही आध्यात्मिक तपश्चरणके प्रतापसे जो आनदानुभूति होती है उसका यह प्रभाव है कि जैसा सिद्धमे अनत आनद है वह प्रकट होता है। तो प्रभुका आनद आत्मा के उपादानसे सिद्ध है। इस ही कारण वह एक उत्कृष्ट आनन्द है, परम आनन्द है।

अनर्थके मूल—नीतिकार कहता है कि सब कुछ जो आत्माधीन हो वह तो सुख है और सब कुछ जो परके आधीन है वह सब दु'ख है। लेकिन इसको इस तरह न घटा लेना कि परिवारमे रहते है, स्त्री-पुत्रके बीच रहते है, हमारा घरका रोजिगार है, हम घरपर ही अपने सब भोग भोगते हैं तो हमारा सुख आत्माधीन है। नही, वह पराधीन सुख है। अरे कौन है तुम्हारा ? ये स्त्री, पुत्र, परिजन क्या तुम्हारे है ? अरे इस जगतमे इन अनन्तानन्त जीवोमे से अटपट कोई दो-चार जीव घरमे आ गये, ये कैसे है तुम्हारे ? उनके बीच रहकर, उनमे रमकर जो सुखकी कुछ भी भ्रान्ति की जाती है वह भी पराधीन है। जिस वैभवमे रमकर या जिन लोगोंके बीच रह-कर मौज माना जा रहा है वे आत्माधीन है क्या ? यह वैभव दु'खका कारण है। चोर लूट ले जाये, अनेक प्रकारके उपद्रव

आते है, कभी घाटा पडता है, धोखा होता है, कितनी ही स्थितियाँ होती है। वह वैभव तुम्हारे सुखके लिए है क्या ? अरे वह तो दुःखके लिए है।

ज्ञानस्पर्शी व अज्ञानस्पर्शी प्रवृत्तियोमे अन्तर—एक ज्ञान की ओर अपनी धुन रखने वाला गरीब गृहस्थ जो एक आत्मतत्त्वकी ज्ञानकिरणोके प्रकाशसे अपना अन्तः प्रसन्न बना रहता है। उसकी स्थिति देखिये—और बडे-बडे बाह्य वैभवके साम्राज्य मे जो हाय-हाय करके अपनेको उद्विग्न करके दिल थामे रहा करते है। उन्हे जरा-जरासी घबडाहटमे डाक्टरकी आवश्यकता पडती है। एक उनकी स्थितिया देखिये। अपने ही ज्ञानसे प्रसन्न रहने वाले पुरुषके शरीरमे ऐसा भी रोग हो कि जिसका पता यदि धनिकको पड जाय तो उसका दिल बेकाबू हो जाता है और हार्ट अटैक होने लगता है ऐसा भी रोग हो, ऐसे गरीब ज्ञानसे प्रसन्न रहने वाले पुरुष तो वह रोगका भान ही नहीं करते। उतना ही श्रम, उतनी ही दौड-धूप, उतना ही काम, वैसा ही उत्साह। क्या बिगडा उस स्वरूपका ? कहाँ आनन्द ढूंढ रहे हो ? आनन्द है अपने आपके स्वभावके निकट रहने मे। यदि वह किसी भी बाह्यपदार्थके आकर्षणमे हो, घर-परिवार किसी भी परके आकर्षणमे हो तो उसे तो क्षोभ ही है, आकुलता ही है।

सिद्ध भगवंतके आनन्दकी लोकोत्तरता—सिद्ध प्रभु सब

दोषोसे अतीत हो गये, द्रव्यकर्म, भावकर्म, नोकर्मसे रहित केवल ज्ञानज्योतिपुञ्ज मात्र रह गये है, उनका आनन्द आत्माके उपादानसे सिद्ध है। सिद्धप्रभुका आनन्द स्वय अपने आप ही अतिशयवान है, अधिक है, अतिशय सम्पन्न है। संसारके ये सुख, ये सर्वसाधारण सुख जिनको पाकर लोग आनन्द मानते हैं—अरे किसी अमीरने बढिया सोने-चाँदीके सजे-सजाये थाल मे कुछ थोड़ा भोजन कर लिया तो उसमे उसने सुख मान लिया और ये तिर्यञ्च जानवर आदिक कही अभीष्ट घास खाकर सुख मानते है, तो उन दोनो सुखोमे कोई फर्क है क्या? अगर वह बड़ा पुरुष सोने चाँदीके थालमे भोजन करनेमे सुख मानता है तो ये जानवर (गाय, बैल, भैस आदिक) भी तो जमीनपर ही अपने अभीष्ट भोजनको खाकर सुख मानते है तो उन दोनोके सुख माननेमे कुछ भी अन्तर है क्या? बडे लोग बड़े-बडे भोगके साधनोमे, बडे महलोमे, बडी सजावटमे, बडे शृङ्गार और आभूषणोसे स्त्रीको सजाने और नाना तरहके कार्य करके सुख भोगते है और ये तिर्यञ्च भी विषयसुख भोगते है तो क्या उन दोनोके सुखोमे कोई अन्तर है? दोनो ही एक तरहका मौज मानते है। इन इन्द्रियजन्य सुखोमे कौन-सी विशेषता है? ये सब बेकारके सुख है। सब तुच्छ है, परन्तु सिद्ध भगवानका यह आनन्द अतिशयवान है, महान है, आदर्श है। वास्तवमे स्वाधीन आनन्द ही एक उत्कृष्ट आनन्द

है जिससे बढ़कर आगे और किसी भी स्थितिकी आवश्यकता नही रहती है। इसी कारण सिद्ध प्रभुका आनन्द परम आनन्द कहलाता है।।

सिद्ध प्रभुके आनन्दकी बीतबाधता—प्रभुका आनन्द बाधारहित है। जिन सुखोमे बाधाये आये वह सुख क्या सुख है ? उद्यम किया सुखके लिए, बहुत-बहुत श्रम किया सुखके लिए, पर श्रम करके थक जानेके बाद विघ्न ऐसे आये कि जितने उपक्रम बनाये वे उपक्रम भी गायब हो गये। तो यहाँके सुखोमे क्या दम है ? अनेक घटनाये ऐसी अनुभूत हुई होगी कि सुखके लिए बहुत यत्न किया और उसमे कुछ सफलताके चिह्न भी नजर आये, मगर ऐन मौकेपर ऐसी गड़बड हुई, ऐसा विलय हुआ कि जो कुछ था वह भी समाप्त हो गया। कौनसा पुरुष दादा बाबाकी उस ममता भरी निगाहमे प्रायः पला-पुसा न था ? किस पुरुषने अपने बडोकी छत्रछायामे रह-कर स्वतन्त्रताका आनन्द नही लूटा ? न भी लूटे कोई विरला, मगर प्रायः सभीने सुख देखा, पर सबके वे सुख स्वप्नवत् ही हुये। जैसे-जैसे उम्र बढ़ी वैसे ही वैसे नये नटखट, नई बातें हुई। और आखिर सारी जिन्दगीमे बहुत सुखके साधन जुटानेके बाद आती है वृद्धावस्था, सो जरा स्वय ही एक महारोग है। लोग सुखोके लिए यत्न तो भारी करते है, बहुत-बहुत परिश्रम करते है, पर नौबत यह आयी कि इन्द्रिया शिथिल

हो गयी, शरीरसे चल नही सकते और ऐसी स्थितिको देखकर लडके लोग भी आँखे फेर लेते है, बात नही मानते है और उसे बेकार समझते हैं। ये दिन देखने पडते है उसको, जिसने सारे जीवनभर बडे-बडे श्रम करके बडे सुखके साधन जुटाये। सो श्रम तो किया इसने, मगर श्रमका फल भोगा बच्चोने, शौक माना बच्चोने और जीवनभर लदा फिरा यह।

समर्थ जीवनमे शीघ्र हित करनेकी प्रेरणा—एक ऐसा कथानक है कि विधाताने चार जीव बनाये—उल्लू, कुत्ता, गधा और मनुष्य। सबको ४०-४० वर्षकी उम्र दे दी। उल्लू से कहा— जावो तुम्हे पैदा किया।" महाराज मेरा काम क्या होगा ? अरे अधे बने बैठे रहना, कभी कुछ आ गया भोजन तो खा लेना।" महाराज मत पैदा करो, बडी खराब स्थिति है।"'अरे अब तो पैदा कर चुके। तो उम्र कितनी है ? ' ४० वर्ष।' तो महाराज उम्र तो कम कर दीजिये। अच्छा–यह हो सकता है। २० वर्षकी उम्र उसकी काटकर तिजोरीमे रख दी। कुत्तेसे कहा—जावो तुम्हे पैदा किया।' महाराज काम क्या ?' काम क्या होता ? जिस किसीने दो टुकडे खिला दिये उसके सामने पूछ हिलाकर उसका बडा विनय करना और उसका पहरा देना।" महाराज बडा बुरा काम है। अच्छा उम्र कितने वर्षकी ?" ४० वर्षकी।"'महाराज उम्र तो कम कर दो।''अच्छा लो, तुम्हारी २० वर्षकी उम्र कर दी

और २० वर्षकी उम्र काटकर तिजोरीमें रख दो। अब गधेसे कहा—जावो तुम्हे पैदा किया। "महाराज काम क्या ?" अरे दूसरोका खूब बोझा ढोना, भार लादना और जो कुछ रूखा-सूखा भुस मिल गया उसीको खाकर अपना पेट भरना। " महाराज काम तो बहुत बुरा दिया।' महाराज उम्र कितनी दिया ? ४० वर्ष।"महाराज उम्र तो कुछ कम कर दो" अच्छा उम्र २० वर्षकी रख ली। अब मनुष्यसे कहा—जावो तुम्हे पैदा किया। "महाराज काम क्या ?" अरे काम ? खेलना, विवाह करना, भोग भोगना, मौज मानना, बच्चे खिलाना, राज्य करना। ' बहुत अच्छा महाराज। उम्र कितनी ?"४० वर्ष। महाराज उम्र तो कम है, अभी कुछ उम्र और बढा दीजिये, इतनी उम्रसे क्या होता है ? "अच्छा मै देखता हू, यदि उम्र होगी तो और दे देंगे। तिजोरीमे देखा तो ६० वर्षकी उम्र उन तीन प्राणियोकी काटी हुई धरी थी। कहा— लो, तुम्हारा काम बन गया। ६० वर्षकी उम्र और ले लीजिये, अब तुम्हारी उम्र १०० वर्षकी हो गयी। तो होता क्या है ? यह मनुष्य ४० वर्षकी उम्र तक बडे मौजमे रहता है, सभी बडे लोग खिलाने-पिलाने पालन-पोषण करने वाले होते है, वह खूब खर्च करता, खूब खेलता कूदता। तो ४० वर्षकी उसकी असली उम्र थी। उसके बाद २० वर्षकी उम्र गधा वाली आयी। तो ४० वर्षके बादमे इसे खूब जुतना

पडता है, लडकियाँ बडी हो गयी, धन बहुत कम है पासमे, लोगोमे अपनी पोजीशन रखनेकी भी पड गयी, तो अब ६० वर्षकी उम्र तक खूब गधेकी तरहसे जुतना पडता है। नौकर-चाकर तो चाहे समयपर छककर खाते है, पर यह साहब जब थोडासा समय मिला तो बहुत जल्दीमे खाकर फिर झट कामके लिए भाग जाते है। तो ६० वर्षकी उम्र गुजर जानेके बाद अब आती है कुत्ते वाली उम्र। जो बेटा अच्छी तरह रखता हो, परिवारका जो व्यक्ति कुछ अच्छा बोल दे उसकी बात करना, उसकी विनय करना, चापलूसी करना, ये काम रह जाते है, और कामोसे तो गये। वे ८० वर्ष भी गुजरे। अब आयी उल्लू वाली उम्र। अब कुछ भी नही कर पा रहे, पडे है, बैठे है, उठा दिया किसीने तो उठ गये। टट्टी, पेशाब भी खुद नही कर सकते तो दूसरे लोग करवा देते। अब उसको कोई पूछने वाला ही न रहा। यो समय गुजर गया।

लोकसुखकी निःसारता—भैया! यहाँके सुखोका क्या उठता है? आखिर वह बुढापा तो आना ही है। लो सारी जिन्दगीमे जो आराम किया उस सबकी कसर निकलनेकी नौबत तो आती ही है। यहाँ क्या विश्वास करें, किसको अपना मानें? यहाँके सुखोमे बाधाये ही बाधायें है। कर्मोदय अनुकूल नही, वह बाधा, योग्य अभीष्ट साधन नही जुट रहे वह बाधा। जैसे

अपना परिणाम है वैसा परिणमन नहीं हो रहा बाह्य अर्थोंमे, उसकी मानसिक बाधा। यहाँ निर्बाधता है कहाँ ? सारी बाधायें ही बाधायें है, किन्तु सिद्ध भगवतोका आनन्द बाधा-रहित है। वहाँ क्या बाधा ? न कर्म साथ है, न कोई आश्रय-जन्य सुख है, न वहाँ कोई आवश्यकता है, वे अपने अनन्त आनन्दमे नित्य विभोर रहा करते है। ऐसा बाधारहित सुख है प्रभुका। इसी कारण प्रभुके आनन्दको परम आनन्द कहते हैं।

सिद्ध भगवंतके आनन्दकी विशालता—सिद्ध भगवंतोका आनद विशाल आनन्द है। यहाके सुखोकी तो सीमा है, काल-कृत ओर छोर है, जिनका अन्त है, ओर-छोर है, थोडी देरको हुआ, इस समयसे हुआ, थोडे समय रहा, बस समाप्त। भाव-कृत ओर-छोर भी है, सुख तो मान रहे है, पर सुखके साथ शका भी लग रही है, सशय भी चल रहा है, उस शकाकी वजहसे वह सुख छिन्न-भिन्न हो रहा है, उसका ओर-छोर कितना बन जाता है ? वह सुख तुच्छ है। इस जीवने संसार के इन्द्रियजन्य सुख अनेक जगह पाये है, परन्तु यह तृप्त हो ही नही सका। जैसे ईंधन डाल-डालकर अग्निको तृप्त नही किया जा सकता, इसी प्रकार ससारके सुखोको भोगकर, साधन जुटा-जुटाकर अपने आपको सुखसे तृप्त नही किया जा सकता। और सब अपने अनुभवसे विचार सकते हैं कि क्या तृप्त हो सके है

अब तक, बल्कि यह लग रहा होगा कि ऐसा सुख न भोगते, ऐसे दिन न व्यतीत होते, ऐसी कुबुद्धि न करते तो आज हम बहुत अच्छे होते। तृप्त होनेकी बात तो जाने दो। एक हानि टोटा बरबादीका ही अनुभव हो रहा होगा। ये ससारके सुख अति तुच्छ है। इन सिद्ध भगवन्तोका सुख विशाल सुख है।

प्रभुके आनन्दकी वृद्धिहानिव्यपेतता—प्रभुका सुख सम है, हानि-वृद्धिसे रहित है, पूर्ण विकसित है। अब उसकी हानि भी नही और जब पूर्ण है तो उसकी बढोतरीका भी क्या सवाल ? वह तो समग्र है, परिपूर्ण है। प्रत्येक सासारिक सुख वृद्धि और हानिसे सहित है। कभी कुछ बढ गया, फिर घट गया, निरन्तर ये ही बातें चलती रहती है। अरे एक श्रद्धान रखो—ज्ञानके बिना है गरीबी। ज्ञानप्रकाश हो उपयोगमे तो ही वह वास्तविक अमीरी है। आपका साथ देने वाला कौन है दुनियामे ? अरे इस जीवनमे तो साथी नही है कोई। जीवनके बाद, मरणके बाद तो साथी हो ही कौन सकता है ? जो लोग भी साथ निभा रहे है परिवारमे, कुटुम्बमे, मित्र-मण्डलीमे, प्रत्येककी यही बात है कि जो भी साथ निभा रहा है वह अपनी सुख-शान्तिके लिए कुछ साधन समझा है इसलिए साथ निभा रहा है। चाहे बडा हो, चाहे छोटा हो। मालिक भी अगर कारखानेके १००-२०० आदमियोका साथ निभा रहा है तो वह भी कोई नौकरोपर दया करके या उनपर कोई कृपा-

बुद्धि रखकर साथ नही निभा रहा। उसे स्वय विदित है कि इनके ही प्रसादसे तो मुझे आय होगी, मेरे भोगोपभोग साधन जुटेगे, तो अपनी सुख-शान्तिके लिए वह छोटोका साथ निभा रहा है, और वे नौकर, वे छोटे लोग भी मालिकका साथ कही मालिकपर दया करके, मालिकपर करुणा करके नही निभा रहे है, किन्तु वे सब भी यह अनुभव करते है कि इस प्रकारसे इस मालिकका साथ देनेसे हमे सुख-सामग्री मिलती है, हम चैनसे रहते है। परिजनोमे भी यही बात घटा लीजिये। घरके बडे पुरुप, स्त्री, पुत्र, बच्चोका कुछ भी साथ निभा रहे है तो कही उनके किसी नातेसे नही निभा रहे, कोई वास्तवमे रिश्ता नही लगा हुआ है, किन्तु इसने मोहमे ऐसा ही समझा, ऐसा ही करनेसे हमे सुख-शान्ति मिलती है, ऐसे भावोके कारण वह घरके बच्चोका साथ निभा रहा है। घरके छोटे बच्चे भी अगर पिताका साथ निभाते है, साथ क्या कुछ तोतला बोल दिया, विनयसे बोल दिया, कुछ आज्ञा मान ली तो कही वह बच्चा पिताकी भक्तिसे पितापर कृपा करके यो साथ नही निभा रहा है, किन्तु वह जानता है कि इस तरहका व्यवहार रखनेसे हमे सब सुख-सामग्री हासिल होती है और मेरा नाम भी पडौस के लोगोमे विख्यात होता है। जब तक पिता जीवित है तब तक तो उसे सुखकी सुविधा न दी जाय और मरनेपर बडे काज अवसर करके उसके नामपर बड़ी दावते की जाये, बड़े

खर्चे किये जायें, दान दिये जायें। अगर वह पिता चुपचाप देखनेके लिए आ गया होता तो यही कहता कि मेरे मरनेके बजाय जिन्दामे ही सुखसे पानी दे देते तो अच्छा था। क्या है इस संसारमे ? जो कोई जो कुछ करता है वह अपनी सुख-शान्तिके लिए करता है, दूसरेका क्या करता है ? तभी यह आश्रयपरक सुख होनेके कारण ये वृद्धि-हानिकर सहित सुख है, परन्तु सिद्ध भगवन्तोका सुख हानि-वृद्धिसे रहित है, अनन्त आनन्द है, उसी समान आनन्दसे वे सिद्ध भगवन्त निरन्तर तृप्त रहा करते है, जिस आनन्दमे आकुलताका कही रचमात्र भी प्रवेश नही है ऐसा प्रभुका सुख है। उसपर दृष्टि दीजिये और ससारके सुखोपर लात मारिये। उन सासारिक सुखोमे प्रीति करना योग्य नही। मात्र उनके ज्ञाताद्रष्टा रहे, यही अपने लिए हितकर बात है।

प्रभुके आनन्दकी विषयातीतता—सिद्ध भगवानका आनद विषयोसे रहित है। ससारके सुख विषयोका आश्रय करके हुआ करते है। किसी भी प्रकारके सुख हो, उन सुखोके अनुभवनके समय किसी पर-विषयका उपयोग होना ही पडता है। यदि किसी परद्रव्य पर उपयोग नही है तो वह अनुभवन हो ही नही सकता। ऐसा है ही नही कि कोई परद्रव्य विषयमे न आये और आत्मामे सासारिक सुखका परिणमन हो। जब कि आत्मीय आनन्दके विकासमे यह देखा जाता है कि किसी भी

बाह्यका विषय नही बनता । रूप, रस, गंध, स्पर्श और शब्द ये ५ इन्द्रियके विषय हैं और अपनी आख्याके लिए बाह्य किन्ही भी जीव लोकका ध्यान बनाना—ये सब मनके विषय है। सिद्ध भगवानका आनन्द विषयोसे अतीत है, इसी कारण उनके उत्कृष्ट आनन्द है। प्रभुके आनन्दकी जातिका यदि कुछ स्वाद लेना है तो यहाँ भी अपने मनको ऐसा ढालिये, ऐसा एक सकल्प और सत्यका आग्रह करके बैठिये कि समस्त बाह्य पदार्थ मेरे लिए असार है, समस्त विषय मेरे लिए अहितरूप है। इस कारण मै किसी भी विषयका उपयोग न करूँगा ऐसा आग्रह करके यदि विश्रामसे स्थित हो तो उस समय जो भी अनुभूति होती है, उसमे जो भी आनन्दकी परिणति होती है उससे सिद्ध भगवानके आनन्दकी जातिका कुछ अनुमान किया जा सकता है तो सिद्ध भगवानका आनन्द विषयोसे रहित है। यहाँके सुखोका ही नाम वैषयिक है। सुख कहना भी अच्छा अर्थ नही रखता, वैषयिक कहना भी अच्छा अर्थ नही रखता। सुखका अर्थ है—सु मायने सुहावना, ख मायने इन्द्रिय। जो इन्द्रियको सुहावना लगे उसे सुख कहते है। यदि शब्दकी ओरसे देखा जाय तो सुख शब्दको भगवानके विशुद्ध आनन्दकी बातको नही कहना चाहिये, लेकिन अनत सुख परमसुख नामसे इसका प्रचार क्यो है ? तो इसका प्रचार है हम सब ससारी जीवोके समझानेके लिए। शब्दकी व्युत्पत्तिसे निरखा जाय तो सुख तो

सासारिक सुखोको कहते है । जिन्होने सुखको हितरूप माना, अच्छी चीज माना, सुखसे बडप्पन माना, सुखसे सतोप करते हैं, ऐसे प्राणियोको लोकोत्तर सुखकी बात कहनेके लिए, बताने के लिए सुख शब्दका प्रयोग है । अब वैपयिक शब्दपर चलो । विषयोसे जो उत्पन्न हो उसे वैपयिक कहते है । विषयोका उपयोग करके जो आनन्दकी उद्भूति है जिस रूपमे भी वह वैषयिक सुख कहलाता है । भगवानका सुख वैषयिक नही है । स्वतत्र निराश्रय निर्विषय केवल एक उस आत्माके उपादानसे ही सिद्ध है ऐसा विपयविरहित प्रभुका सुख है ।

प्रभुके आनन्दकी निष्प्रतिद्वन्द्वता— प्रभुके सुखमे द्वन्दता व प्रतिद्वदता नही है, किसी दूसरी वस्तुका सम्बध करके, आकर्षण करके, अपेक्षा करके सुख होता तो उसे द्वदज सुख कहते है और प्रतिद्वन्दता नही है— इसका अर्थ यह है कि वहाँ परस्पर कोई हीनाधिकता नही है । जो किसी सुखको छोड करके सुखकी उद्भूति की जा रही हो वे सुख सब द्वन्दभावसे रहित है । आनन्द शब्दका अर्थ है जो अपने प्रदेशोमे सर्व ओरसे समृद्धि- शाली भाव हो । तो समृद्धि यही है जैसा कि आनन्द प्रभुका बताया जा रहा है—स्वाधीन, सहज निराकुल, निस्तरग, क्षोभरहित एक अवक्तव्य है, उसक

तो प्रभुमे सर्व ओरसे समृद्धता है, अतएव उनके आनन्द ही आनन्द है, ऐसा आनन्द प्राप्त करना हम लोगोका भी ध्येय है, होना चाहिये, पर ऐसा आनन्द पानेके लिए हममे कितनी अपने लिए नम्रता हो, हम अपने आपमे कितना नम सकते हो, अपने लिए हम कितना विनयशील बन सकते है ? इसकी भी कुछ बात जाननी चाहिये। जो भव्य पुरुष इस जगतके मायामय लोगोमे कुछ भी अपनी चाहना रखे, पोजीशन, इज्जत, सम्मान-अपमान अथवा कुछ विषयसुख अधिक मिलने आदिककी कुछ अपेक्षा न रखता हो और जिसकी धुनि केवल यह हो कि जब मै आत्मा स्वभावत सहज निस्तरग ज्ञानानन्दमात्र हू, मेरी शक्ति, मेरा स्वरूप जब ऐसा है तो यही स्वरूप रहो, ऐसी धुन हो जिसकी, इसके सिवाय तीन लोकमे किसी भी पदार्थकी चाह न रखता हो, तीन कालमे भी अन्य पदार्थ मेरे लिए कुछ भी श्रेयस्कर नही है, ऐसी जिसकी श्रद्धा हो, केवल एक यही सहज ज्ञानभावकी दृष्टि—यहाँ ही रहकर तृप्त रहना, यहीका अवलोकन करके, इसको एक उपयोगमे ले करके अपने आपको एक सतुष्ट बनाये रखना, यही मात्र मेरा काम है, ऐसी जिसकी क्रिया हो वही पुरुष इस आनन्दका पात्र हो सकता है।

प्रभुके आनन्दकी अन्यद्रव्यानपेक्षता—प्रभुका सुख अन्य द्रव्योकी अपेक्षा नही रखा करता है जब कि यहाँ कितनी अपेक्षाये रखी जाती है और उन अपेक्षाओमे कितनी प्रकारकी

कपायें करते है, ये सब सासारिक सुख मलिन सुख है, परन्तु सिद्ध भगवानका वह परम आनन्द है, क्योकि उन्हे अन्य द्रव्यो की अपेक्षा ही नही है। सब कुछ जो आत्माधीन हो वह तो वास्तविक सुख है, ऐश्वर्य है और जो पराधीन हो, परकी आशा रखकर हो वह सब एक क्लेश है, विडम्बना है। प्रभु सिद्ध भगवानका सुख अन्य द्रव्योकी अपेक्षा न रखकर होता है। कोई पुण्योदयसे कुछ सामग्री प्राप्त हो तो उसमे भी जो आकृष्टि आसक्ति और उससे अपने आपको बहुत बडा अनुभव करना यह अगर परिणाम बनता है तो इसका फल अन्तमे इससे नीचेकी स्थिति पाना होगा, अतएव सग प्राप्त हो तब भी विरक्ति रहना चाहिये और अप्राप्तकी तो वाञ्छा ही क्या करेगा जो प्राप्तमे भी वैराग्यभावमे रहता है। यह एक साधना है। जब परद्रव्योमे अनाशक्ति अनपेक्षाकी यहा साधना बनेगी तो कभी यह उपयोग एक स्वाधीन रह सकता है, अन्य द्रव्यो की अपेक्षा बिना रह सकता है और उसमे यह विकास आ सकेगा कभी और तभी अन्य द्रव्यकी अपेक्षासे रहित सुख होगा।

प्रभुके आनन्दकी निरुपमता—प्रभुका सुख उपमारहित है। ससारके किस महान व्यक्तिसे सिद्ध भगवानके आनन्दकी उपमा दी जाय ? चाहे कोई सार्वभौम हो, चक्री हो, बडा दिग्गज विद्वान हो, धनी हो, इन्द्र हो, कैसा ही कोई हो, पर

किसके मुखसे भगवानके सुखकी तुलना की जाय ? यहा तो कोई उपमाके योग्य नही है। प्रभुका आनन्द प्रभुकी ही तरह है, इतना ही कहकर एक सतोष किया जा सकता है। ससार के कोई भी प्राणी ऐसे नही हैं कि जिनकी उपमा प्रभुको दी जाय, अतएव भगवानका सुख उपमारहित है। ये सब अनुभूतिया, ये सब विकास अथवा इसके विपरीत बरबादी ये सब अपने आपके सबमे सब अध्यात्म पडे हुए है। हम जैसी अपने आपकी प्रतीति करते है उसके अनुकूल हमपर बात गुजरनी शुरू होती है। हम अपनेको किसी पर्यायरूप अनुभव करते है—मै इसका पिता हू, तो पुत्रकी चिन्ता करके उस पिताको जो कुछ विकल्पमे मरना चाहिये वे सब बातें उसमे आ जायेंगी, क्योकि उसने उस तरहकी प्रतीति की है। अपनी प्रतीति जैसे किसी पोजीशन रूपमे हो, बस ऐसा मै हू तो उसकी परिणति उसके ही अनुकूल चलेगी। जब कोई अपने आपकी प्रतीति इस प्रकार करता है कि मै सहज निस्तरग ज्ञानानन्दस्वभावी हू, केवल ज्योतिप्रकाश, किसी अन्यसे कुछ लेना-देना नही, कोई छोटे बडेकी बात नही, किसी प्रकारका सम्पर्क नही, केवल एक विशुद्ध ज्ञानस्वरूप हू, ऐसा स्वभाव है, ऐसी प्रतीति करेगा कोई तो उसपर यही ज्ञाताकी स्थिति गुजरेगी, वर्तेगी तब वहा वह अपना कुछ लाभ ही पायगा। तो यह सब हमारी प्रतीति के आधारपर बात है। हम अब धर्मके लिए बड़े बड़े श्रम

करते है, पर मौलिक बात यह रखनी होगी कि हम अपने आपको किस तरह प्रतीतिमे लिए हुये है ? यहाँके मोहकी बातें, फिर ये सब बाते सही रूपमे होने लगेगी। प्रभुका आनद ससार के किसी प्राणीके मुखसे तुलना नही करता, वह आनन्द अतुल्य है।

प्रभुके आनन्दकी अमितता—प्रभु के आनन्दका कभी विनाश नही होता, उस आनन्दका कही परिमाण नही। सुख का परिमाण अर्थात् यह कम सुख है, यह ज्यादा सुख है। साँसारिक सुखोमे तो इसका परिमाण बताया जा सकता, चाहे वह कैसी हो दृष्टिको लेकर बताया गया हो, पर जहाँ केवल एकरूप आनन्द है, चरमसीमाको प्राप्त आनन्द है, निर्विकल्प है, जहाँ क्षोभ आकुलता जरा भी नही है उस आनन्दमे क्या परिमाण लगाया जा सकता ? वह आनन्द अपरिमित है, भाव से अपरिमित है, कालसे अपरिमित है, उसमे कोई सीमा नही है। जब कि ससारके सुखोमे ओर-छोर पाये जाते है। अबसे हुआ अब तक है। लो इतना है, इतनी कमी रह गयी। सुख का भी थोडा-थोडा ख्याल बनता है और भय सकट शक्ति विडम्बना इनका भी साथ परिणाम रहता है तब उस सुखकी क्या महत्ता, क्या अमितता ? सिद्ध भगवानका सुख हर प्रकार से अमित है, कोई धोखा नही, कोई उसकी विरुद्ध विपरिणति नही हो सकती है। उनका आनन्द अमित है।

प्रभुके आनन्दकी शाश्वत सार्वकालता—प्रभुका आनन्द शाश्वत है, सदा रहने वाला है। इस ही उपादानकी ओरसे निरखा जाय। बाधाका क्या प्रश्न है? किसी भी समय आनद के परिणमनमे अन्तर आये, अन्तराय आये, विघ्न आये, ऐसा प्रभुके आनदमे नही होता। अब उस दशामे कौनसा ऐसा भाव हो सकेगा जिसके कारण उनके आनन्दमे बाधा आ सके। जब कोई कल्पना ही नही, जब किसी बातकी शका ही नही, कोई उस परिणमनमे रोध ही नही तब वह मिटे, यह कैसे सम्भव है? सिद्ध भगवानका आनद सर्वकाल है। देखिये ऐसा आनद-निधान अपनी स्थिति बनानेके लिए पूर्ण निर्विकल्प होना ही होगा, निस्तरग परमशान्त क्षोभरहित ऐसी स्थिति होनी ही होगी, तो जिसके बिना उत्कृष्टता नही, जो बात आगे चलकर होगी उसे अभीसे ही जितना बन सके शक्तिके अनुसार अधिक से अधिक रूपमे करनेका यत्न क्यो न किया जाय? न किया जाय, इस ही का नाम प्रमाद है। धार्मिक प्रमाद क्या? विषय कषायोमे उत्साह जगाना और विषय लाभोसे अपने आपका एक बडप्पन समझना, ये सब उसके विघ्न है। अपने आपको एक अवनतिमे ले जानेकी बात है। जो उद्देश्य बनाया गया सिद्धको उदाहरणमे लेकर उसके विरुद्ध बात है ऐसी स्थितियों से हम उस सन्मार्गमे अपने कदम नही बढ़ा सकते है। तो प्रभु का यह आनन्द शाश्वत है, सर्वकाल है, निरतराय है, रोध-

रहित है।

प्रभुके आनन्दकी उत्कृष्टानन्तसारता—प्रभुका आनन्द उत्कृष्ट अनन्त सार वाला है, पूर्ण सार है, उत्कृष्ट सार है। कभी यहांकी योग्य शुद्ध परिणतियोके अशोमे अपने शुद्ध आंशिक शुद्ध आनन्दका अनुभव करते है, जब ऐसी समाधि भी सार है, ऐसी समता सारभूत है, ऐसा निरपेक्ष आनन्द सार है, तो उस ही जातिमे और बढ़-बढकर जहाँ परमसार अवस्था होती है उसे कहते है उत्कृष्ट सार वाला और वह अनन्त है, अविनाशी है, ऐसा उत्कृष्ट अनन्त सार वाला प्रभुका आनन्द है, इसमे कोई सन्देह नही। यह सिद्धभक्तिका पाठ है, इसमे सिद्धकी भक्ति की गई है। सिद्धकी भक्तिसे प्रयोजन क्या है कि मेरी सिद्धिकी प्रसिद्धि हो, और वह सिद्धि क्या है? तो आत्माकी उपलब्धिका नाम सिद्धि है, आत्माके गुणोके विकास का नाम सिद्धि है, किन्तु अनादिबद्ध आत्मा जब अपने यथार्थ बोधको प्राप्त हो और यह अनुभव करे, ओह यह मै तो दुःख-रहित ही हू, ज्ञानानन्दस्वरूप हू, फिर उसका उपादान रहे, ग्रहण रहे, उसकी आराधना रहे तो उसके प्रसादसे निर्ग्रन्थ साधुजन एक गुणकी चरम अवस्थाको प्राप्त करते है और फिर रहे-सहे जो कुछ बहुत रोधके कारण बने थे, विकासके, विरोधके, कारणोके कारण बना करते थे उन दोषोका भी अभाव होता है, अघातियाकर्म और नोकर्मका भी अभाव होता

है तब वहां सिद्ध अवस्था प्रकट होती है। उस अवस्थामें उत्कृष्ट अनन्त सार वाला आनन्द है।

उपासकोंका प्रयोजनभूत तत्त्व—सिद्धका उत्कृष्ट ज्ञानानन्दमय स्वरूप जब हमे ज्ञात हो तब हमारा लक्ष्य पुष्ट बनता है। हमे ऐसी सिद्धि चाहिये। तीन लोक तीन कालमे इसके विरुद्ध मुझे कुछ न चाहिये। एक प्रकारसे अगर देखा जाय तो यो कह सकते है कि हमे अपना अस्तित्व मिटा देना चाहिये। यहाँ अस्तित्वके सामने विशुद्ध अस्तित्वकी बात नही कह रहे, किन्तु जिन-जिन पोजीशनोके रूपमे, पर्यायोके रूपमे अस्तित्व समझा जा रहा है वे सब मिटा देने चाहियें अथवा जो कुछ पोजीशन मानी जाती है, जो कुछ इज्जतकी तरग उठती है मनमे, वह सब इज्जत धूलमे मिला देनी चाहिये। मुझे कही कोई मत जाने, मुझे क्या करना है ? न होता आज मै मनुष्य भवमे, अन्य किसी पर्यायमे होता तो लोग मुझे कुछ समझते भी क्या ? तो मै एक सत् हू, चेतन हू, आया हू मनुष्यभवमें तो लोगोमे अपना बडप्पन रखनेके लिए नही, लोगोमे अपना नाम चाहनेके लिए नही, किन्तु मै गुप्त ही रहकर अथवा किसी भी प्रकारका लोग माने, उन सबकी अपेक्षा छोडकर मैं अपने आपमे गुप्त ही गुप्त अपनेमे ही प्रवेश करता हुआ अपने आपको पाऊँ और सहज सुखी होऊँ, इसके लिए यह जीवन है। ऐसा एक अपना विचार सुदृढ होना चाहिये। तो ऐसे ही

विचार भावना और उपासनाके प्रसादसे जो भगवत सिद्ध हुए है उनका आनद उत्कृष्ट है, अनन्त है और निरुपम सारभूत है, ऐसा सिद्ध भगवानका जो सुख है वह उनके ही उपादानसे सिद्ध है अर्थात् अब तो जैसे धर्म, अधर्म, आकाश, काल आदिक परिणमते है, पर उनके परिणमनमे यह कालमात्र निमित्त है, अन्य और कुछ नही है, इसी प्रकार सिद्धके सर्व प्रकारके उन परिणमनोमे निमित्त एक मात्र काल निमित्त है, अन्य कोई पदार्थ नही है। जो पदार्थमे विपय ज्ञेय आते है वे विषयभूत है, निमित्तभूत नही कहलाते। निमित्तमे व विपयमे अन्तर है, अथवा निमित्तमे और आश्रयमे अन्तर है। तो अब वहाँ केवल कालमात्र ही उनके परिणमनमे निमित्त है, ऐसा जो स्वाधीन अन्य द्रव्यकी अपेक्षा बिना जो आनद है सिद्धका वही हम लोगोकी एक उपासनाका विषय है।

नार्थः क्षुत्तृड्विनाशाद्विविधरसयुतैरन्नपानैरशुन्यानास्पृष्टे-गंन्धमाल्यैर्न हि मृदुशयनैर्ग्लानिनिद्राद्यभावात्। आतङ्कार्तेरभावे तदुपशमनसद्भेपजानर्थतावद् दीपानर्थक्यवद्वा व्यपगततिमिरे दृश्यमाने समस्ते ॥८॥

सिद्ध प्रभुके अन्नपानका प्रयोजन न रहनेका कारण—अब प्रभुको नाना प्रकारके रसीले अन्नपानोसे कोई प्रयोजन नही रहा, क्योकि क्षुधा और तृषाका उनके विनाश हुआ है। अन्नपानका प्रयोलन किसी सीमा तक साधु अवस्था तक था,

प्रमत्त अवस्था तक था। था वह भी एक संयमसाधनाके लिए। जिस पुरुषने यह अपना ध्येय बनाया है कि ये प्राण रखना है इस शरीरमे, किसलिए रखना है कि इस समय मन श्रेष्ठ मिला है और बुद्धि धर्म और ज्ञानमे लगनेका काम करती है, हम शान्तिके मार्गपर भी कुछ चल पडे है, शान्तिका स्वाद भी आ रहा है, उस निर्विकल्प आनन्दकी अनुभूति भी कभी हुआ करती है। मुझे यह जीवन बनाना है, ऐसी स्थितियाँ बनानी है उसके लिए वर्तमान योग्यतामे प्राण रखने अपेक्षित हो गए, सो उन प्राणोकी रक्षाके लिए जो कि सयमकी साधनाके लिए ही रखे जाना है। कुछ अन्नपान किया जाता है, पर उस अन्नपानमे गृद्धता न हो, अपने बड़प्पनकी चाह न हो, उसमे मौज न माना जाय, उसमे अपनी चतुराई न समझी जाय, किन्तु जैसा मिले सुलभतया, बस वह प्राणोकी रक्षाके लिए काफी है। उन प्राणोकी रक्षाके लिए अन्नपान था, लेकिन अब उच्च अवस्थामे और सिद्धका यहाँ प्रकरण चल रहा है, अतएव सिद्ध के सम्बन्धमे कहा जा रहा है कि अब सिद्ध भगवानको अन्नपान से कुछ भी प्रयोजन नही रहा, जरा भी विकल्प अवस्था नही है। प्रयोजनकी बात दूर रही, क्षुधा, तृषा आदिक समस्त दोषो से दूर हो गए है, क्या स्थिति है सिद्धकी अथवा हमारा हित पूर्ण रूपसे होगा तो क्या स्थिति बनेगी ? अपने आपके बारेमें आखिरी उन्नतिकी स्थिति की जाने वालेकी उत्सुकता होती ही

है तो क्या स्थिति होगी ? उस ही स्थितिका वर्णनहै सिद्ध-भक्तिके रूपसे । अब सिद्ध भगवान समस्त अन्य द्रव्योकी अपेक्षा से रहित है ।

प्रभुके गन्धमाल्यादिका प्रयोजन न रहनेका कारण—जो अष्टकर्मोको नष्ट करके सिद्ध हुये है ,उन सिद्ध भगवानको अब किसी भी परवस्तुकी आवश्यकता नही रही, न किसी परका प्रयोजन रहा । वे कभी भी अपवित्र नही होते । केवल ज्ञानस्वरूप है ना सिद्ध, शरीर भी नही है, तो अब ज्ञानस्वरूपमात्र वे सिद्ध अपवित्र कैसे हो ? औपचारिक अपवित्र भी नही हो सकते और आध्यात्मिक अपवित्रता भी नही हो सकती । विभाव रागद्वेष ये सब दूर हो गये और उनके आत्यन्तिकी विशुद्धि पकट हुई है । अब वह विशुद्ध ज्ञान, वह विशुद्ध उपयोग अपवित्र कैसे हो ? अपवित्रताके मायने जिस ससार अवस्थामे हम आप लोगोके ज्ञान अपवित्र है, जिस ज्ञानके साथ रागद्वेष भाव लगा हो वह ज्ञान भी अपवित्र कहा जाता है । तो आध्यात्मिक अपवित्रता भी नही है और औपचारिक अपवित्रता भी नही है । जब शरीर ही नही है, कोई सम्बध ही नही है तो अब वे अपवित्र क्या होगे ? यही कारण है कि उन्हे किसी भी पर-वस्तुसे प्रयोजन नही रहा, न उन्हे अब इतर गध आदिक चाहिये, न उन्हे स्नान करनेके लिए जल चाहिये । वे निरपेक्ष है, केवल ज्ञानज्योतिर्मय पदार्थ है । ये सब विशेषण इसलिए

बताये जा रहे है कि चूकि अनेक लोग प्रभुका स्वरूप इस तरह मानते है कि वे खूब खाते-पीते भी है, बनमे खायेगे, शहरोमें खायेगे। तो अनेक लोगोने भगवानका स्वरूप खाने-पीने वाला भी माना है और नहाने वाला इस तरहका स्वरूप माना है, इस कारण कहना पड रहा है नही तो जो भगवानके स्वरूपको जानता है उसको तो इन बातोकी शका ही नही है कि भगवान वही खाते भी है या नहाते भी है। अरे भगवान तो ज्ञानज्योतिपुञ्ज है। ज्ञानस्वरूप सत्का नाम भगवान है। वह कभी अपवित्र ही नही होता। उसे क्या प्रयोजन है स्नान करनेका या कोई लेप लगानेका। जैसे कि उनके क्षुधा तृषा ही नही है, क्या प्रयोजन है कुछ खानेका ?

प्रभुके शय्याका प्रयोजन न रहनेका कारण—प्रभु ज्ञान द्वारा सारे जगतको जानते रहते है। ज्ञान द्वारा सहज भावमें सब कुछ जाननेमे आये, इसमे कोई श्रम नही होता, कोई थकाबट नही होती, न उनके कोई निद्रा आती है। तो जब कोई थकाबट नही, निद्रा नही तो क्या जरूरत है कि कोमल सेज चाहिये, प्रभुको कोमल शय्याकी भी आवश्यकता नही है। बात सुननेमे कुछ यो लगेगा कि क्या छोटी-छोटी बातोका वर्णन किया जा रहा है ? अरे इन छोटी-छोटी बातोका वर्णन निषेधरूपमे यो करना पड रहा है कि अनेक भोले लोग ऐसा मानते है कि भगवान शय्यापर सोते है, बडी कोमल

शय्या हो है, किन्तु भगीतवानका स्वरूप तो एक ज्ञानज्योति है, वे शरीररहित है। तो केवल ज्ञानपुञ्जको कहाँ शय्या रखी जायगी ? वे कहाँ विराजेंगे ? वे तो आकाशकी तरह अमूर्त निर्लेप ज्ञानस्वरूप है, उन्हे शय्या आदिकसे कोई प्रयोजन नही है। जिसे किसी रोगकी पीडा नही है तो ऐसा पुरुप रोगके उपशम करने वाली दवाइयोका सेवन क्यो करेगा, उसका उन दवाइयोका सेवन करना अनर्थकर है। जिसके शरीरमे कोई फोड़ा-फुसी ही नही है, साफ शरीर है, कही कोई चर्म रोग नही है वह मलहम पट्टी क्यो करेगा ? ऐसा तो कोई नही करता। और यदि कोई ऐसा करे तो वह तो मूर्ख कहलायेगा। तो जिसे किसी प्रकारका रोग नही है वह क्यो औषधि उपचार करेगा ? इसी तरह प्रभु कहते है ज्ञानस्वरूपको। उस ज्ञानस्वरूपमे न थकावट है, न निद्रा है तव शय्याकी क्या जरूरत ? अथवा जैसे जिस जगहमे, जिस मैदानमे, जिस महलमे बहुत वडा उजाला दिनके सूर्यका है, जहाँ सब कुछ दिख रहा है, तेज धूप पड रही है, खूब उजाला हो रहा है, अब वहाँ दीप जलानेकी क्या जरूरत ? तो जैसे उजेले वाली जगहमे दीप जलाना अनर्थ है इसी तरह जो अनन्त सुखमे लीन है, जिनके विशुद्ध ज्ञान है और ज्ञान आनन्द ही जिनका स्वरूप है उनको इन शय्या आदिक व्यवहारोकी क्या जरूरत है ? इन अन्य द्रव्योकी अपेक्षासे रहित प्रभुका स्वरूप है।

तादृक्सपत्समेता विविधनयतपःसंयमज्ञानदृष्टि—चर्यासिद्धाः समन्तात्प्रविततपशसो विश्वदेवाधिदेवाः । भूता भव्या भवन्तः सकलजगति ये स्तूयमाना विशिष्टैस्तान्सर्वान्नौम्यनन्तान्निजगमिश्वुरर तत्स्वरूप त्रिसन्ध्यम् ॥६॥

सिद्ध प्रभुकी अलौकिक सम्पन्नता—सिद्ध भगवान अपने आत्माको बहुत बडी सपत्तिसे सहित है, उनके कोई आकुलता ही नही है, किसी प्रकारका कोई क्षोभ ही नही, सकल्प-विकल्प ही नही, विशुद्ध ज्ञानस्वरूप है । दुःख तो उनको है जो परकी अपेक्षा रखते है, परमे मोह लगाते फिरते है । मोह करना एक बहुत बडा भारी अपराध है, क्यों अपराध है कि वहाँ सरासर मूढता है कि है तो अपना कुछ नही, अपना तो केवल आत्मा है, स्वय है, स्वयसे बाहर सब पर ही चीजे है, अत्यत निराली है, रंचमात्र सम्बन्ध नही है, और चित्तमे बसाये है, मेरा है, मेरा है, यह तो बहुत बडा अपराध है । तो मोह जहाँ है वहाँ क्लेश है । जहाँ मोह नही, अज्ञान नही, रागद्वेषकी कणिका भी नही वहाँ काहेकी आकुलता ? बहुत बडी सम्पत्ति है उन सिद्धप्रभुकी । वे कर्ममुक्त आत्मा होकर अब सिद्ध हुये, चारित्रसे सिद्ध हुये, दर्शनसे सिद्ध हुए, ज्ञानसे सिद्ध हुए, संयमसे सिद्ध हुए, तपसे सिद्ध हुए । उन अनेक उपायोको करके सिद्ध परमेष्ठीकी अवस्थामे जो उन्होने निर्विकल्प समाधि का यत्न किया था उसके प्रतापसे अब वे पूर्ण सिद्ध हो गए

हैं। अब सिद्धसे आगे कुछ करनेको जरूरत नही रही। जैसे चावल पक गये, सिद्ध हो गए तो उसमे कोई जरूरत तो नही है।

सिद्ध प्रभुकी अलौकिक यशस्विता—कैसे है सिद्ध भगवान? चारो ओरमे जिनका यश विस्तृत हो रहा है। देखो ज्ञानी पुरुष जिसकी तारीफ कर सकें, तारीफके लायक तो वही है और अज्ञानी लोग चाहे करोडो ही किसीकी तारीफ करे तो वह तारीफके लायक नही है। मोही लोग मान लो किसी एक नेताकी तारीफ कर रहे हैं तो क्या वे मोक्षमार्गके गुणोसे युक्त हो गये? जिसकी तत्वके रुचिया परखने वाले तत्त्वज्ञानी पुरुष तारीफ कर सकें तारीफके लायक तो वह है। तो कहते है कि भगवानका यश बडा विस्तृत है। जो बड़े-बडे राजा महाराजा थे, उन्होने भी यह अनुभव किया था कि गृहस्थीमे, मोहमे, रागद्वेषमे आत्माका कल्याण नही है, किन्तु आत्मा इतना ही नही है जितना कि इस शरीरमे आया है, अब रह रहा है। अरे आत्मा तो पहिले भी था, आगे भी रहेगा। कहाँ रहेगा? वर्तमानमे जो समागम मिले है वे तो सब छोडने ही पडेंगे, छूटेंगे ही। तो जो चीज छूटनेकी है उसमे मोह बनाना, उसका ऐसा ध्यान बनाना, उसके बिना मै कुछ भी नही, मेरा कोई बडप्पन ही न रहेगा, मेरा गुजारा ही न होगा—यो मोह करना अयोग्य है। अरे आत्मापर दृष्टि रखो, उत्साह जगावो तो मेरे

को गुजारा है। मेरा गुजारा किसी दूसरेके कारण नही है। अपने ज्ञानको सम्हाल लेगे तो गुजारा बनेगा और यदि अपने ज्ञानको बिगाड लेंगे तो चाहे कैसा ही वैभवसम्पन्न घर हो, वह आत्मा तो गया-बीता हो गया। जिसका ज्ञान बिगड गया उसका तो सब विगड गया, और जिसका ज्ञान सावधान है, नही है धन, साधारण स्थितिका है, लेकिन वह तो अमीर है। उसकी सम्हाल तो बराबर बन रही है। तो ऐसे राजा, महाराजा जिनके पास बडा वैभव था, जब उन्होने अनुभव कर लिया गृहस्थीमे रहकर कि ये सब जगजाल है, यहाँ सारका नाम नही है, रचमात्र सार नही है किसी परवस्तुकी ओर दृष्टि रखनेसे, तब उन्होने सर्व परिग्रह छोड़ा और केवल एक आत्माके ध्यानमे ही रत रहने लगे।

मुनीन्द्रों और देवेन्द्रो द्वारा प्रभुकी महनीयता—अब भी ज्ञानी विरक्त अनेक मुनीश्वर होगे, वे अब किसका ध्यान कर रहे है ? इसी सिद्धस्वरूपका। तो जिसकी बडे-बडे ज्ञानी ऋषि उपासना करें उनका है यश असली। और यहाँके किसी नेता का हजारो लाखो मोही अज्ञानी पुरुषोने यश गाया तो वह गुणी नही कहला सकता। मोही लोगोकी दृष्टिमे गुणी है, पर आत्माके जो श्रद्धान, ज्ञान, चारित्र गुण है उनका तो उसमे विकास नही है, रत्नत्रयकी बात उसमे नही है। ये सिद्ध प्रभु बड़े-बड़े महर्पियोके द्वारा भी उपासनीय है, अतएव इनका यश

सर्व ओर फैला हुआ है । अभी नेता तो जिस देशमे है उसी देशमे माना जाता है, पर सिद्ध भगवान उनका स्वरूप भरत-क्षेत्रके ज्ञानी पुरुष मान रहे है । ऐरावत क्षेत्रके भी मान रहे है और विदेह क्षेत्रमे जितने ज्ञानी ऋषि है वे भी उन्हे मान रहे है, ढाई द्वीपके सब ऋषि संत मान रहे हैं और स्वर्ग लोकमे जो कि पूरे राजूभरमे फैला हुआ है, ढाई द्वीपसे कितनी ही दूर स्वयंभूरमण समुद्र तक फैला हुआ है, कितना विशाल देवोका समूह है वे सब उन्हे मान रहे हैं । पुरुषोसे ये देव असख्यात-गुणे है । चारो गतियोमे सबसे कम सख्या है मनुष्योकी । मनुष्योसे असख्यातगुणे तो नारकी जीव है, और नारकियोसे भी असख्यातगुणे देव है । तो देवोकी सख्या बहुत अधिक है, वे सब देव भी सिद्ध प्रभुका, अरहत प्रभुका ध्यान करते हैं । तो यश तो परमात्माका है असली । तो जिनका यश चारो ओर खूब फैला हुआ है ऐसे है वे सिद्ध भगवान ।

सिद्ध प्रभुकी विश्वदेवाधिदेवता—विश्वके जितने भी देव है सबके अधिदेव सिद्धप्रभु है । जितने बडे माने जाने वाले पुरुष है या जिनको लोगोने देव माना है उन सबसे भी ऊपर ये अधिदेव है । अरहत भगवान परमात्मा हुए है, उनके कल्प-नायें नही है, इसलिए वे अब सिद्ध भगवानकी उपासनामे नही है, किन्तु ज्ञान तो उनके भी है—अरहंत अवस्थासे ऊँची अवस्था सिद्ध अवस्था है और उनको सिद्ध अवस्था होगी तब

वे उत्कृष्ट सिद्ध कहलायेंगे अर्थात् वे विश्वके जितने देव है सबके अधिदेव है। तो ऐसे सिद्ध भगवान जो अनन्त हो चुके है, जो अनन्त होगे, जो इस समय हो रहे है समस्त जगतमे, उन सब सिद्धोको, जिनका कि बडे-बडे विशिष्ट योगिराज भी स्तवन करते है उन सर्व सिद्धोको उस पदकी प्राप्तिके लिए अथवा उस सिद्धस्वरूपकी प्रसिद्धिके लिये मै नमस्कार करता हू।

सिद्धभक्तिसे सिद्धक्षेत्रयात्राकी सफलता—यह सिद्धभक्ति का पाठ चल रहा है। इसमे सिद्ध भगवन्तोकी भक्ति की है। अनेक भव्य लोग भक्तजन क्षेत्रपर वन्दनाके लिए आते है, सिद्ध क्षेत्रकी वदना करते है। इस भरत क्षेत्रमे, इस आर्यखण्डमे एक तीर्थराज माना जाता है सम्मेदशिखर। यहाँसे करोडो मुनीश्वर सिद्ध हुये है। सिद्ध क्षेत्रकी वन्दना करते हुये यह भाव रखना चाहिये कि सर्वोत्कृष्ट अवस्था है तो सिद्ध भगवानकी अवस्था है और मेरेको भी कोई उत्कृष्ट प्राप्तव्य अवस्था है तो वह सिद्ध अवस्था है। सिद्ध दशाके सिवाय मुझे अन्य कुछ न चाहिये, ऐसा अपना निर्विकल्प चित्त बने तब तो समझो कि सिद्ध क्षेत्रकी वन्दना हमारी पूर्ण सफल हुई। मुझे सिद्धदशासे नीचेकी छोटी बाते यहाँकी सिद्धि प्रसिद्धियाँ, सम्मान, लोगोकी उपासना—ये सब मुझे कुछ न चाहिये। मुझे तो वह एक कैवल्यदशा चाहिये। केवल मै आत्मा ही आत्मा रहूं। शरीर भी

न हो, कर्म भी न हो, किसी प्रकारके रागद्वेषकी तरग भी न हो, केवल ज्ञानमय ज्ञानमे बर्तता होऊँ, केवल यह ही मात्र चाहता हू, ऐसी धारणा बन जाय, ऐसा निश्चय बना लेवे अपने चित्तमें तो सिद्ध क्षेत्रकी वन्दना सफल है। नही तो एक दिल बहलावा है। आये, मनको सन्तुष्ट कर लिया, अब वदना कर ले, अब घर चले, वन्दना करते जाते, परिवारका मोह और भी अधिक बढाते जाते। अरे वन्दना करते हुये यह भाव रखो कि हमारी जो वर्तमान दशा है वह तुच्छ दशा है, अहितरूप दशा है। उससे मेरी सिद्धि नही है। मुझे सिद्ध अवस्थासे नीचेकी कुछ बात न चाहिये, और अपने आपके स्वरूपमे उसे निहारने लग जाये, मेरा तो यह स्वरूप मौजूद है।

अपनी शक्यसिद्धता—हे प्रभो! जो आपका स्वरूप है वही मेरा स्वरूप है। हाँ अपने-अपने उस स्वरूपको व्यक्त कर लिया, प्रकट कर लिया, मेरा स्वरूप अभी ढका हुआ है, लेकिन है तो स्वरूप मुझमे, कला तो है मुझमे। जैसे कोई घोडा दुष्ट हो, कुपथ चलता हो, रास्ता छोडकर यहाँ-वहाँ भागता हो तो भले ही दुष्ट है वह घोडा, यहाँ-वहाँके खोटे मार्गोमे भागता है वह घोडा, लेकिन उसमे चाल तो है, उसे वशमे कर लिया जाय तो खोटे रास्तेसे हटाकर अच्छे रास्तेपर लगाया जा सकता है, मगर जो काठके घोडे है, बच्चोके खेलनेके घोडे है उन घोड़ोसे क्या काम चलेगा? तो इसी तरह मेरा स्वरूप

यद्यपि बडा विरुद्ध विचित्र बन रहा है, नाना इच्छावोसे मलीमस बन रहा है, परवस्तुवोके मोहसे आकर्षणसे मलिन हो रहा है तो मै दुष्ट हो रहा हूं, पापी हो रहा हू, जड बुद्धि वाला बन गया हू, लेकिन स्वरूप तो मुझमे वह है जो भगवानका है। तो मै कभी अपनी मलिनताको त्यागकर, उस खोटे मार्गको छोडकर सन्मार्गमे लगूं तो लग सकता हू। मै मिट्टीका पुतला नही हू, मै यह हड्डी चामका पुतला नही हू, मै तो एक चैतन्यस्वरूप हू।

चित्स्वरूपमें आत्मप्रतीतिकी हितरूपता—हे प्रभो! जो आपका स्वरूप है वही मेरा स्वरूप है। जैसे आप बने वैसा मै भी हो सकता हू। अब सिद्ध भगवानके स्वरूपसे अपने स्वरूप की तुलना करने लगो। कर लीजिये तुलना, स्वरूप एक मिलेगा। भले ही पर्यायमे अन्तर है, पर पर्याय स्थायी चीज नही, पर्याय जो हो रही है आजकल, वह मेरी गाँठकी सत्त्व की चीज नही। वह तो एक औपाधिक है। जैसे दर्पणमे बाहरी पदार्थोके प्रतिबिम्ब पड रहे है, पर वे प्रतिबिम्ब दर्पणकी निजी चीज नही है। दर्पण तो निजमे केवल स्वच्छताको लिए हुए है, वे औपाधिक चीजें है। वे निमित्त हटे कि दर्पण ज्योका त्यो स्वच्छ है। तो मुझमे जो रागादिक भाव उत्पन्न हो रहे है वे मेरी गाँठकी चीज नही है, वे औपाधिक चीजे है, कर्मोके उदयसे हुई है। वे प्रकृतिके कारण होती है, वे मेरी नही है,

ऐसे अपने स्वरूपको दृष्टिमे तो लेवे। कोई आदमी अपनेको यह मानना है कि मैं पुरुप हू, मर्द हू तो उसका भी यह अज्ञान है, और कोई ऐसा विश्वास रखे कि मै स्त्री हू, औरत हू, महिला हू तो यह उसका भी अज्ञान है। जो अपनेको मानता है कि मै पुरुप हू उसने भी शरीरमे दृष्टि रखी और शरीरके नातेसे शरीरको अपना मानकर, शरीर चूकि मर्द है तो अपने आत्माको ही कहा कि मै मर्द हू और स्त्री पर्यायमे रहने वाले जीवने जो ऐसा माना कि मैं स्त्री हू तो उसने भी शरीरपर दृष्टि रखी और शरीरके नातेसे अपनेको स्त्री समझा। तो अब समझो कि जब अपनेको यह भी प्रतीतिमे रखनेका उपदेश है तो मै मर्द हू, पुरुष हू, स्त्री हू तब फिर और बातें तो दूर की है। मेरा कुटुम्ब है, परिवार है, घर है, पोजीशन है, ये सारी बाते कहाँ टिकेगी ? जब शरीरको भी अपना न मानो तो और बातोकी कथा क्या ?

धर्मविकासके निरोधपर अन्य पुरुषका अनधिकार— भैया ! अपना हित अपने हाथ है, किसीने हमारे हितको रोक नही रखा। कोई रोक ही नही सकता। किसीसे पाला पड जाय ऐसा ही और वह हाथ-पैर पकडकर किसी कामको रोक दे—तुम नही कर सकते हो यह बात, तुम नही जा सकते हो और जगह, मुह भी बद कर दे, तुम कोई शब्द बोल नही सकते, इस बातपर कोई जबरदस्ती करे तो करे, मगर आत्मा

के भीतर जो ज्ञानप्रकाश जगा है उसपर कोई जबरदस्ती नही कर सकता कि तुम आत्माका ध्यान मत करो। अरे हो गया ध्यान, आ गया आत्मा अपने ज्ञानमे, इसे कौन रोक सकता है ? तो ऐसा भीतरमे एक दृढ़ श्रद्धान रखना चाहिये कि मैं मेरा पुरुषार्थ करता हू और उस धर्मको रोकने वाला कोई नही है। जो लोग ऐसा समझते है कि मेरी स्त्री मुझे धर्म करनेसे रोकती है अथवा मेरा पति मुझे धर्म करनेसे रोकता है, मुझे धर्म करनेकी फुरसत ही नही मिल पाती। इन लोगोने ऐसा फसा रखा है कि ये लोग हमे धर्म ही नही करने देते। अरे धर्मका स्वरूप जानें, फिर चाहे कितने ही लोगोमे फसे हो, चाहे कोई हाथ-पैर पकडकर भी रोकता हो, लेकिन धर्म रोकने से नही रुकता। धर्म नाम है श्रद्धान ज्ञान और अपने आत्मामे आचरण करनेका। धर्म रोकनेकी किसमे सामर्थ्य है ? मै भीतरमे अपने आत्माकी श्रद्धा करू, तो इसे कोई रोक सकता है क्या ? एक छोटी जातिका भी पुरुष हो, जिसे हम आप सभामे न आने दें, मन्दिरमे न आने दे, कई बातोसे उसे रोक दें, लेकिन वह आत्माकी दृष्टि बनाये, आत्माका ज्ञान बनाये तो उसे कोई रोक सकता है क्या ? और जो लोग ठाठसे सभामे बैठते, आगे रहते, उनके कहो धर्म न जगे और जो दूर-दूर रहते है, छोटे मनुष्योकी तो बात क्या, वे पशु-पक्षी तिर्यञ्च भी अगर अपने आत्माके स्वरूपका बोध कर रहे है तो उनको

रोक सकने वाला कौन होगा ? कोई किसीके धर्मको नही रोक सकता। वह तो भीतरका भाव है। अन्तस्तत्त्वके पुरुषार्थको रोक सकनेमे किसी वस्तुकी ताकत नही है।

सिद्धस्वरूपकी सिद्धिमे सिद्धभक्तिका उपयोग—बड़े-बड़े राजा महाराजा लोग वैराग्य पाकर, ज्ञान पाकर जब सबसे निवृत्त होकर आत्माके ज्ञानकी धुनिमे ही लग गए तो उनको यह समझिये कि आत्मीय आनन्द अब प्राप्त हुआ। जब तक किसी परके मोहमे थे तब तक क्षोभ ही था, अब आनद मिला सिद्ध अवस्थामे, और उस आनन्दका खूब अनुभव कर करके जब कर्मकलक सब दूर हो गए तब हुये वे सिद्ध भगवान। अब सिद्धसे और ऊँचा दर्जा कुछ नही है। आत्माका आखिरी चरम विकास जो हो सकता है और हो क्या सकता है, वह तो अनन्त विकास है, वह अनन्तविकास इस सिद्ध भगवानके हुआ है, सो सिद्ध भगवान ही एक उत्कृष्ट फल है और यह अवस्था हम आप सबकी हो सकती है, इसलिये कायरपनको छोडकर विषयकषायोके आधीन न रहकर अपने आपमे अपने इस कारण परमात्मतत्त्वकी उपासना करके अपने आपके इस पाये हुए अवसरको सफल बनाना चाहिये। एक ही मात्र सारभूत बात इतनी ही है कि मोह रागद्वेष छोडें और अपने आपके सहज ज्ञानानन्दस्वरूपकी ओर दृष्टि करें। बस इतना ही मात्र सारभूत पुरुषार्थ है। इसके अतिरिक्त जो कुछ भी किया जा रहा

है वह सब व्यर्थ है । ऐसी अपने आपमे बुद्धि जगायें और सिद्ध भगवन्तोकी भक्ति कर-करके अपने आपमे शुद्ध आत्मस्वरूपका जागरण करे, यही सिद्ध भक्तिका प्रयोजन है ।

— :※: —

प्राकृत सिद्धभक्तिः

अट्ठविहकम्ममुक्के अट्ठगुणड्ढे अणोवमे सिद्धे ।
अट्ठमपुढविणिविट्ठे णिट्ठियकज्जे यवदियो णिच्च ॥१॥

सिद्ध प्रभुकी अष्टविधकर्ममुक्तता व अष्टगुणाढ्यता—यह प्राकृत सिद्धभक्ति है । सिद्धभक्ति संस्कृतमे भी है, प्राकृतमें भी है । इसमे कहते है--हम सिद्ध भगवानको नमस्कार करते है । जो आठ प्रकारके कर्मोंसे रहित है—ज्ञानावरण, दर्शनावरण, वेदनीय, मोहनीय, आयु, नाम, गोत्र और अन्तराय, ससारी जीव इन आठ प्रकारके कर्मोंसे बंधा है । जब स्वरूपका भान होता है और उसमें उपयोग लगाया जाता है, उसमे स्थिरता जगती है तो इस रत्नत्रयके प्रसादसे प्रथम तो चार घातिया कर्म नष्ट होते है जिससे सकलपरमात्माकी अवस्था होती है । इसके बाद शेष चार अघातिया कर्म भी नष्ट हो जाते है तब निकलपरमात्मा होता है, सिद्ध भगवान बनता है । तो वे ८ प्रकारके कर्मोंसे रहित है और ८ गुणोसे युक्त है । सम्यक्त्व, दर्शन, ज्ञान, अगुरुलघु, अवगाहन, सूक्ष्मत्व, वीर्यत्व, अव्याबाधत्व—ये ८ गुण सिद्धप्रभुमे प्रकट है । मोहनीयकर्मके अभाव

होनेसे सम्यक्त्वगुण प्रकट हुआ है। दर्शनावरणके अभावसे दर्शनगुण प्रकट हुआ है, ज्ञानावरणके अभावसे ज्ञान प्रकट हुआ है और अन्तरायके अभावसे अनन्त वीर्यगुण प्रकट हुआ। यो चार घातिया कर्मोंके नाशसे ये अनन्त चतुष्टय प्रकट होते है। उसके पश्चात् चार अघातिया कर्मोंके विनाशसे, जैसे नामकर्मका अभाव होनेसे सूक्ष्मत्व गुण प्रकट हुआ, और नामकर्मके होनेसे उनमे स्थूलता थी, कर्मबन्धनसे युक्त था, इससे देहमे रहनेके कारण यह आत्मा भी एक मूर्तवानसा बन गया था। अब नामकर्मके अभाव होनेसे जैसा कि सूक्ष्म था वैसा ही सूक्ष्म प्रकट हुआ। गोत्रकर्मके उदयसे यह आत्मा कभी नीच कुलमे, कभी ऊँच कुलमे कहलाता था। अब गोत्रकर्मके दूर होनेसे छोटे बड़ेका वहाँ भेद नही रहा। सिद्धमे वेदनीयकर्मका अभाव होनेसे उनमे अव्याबाध गुण प्रकट हुआ। अब किसी तरहकी बाधा नही रही। पहिले वेदनीयके उदयसे सुख और दुखकी बाधायें थी। अब वे सब बाधायें दूर हो गयी, क्योकि वहाँ उत्कृष्ट सहज आनन्द प्रकट हुआ है। बाधा मे न रहनेको अव्याबाध कहते है और आयुके अभावमे अवगाहन गुण प्रकट हुआ। यो ८ प्रकारके गुणोसे युक्त है वे सिद्ध भगवान। ये सब गुण हम आप सबमे है शक्तिरूपसे, ऐसा स्वभाव है, पर कर्मोदयके निमित्तसे यह स्वभाव ढक गया है और इसमे विभाव उखड पडा है, तो उन कर्मोंके दूर होनेसे ये ही सब गुण प्रकट हो जाते है। सिद्ध भगवानके स्वरूपको

विचारकर हमें अपने आपमे यह उत्साह रखना चाहिये कि ऐसा मै भी हो सकता हू । मेरा ही तो स्वरूप है, जाति तो एक है, सो चिन्मात्र मैं हू, सो चिन्मात्र सिद्ध भगवान है ।

सिद्ध प्रभुकी अनुपमता व अष्टमपृथ्वीनिविष्टता—सिद्धप्रभु अनुपम गुणो करिके युक्त है । उनके गुणोको उपमा किसीसे नही हो सकती है । न गुणमे उपमा है, न अनुभवमे उपमा है । जब तक यह सिद्ध अवस्था नही होती तब तक आत्माके वे ससारके सकट लगे हुए है आत्माका पूर्ण हित आत्यतिक हित एक मोक्ष अवस्था ही है । तो ससारी जीवोसे विलक्षण अवस्था है उन प्रभुकी । वे ८ वी पृथ्वीपर अवस्थित है । ७ पृथ्वी तो नरको की कहलाती है । ७ नरक, ७ पृथ्वियों मे है और उन पृथ्वियोके भीतर बडे लम्बे-चौड़े अरबो योजनोके पोल है । उन पोलोमे नारकी जीव रहते है । उन ७ पृथ्वियोमे ७ नरक है और ८वी पृथ्वी है सिद्धशिला । उस सिद्धशिलापर सिद्ध तो नही बैठे है, उससे बहुत ऊँचे अन्तमें लोकके शिखरपर वे विराजमान है, लेकिन जितनी लम्बी-चौडी सिद्धशिला है उतने ही ऊपर वे सिद्ध भगवान विराजे है । तो उन सिद्धोके नीचे सिद्धशिला है, उसके बीचमे और कोई रचना नही है । सर्वार्थसिद्धिका विमान सिद्धशिलाके नीचे है । सिद्धशिला और सिद्धक्षेत्र—इन दोनोके बीच अन्य कोई रचना नही, इसलिए उसे सिद्धशिला बोलते है । यह ८ पृथ्वी है उससे ऊपर वे अवस्थित है ।

सिद्ध प्रभुकी निष्ठितकार्यता—सिद्ध प्रभु निष्ठितकार्य है, उन्हे अब कुछ करनेको नही रहा, कृतकृत्य हो गये, ऐसे कृतार्थ सिद्ध भगवान है। अब उन्हे लोकमे किसी भी प्रकारका कार्य करनेको नही रहा या उन्होने सब कुछ कर लिया। जब यह ज्ञानमे आ गया कि प्रत्येक पदार्थ जुदे-जुदे है, किसी पदार्थका किसी पदार्थमे कोई सम्बन्ध नही, न कोई करने वाला, न हरने वाला, न स्वामी, प्रत्येक पदार्थ स्वतंत्र है, ऐसा जिसे ज्ञात है, जिसके ज्ञानमे ऐसा आया है उनको अब किसी पदार्थमे कुछ करनेका विकल्प ही नही हो सकता। करना करना सबको लगा है, पर यह करना कब पूरा होगा, यह कब खतम होगा ? जब कुछ करनेका विकल्प न रहेगा। जगतमे अनन्त पदार्थ है। कर करके काम कौन पूरा कर सकता है ? इस कार्यको किया, इसको किया, कर-करके सारे कार्य कर डाले, ऐसा कोई नही हो सकता। मेरे करनेको अब कुछ नही रहा, ऐसा मनमे सतोष आये तो उसे कहा जायगा कि हमने सब कुछ कर लिया। कर-करके नही सब कुछ किया जाता, किन्तु छोड करके ही सब कुछ किया जाना कहलाता है। तो आत्मा तो यहाँ भी किसी भी पदार्थमे कुछ कर न रहा था, केवल विकल्प करता था, अब विकल्प भी जहां नही उठता है वह पूर्ण कृतकृत्यता कहलाता है। सिद्ध भगवान कृतकृत्य है, उनको अब लोकमे कही कुछ करनेको नही रहा, ऐसे जो प्रभु

है उनको हम वदना करते है।

तित्थयरेदरसिद्धे जलथलआयासरिणव्बुदे सिद्धे।

अन्तयडेदरसिद्धे उक्कस्सजहण्णमज्झिमोगाहे ॥२॥

तीर्थंकरसिद्ध एवं इतरसिद्ध—अब उस सिद्धलोकमे सिद्ध भगवान किस-किस प्रकारसे है ? इसका इस गाथामे वर्णन है। सिद्ध प्रभु कोई तो तीर्थंकर हुये, कोई बिना तीर्थंकर हुए हुए। तो सिद्धोमे ये दो प्रकार पाये जाते है—एक तो है तीर्थङ्कर सिद्ध और एक है सामान्यसिद्ध। यद्यपि सिद्ध होनेपर अब उनमे परस्परमे कोई अन्तर नही है। उनके सभी गुण अनुजीवी गुण प्रतिजीवी गुण सबके एक समान है, आनन्द सबका एक समान है, ज्ञान सबका एक समान है, सब कुछ अनुभव उनका एकसा है। उन सिद्धोमे कुछ फर्क नही है, लेकिन पहली बहुतसी बातें सोचकर यह भेद डाला जा रहा है कि कोई तो सिद्ध भगवान तीर्थंकरसिद्ध है और कोई इतरसिद्ध है। तीर्थंकर कहते है उसे जो तीर्थकी प्रवृत्ति करे। जब जब कुछ धर्मका ह्रास होता है, जब-जब लोगोमे ज्ञानप्रकाश कम होता जाता है ऐसे-ऐसे समयोमे तीर्थंकरका अवतार होता है। तो वे तीर्थंकर उस समय कुछ ही गृहनिवासके बाद विरक्त होते है और जबसे वे साधु होते है तबसे उनके मौन हो जाता है। केवलज्ञान होनेपर स्वय सहज दिव्यध्वनि खिरती है। जब तक रागादिक शेष हैं तब तक वे बोलते नही है। वीतराग व

पूर्ण ज्ञानी होनेपर दिव्यध्वनि सहज खिरती है। तो जिन्होने तीर्थ चलाया उन्हे कहते है तीर्थङ्कर, जिनका पचकल्याणक होता है। जब वे गर्भमे आये तो गर्भमे आनेसे ६ महीना पहिले उनके आँगनमे रत्नोकी वर्षा होने लगती है। जन्म-कल्याणकके समय प्रभुका जन्म मेरू पर्वतपर होता है, तप-कल्याणकमे जब किसी कारणको पाकर ये तीर्थङ्कर विरक्त होते है तो बहुत बडा उत्सव मनाया जाता है। बनमे पालकी पर इन्द्र विद्याधर मनुष्य आदि उन्हे ले जाते है। पहिले तो मनुष्य उस पालकीको उठाते है और उन मनुष्योमे भी कर्म-भूमियाँ मनुष्य, बादमे विद्याधर उस पालकीको ले जाते है और उसके बाद फिर इन्द्र उन्हे पालकीमे ले जाते है। दीक्षा-विधि होती है, मौन हो जाता है। पश्चात् जब केवल ज्ञान होता है तब फिर इन्द्र ज्ञान-कल्याणक मनाता है, समवशरण की रचना होती है, बडी सभा होती है। देव तिर्यञ्च व्यन्तर मनुष्य आदि सभी वहाँ पहुचते है और फिर मोक्ष-कल्याणक होता है। जिनके ये ५ कल्याणक होते है वे तीर्थंकर कहलाते है। विदेह क्षेत्रमे किसी तीर्थङ्करके कम कल्याणक भी होते हैं। किसी गृहस्थको तीर्थङ्कर प्रकृतिका बध हो और वैराग्य-भाव हो तो उसके ३ कल्याणक होते है—तप-कल्याणक, ज्ञान-कल्याणक और निर्वाण-कल्याणक। कोई मुनि हो और उस मुनि अवस्थामे उसके तद्योग्य भाव हो जाये तो उसके

तीर्थङ्कर प्रकृतिका बन्ध होता है, तब उसके २ कल्याणक मनाये जाते है—गर्भ-कल्याणक और मोक्ष-कल्याणक। यो किसीके दो कल्याणक मनाये जाते है, किसीके तीन। भरत ऐरावत क्षेत्रमे जो तीर्थंकर होते है उनके ५ कल्याणक होते है। विदेह क्षेत्रमे ऐसी बात हो सकती है कि जहा ३ या २ कल्याणक हो वे सब तीर्थंकर हैं और सिद्ध होनेपर उन्हे तीर्थंकर सिद्ध कहते है। और जो तीर्थंकर न थे, उन्होने भी ज्ञानभावना की, अभेद भावना की, जिसके प्रसादसे वे भी सिद्ध हुए सो वे इतरसिद्ध कहलाते है।

जलसिद्ध—कितने ही सिद्ध ऐसे है जो जलकी जगहसे (समुद्रसे) सिद्ध हुए है। किसी शत्रुदेवने किसी साधुको उठाया और शत्रुता निभानेके लिए आकाशमे ले जाकर समुद्रमे पटक दिया। अब वह मुनि यदि अपने अभेद ज्ञानस्वभावकी उपासनामे लगे तो आकाशसे गिरते हुये मे भी वहाँ ध्यान बनता है, क्षपक श्रेणीमे चढता है और क्षणमात्रमे केवलज्ञान हो जाता है, अरहत अवस्था प्राप्त हो जाती है, और सम्पूर्ण आयु समाप्त हुई कि सिद्ध भगवान हो गया। तो जलका कितना स्थान है इस ढाई द्वीपमे तृतीय आधा द्वीप। धातकी द्वीप और जम्बूद्वीप छोडकर सब जल जलका स्थान है। लवण समुद्र और कालोदसमुद्र। लवण समुद्र की चौडाई प्रत्येक दिशामें दो-दो लाख योजन है, और उसकी सारी परिक्रमा १५ लाख

योजनकी है और उससे चौगुना कालोदसमुद्र है। उस समुद्र के जलप्रदेशमे से कोई प्रदेश ऐसा नही बचा जहांसे अनन्त सिद्ध न हुए हो। तो अब ध्यानमे लायें कि इस तरहसे कितने मुनि शत्रुवो द्वारा समुद्रमे पटके गए और उस गिरती हुई हालतमे उनका ध्यान उत्कृष्ट बना, क्षपक श्रेणीमे आये और सिद्ध हुए। ऐसे जो जलसिद्ध है उनको मै वन्दना करता हूं।

स्थलसिद्ध एव आकाशसिद्ध—स्थलसिद्ध मुनि उनसे भी अनन्तगुणे होते है अर्थात् पृथ्वी परसे, जमीनपरसे तप कर-करके सिद्ध हो गये। अनेक आकाशसिद्ध है। आकाशमे गेरे गये या आकाशचारणऋद्धि वाले आकाशमे जा रहे, आकाशमे अवस्थित है, उनका ध्यान बना, वही क्षपकश्रेणीमे चढकर सिद्ध हुये। ऐसे आकाशसिद्ध भी अनन्त है, ऐसे इन सिद्धोको हम वन्दना करते हैं। कितने ही सिद्ध अतःकृत सिद्ध है, कितने ही इतरसिद्ध है, जिनपर किसीने उपसर्ग किया, सिंह आदिक किसी जानवरने या किसी शत्रुने उपसर्ग किया तो ऐसी अवस्था मे भी अच्छा ध्यान बन जाय तो क्षपकश्रेणीमे चढकर सिद्ध हो जाते है, तो ऐसे सिद्ध भी अनन्त है।

उत्कृष्टमध्यमजघन्यावगाहनायुक्त सिद्ध— सिद्धभूमि मे ऊपर लोकके शिखरमे ४५ लाख योजन प्रमाण क्षेत्रमे प्रत्येक जगह अनन्त सिद्ध है। ये सिद्ध ऊर्ध्वगमन स्वभावके कारण ऊपर ही जाते है और उनके आत्मप्रदेशोका ऊपरी हिस्सा बस

लोकके आखिरी प्रदेशपर रहता है और बाकी अवगाहना नीचे रहती है। ऐसे वहाँ सिद्ध कितनी ही अवगाहना वाले है। कितने ही उत्कृष्ट अवगाहना वाले है, कितने ही मध्यम अवगाहना वाले है और कितने ही जघन्य अवगाहना वाले है। जिन साधुवोके उत्कृष्ट अवगाहना थी ५२५ धनुष, ऐसी अवगाहना वाले सिद्ध हुए है, उनकी अवगाहना उस सिद्धक्षेत्रमे भी ५२५ धनुष है। यद्यपि शरीर नही रहा, शरीररहित केवल ज्ञानपुञ्ज है वे, लेकिन जिस शरीरसे मोक्ष गये, जितनी अवगाहनामे आत्मा फैला हुआ था उस आकार प्रमाण अब सिद्ध लोकमे भी है। जघन्य अवगाहना होती है ३॥ हाथकी। तो उतनी ही अवगाहना सिद्धक्षेत्रमे भी है, और ३॥ हाथके ऊपर ५२५ धनुषसे नीचे कितनी तरहकी अवगाहना हो सकती है? ऐसी मध्यम अनेक अवगाहना वाले सिद्ध भगवान है। इस तरह मध्यम, उत्कृष्ट, जघन्य अवगाहना वाले सिद्ध भगवान है उनको हम बदन करते है।

> उड्ढमहतिरियलोए छव्विहकाले य णिव्बुदे सिद्धे।
> उवसग्गणिरुवसग्गे दीवोदहिणिव्बुदे य वदामि ॥३॥

लोकसिद्ध एवं कालसिद्ध—कितने ही ऊर्द्धलोकसे सिद्ध हुए, कितने ही मध्यलोकसे सिद्ध हुये, कितने ही नीचे क्षेत्रोसे सिद्ध हुये है, और बिदेह क्षेत्रमे तो सदा ही सिद्ध होते रहते है। भरत ऐरावत क्षेत्रमे तो जब उत्सर्पिणीका चतुर्थ काल,

पडेगा। यह भी सोचना व्यर्थ है कि सम्पदाका वियोग होगा तो होने दो, अगर सम्पदा जोडकर रख जायेंगे तो हमारे बच्चे लोग उसको काममे लेगे ? मगर कौन है तेरे बच्चे ? मरनेके बाद तेरे साथ कोई जायगा क्या ? अरे इस जीवनमे भी तेरा कोई नही है। वे सब भी अन्य जीवोकी भाँति तेरेसे अत्यन्त भिन्न जीव है। तब फिर धन-सम्पदा उन बच्चोके लिए जोड-कर रख जानेमे कुछ भी लाभ न मिलेगा। बहुतसे लोग अपने नामके लिए बहुत-बहुत धन-सपदा जोडते है। पुस्तकोमे, पत्थरो मे नाम लिखे जा रहे है, उनके बडे अभिनन्दन चल रहे हैं। खूब इज्जत भी कमा ली, नामवरी भी कमा ली, पर इस असार ससारमे इस नामवरीसे उठता क्या है ? अरे इस ३४३ घनराजू प्रमाण लोकमे न जाने कहांके मरे कहां जायेंगे ? यह थोडीसी परिचित दुनिया इस लोकके सामने समुद्रके एक बिदु के बराबर भी नही है। इस १०-२० हजार मीलकी दुनियामे ज्यादासे ज्यादा अपना परिचय लोगोमे बनाया जा सकता है पर यह सारी दुनिया इस लोकके सामने कुछ भी गिनती नही रखती। तो फिर इस थोडेसे क्षेत्रमे क्या नामवरीकी चाह करना ? उस नामवरीसे इस आत्माको मिलेगा क्या ? किसी भी प्रकारकी नामवरीमे कोई सारकी बात नही है। सार तो केवल सारभूत जो अपना ज्ञानानन्दस्वरूप है उस अपने स्वरूप मे मग्न होनेमे ही सार है। धन रहे चाहे न रहे, उसे तो

तुच्छ माने, पर अपना आचार-विचार ठीक सम्यग्ज्ञान, सम्यग्दर्शनके अनुरूप रहे तो इन करोडपतियो, अरबपतियोके जीव से भी हमारा आत्मा अच्छा है और हम प्रगतिपर है, ऐसा हमे जानना चाहिये। इस धन वैभवको तो मैलकी तरह समझे, उसको पाकर हर्ष न मानें, उस धन वैभवसे अपनी महत्ता न समझें। सतोष करे अपने आत्माका ज्ञान श्रद्धान करके, और अपने आत्मामे अपना आचरण अच्छा बनाकर ही सन्तोष करना चाहिये, यही एक सारभूत बात है।

पच्छायडेय सिद्धे दुगतिगचदुणाणपचचदुरजमे।
परिवडिदापरिवडिदे सजमसम्मत्तणाणमादीहि ॥४॥

सिद्धोमे उपान्त्य भवका भेद—जीवके साथ ८ प्रकारके कर्म लगे हुए है। श्रावक लोग पूजामे कहते है ना—अष्टकर्मदहनाय धूप। अष्टकर्म जीवके साथ लगे है। उन कर्मोका जब विनाश होता है तब सिद्ध अवस्था मिलती है। आत्माके पूर्ण विकासकी दशा सिद्ध अवस्थामे है। जहाँ न शरीर रहता है, न कर्म रहते हैं, न रागद्वेष मोह रहते है, केवल आत्मा ही रहता है, ऐसी अवस्थाको सिद्ध अवस्था कहते है। तो जो सिद्ध हुए है, जितने भी आत्मा सिद्ध है उन सिद्धोमे परस्पर कोई अन्तर नही है। चाहे छोटे शरीर वाले सिद्ध हो, चाहे बडे शरीर वाले सिद्ध हो, चाहे तीर्थंकर बनकर सिद्ध हुये हो, साधारण मुनि ही सिद्ध हुये हो, सिद्ध होनेपर उनके ज्ञानमें,

आनन्दमे, गुणोमे कोई अन्तर नही रहता, पर उन सिद्धोकी विशेपता जाननेके लिए सिद्ध होनेसे पहिले जो भिन्नतायें थी उनको दिखाकर सिद्धमे भेदका वर्णन किया जाता है। जैसे जितने भी सिद्ध हुये है वे मनुष्यभवसे हुए है, पर मनुष्य देहसे पहिले वे क्या थे ? कोई यदि नरकगतिमे थे, नारकी जीव थे और नरकसे निकलकर, मनुष्य होकर मोक्ष गए तो उन्हे यो कहा जाता कि नरकगतिसे आकर, मनुष्य होकर मोक्ष गए, ऐसे भी सिद्ध है। नरकसे निकलकर तो तीर्थंकर तक होते है। जैसे राजा श्रेणिक नरकसे निकलकर तीर्थंकर होगे। कोई तिर्यञ्चगतिसे मनुप्य बनकर मोक्ष गए है, ऐसे भी सिद्ध है। कोई देवगतिसे आकर, मनुष्य होकर मोक्ष गये है, ऐसे भी सिद्ध है। कोई मनुष्यगतिसे आकर, मनुष्य होकर उस भवसे मोक्ष गये। तो यो सिद्धके भेद पूर्व अवस्थाके कारण है, पर सिद्ध अवस्थामे किसी भी सिद्धमे कोई अन्तर नही है।

सिद्धोके अन्त्यभवमे छद्मस्थावस्थाकीय ज्ञानभेदसे भेद—अब जिस भवसे सिद्ध हुए है उस भवके भेदसे भी सिद्धका वर्णन भेदरूपमे किया जाता है। जैसे कोई मुनि केवल दो ज्ञानोके धारी थे—मतिज्ञान और श्रुतज्ञान। और ज्ञान न था। ऐसे भी मुनि तपश्चरण करके केवलज्ञान प्राप्त कर सिद्ध हुए है। उन्हे कहते हैं दो ज्ञानोसे सिद्ध हुए। कोई मुनि तीन ज्ञानोके धारी थे—मतिज्ञान, श्रुतज्ञान और अवधिज्ञान।

अथवा मतिज्ञान, श्रुतज्ञान और मनःपर्ययज्ञान । उन्हे कहेगे कि तीन ज्ञानोसे सिद्ध हुये । कोई मुनीश्वर चार ज्ञानोके धारी थे—मतिज्ञान, श्रुतज्ञान, अवधिज्ञान और मनःपर्ययज्ञान । उन्होने केवलज्ञान पाकर सिद्ध अवस्था पायी, उनको कहेगे कि चार ज्ञानोसे सिद्ध हुये । इस तरह सिद्ध होनेसे पहिले उस ही भवकी विशेषताओसे सिद्धमे भेद किया जाता है अथवा सिद्ध का परिचय कराया जाता है । वस्तुत. सिद्ध होनेपर अब उनमें परस्पर किसी भी प्रकारका अन्तर नही है ।

परमात्मावस्थामे ही पूर्ण हितकी प्रसिद्धि—आत्माका सर्व हित, पूर्ण आनद, पूर्ण ज्ञान परमात्म-अवस्थामे है, उससे पहिले मनुष्य अवस्थामे या देव अवस्थामे कुछ वैभव पाया, कुछ पुण्योदय, कुछ इष्ट समागम पाया तो वह गर्व करनेकी बात नही है, क्योकि ये समागम कब तक रहते है और समागमोसे आत्माका सम्बध क्या ? ये सब पौद्गलिक ठाठ है, आत्मा उन सबसे निराला है, अतएव जो समागम मिलें उनसे न ममता करनी चाहिये, न उससे अपना बडप्पन समझना चाहिये । मिला है तो उसके जाननहार रहे, उसमे आसक्ति न रखे और अपने आत्माकी साधनामे लगे । भगवानकी मूर्तिके जो दर्शन करते है तो उस मूर्तिके सामने कोई इस तरहसे तो नही कहता कि हे पार्श्वनाथकी मूर्ति ! तुम्हे मै प्रणाम करता हूं ? अरे सभी लोग यही कहते है कि हे पार्श्वनाथ भगवान !

मै तुम्हे प्रणाम करता हू। ऐसे ही सिद्ध भगवानको जो लोग नमस्कार करते है वे किस प्रयोजनसे नमस्कार करते है कि हे प्रभो! जैसा स्वरूप आपका है वैसा ही मेरा है। उनके स्वरूप पर दृष्टि जानेसे हमे अपना भी पता पडता है कि यही जाति तो मेरी है। ऐसा ही तो मै हो सकने योग्य हू। लेकिन विषय कषायोके बन्धनमे रहकर यह अन्तर पड गया कि सिद्ध तो है प्रभु और हम है ससारी। तरक्की किसे कहते है? जिसके बाद अवनति न हो। कोई लौकिक तरक्की हो जाय, कोई पद बढ जाय, धन बढ जाय तो इसका नाम यथार्थत· तरक्की नही है, क्योकि कोई राजा भी बन गया और फिर मरण करके कीडा बन गया तो क्या तरक्की हुई? बडे ऊँचे भव भी मिले और मरकर फिर कुगतिमे आना पडे तो क्या तरक्की हुई? तरक्की तो वह है जिसके बाद फिर अवनति न हो। तो पूर्ण उन्नत है वे सिद्ध प्रभु, जिनका ज्ञान केवलज्ञान है, जिनका आनन्द अनन्त आनन्द है, जो सदाके लिए ससारसे छूट गये है, बस ऐसी अवस्था ही उपादेय है और उसीकी हम उपासना करते है।

विविधोपायसिद्ध—सिद्ध भगवान कोई साधारण ज्ञान पाकर सिद्ध हुए है और कोई अप्रतिपाती ज्ञान पाकर सिद्ध हुए है अर्थात् परमावधि, सर्वावधि, विपुलमति, मन·पर्ययज्ञान पाया, जिसके बाद केवलज्ञान ही होगा, केवलज्ञानसे पहिले

मिटेगा नही, ऐसा ज्ञान पा करके सिद्ध हुए है, कोई सयमकी उपासना करके सिद्ध हुए है, कोई सम्यक्त्वकी भावनासे निर्मलता बढ़ाकर क्षणमात्रमे सयम पाकर सिद्ध हुये। बाहुबलि भगवान एक वर्ष तक तपश्चरण करते रहे, कितना कठिन तपश्चरण? एक-दो दिनकी बात क्या—सालके ३६०-३६५ दिन तक बराबर कायोत्सर्गमुद्रामे खड़े रहे। न कही आना, न जाना, न चर्या करना, ऐसा कठिन तपश्चरण किया, उसके बाद उनकी सिद्धि हुई, भगवान ऋषभदेवने हजारो वर्ष तपश्चरण किया उसके पश्चात् सिद्ध हुये और भरत चक्रवर्तीको साधु होते ही, दीक्षा लेते ही केवलज्ञान प्राप्त हुआ। सबने अपने जीवनमे सम्यक्त्वकी ज्ञानकी भावना भायी। भरत चक्री ने किया क्या कि गृहस्थावस्थामे उन्होने बडी वैराग्यताकी भावना भायी। वे चक्रवर्तीके वैभवमे भी सबसे निराले अपने आत्माके गुणोके निकट रहे। तो भीतरकी साधना वह गृहस्थी के बीचमे भी करते थे। इसी कारण मुनि दीक्षा लेते ही क्षणमात्रमे उनके केवलज्ञान उत्पन्न हुआ। तो अनेक प्रकारके ऐसे सिद्ध है उनका वर्णन उनकी पूर्व अवस्थाकी याद दिला करके किया जा रहा है।

साहरणासाहरणे समुग्घादेदरे य णिव्वादे।
ठिदिपलियंकणिसण्णे विगयमले परमणाणगे वदे ॥५॥

समुद्घातादिकृत भेद—कोई साधारण साधु है, कोई

असाधारण साधु है, अर्थात् कितने ही मुनीश्वर ऊँचे पद पाकर ;कोई बलदेव हुआ, कोई चक्री हुआ, कोई तीर्थंकर हुआ, ऐसे विशिष्ट पदको पाकर कोई मुक्त हुए और कोई साधारण मुनि होकर केवलज्ञान प्राप्त करके सिद्ध हुये है। कोई साधु अवस्थामे चर्याविधिसे आहार करते थे, कोई दीक्षा के बाद आहारचर्या किये बिना ही परमतपश्चरणसे सिद्ध हुए है, कोई समुद्घात करके सिद्ध हुए है और कोई बिना समुद्घात के सिद्ध हुये। जीवके साथ ८ प्रकारके कर्म है ना, जिनमे ४ तो है—घातियाकर्म अर्थात् ज्ञानावरण, दर्शनावरण मोहनीय और अन्तराय, ये आत्माके गुणोको घातते है। तो चार घातिया कर्मोका नाश करके परमात्मा हुए, तब आत्मामे केवलज्ञान हुआ, केवलदर्शन हुआ, निर्मल सम्यक्त्व सुख हुआ और अनन्तवीर्यशक्ति प्राप्त हुई तब वे कहलाये अरहन्त भगवान। अब अरहत भगवानके चार घातियाकर्म शेष रह जाते है—वेदनीय, आयु, नाम और गोत्र। तो इन चार कर्मोका जब भी नाश होगा तब एक साथ होगा। ऐसा नही है कि आयु पहिले नष्ट हो जाय तब ३ कर्म बादमे नष्ट हो। ये चार अघातियाकर्म एक साथ नष्ट होगे। अब किसी-किसी भगवान मे यह समस्या आ जाती है कि अरहत देवके यदि आयुकर्म तो रह गया थोडा, मानो रह गया अन्तर्मुहूर्त, बाकी तीन कर्म रह गये हजार-हजार वर्षके तो फिर यह बात कैसे बनेगी कि चार कर्म उनके एक साथ नष्ट हो, इसके लिए उनका

समुद्घात होता है। समुद्घातका अर्थ है कि आत्माके प्रदेश शरीरको न छोडकर दूर फैल जाते है। तो सबसे पहिले शरीरसे तिगुने मोटे होकर नीचेसे ऊपर फैल जाते है, इसे कहते है दण्डसमुद्घात। जैसे डडा लम्बा होता है, इसी प्रकार आत्मा के प्रदेश नीचेसे ऊपर तक १४ राजू तक फैल जाते है। इसके बादमे फिर बगलमे जहाँ तक वलयरहित लोक है वहाँ तक वे प्रदेश फैलते है तब उनका कपाट आकार हो जाता है। फिर आगे पीछे फैलते हैं तो प्रतर हो जाते है, सर्वत्र फैल जाते है। फिर वातवलय जो बचते है उनमे भी फैलते है, उसे कहते है लोकपूरण। इसके बाद सिकुडते है वे प्रदेश प्रतर हुए, फिर कपाट हुए, फिर दड हुए, फिर शरीरके बराबर हो गए। तो इन ८ समयोमे वे तीन कर्म जो हजारो वर्षके थे वे घटकर आयुकर्मके बराबर हो जाते है। जैसे धोती धोई और ऐसे ही धर दी तो वह बहुत देरमे सूखेगी और अगर उसे फैलाकर डाल दिया तो जल्दी सूख जायगी। इसी प्रकार आत्माके प्रदेश इस समुद्घातमे फैलते है तो उनके साथ कर्म भी फैलते है और इस समुद्घातमे फिर वे तीन कर्म आयुके बराबर हो जाते है। जैसे अन्तर्मुहूर्तकी आयु रही तो अन्तर्मुहूर्तके बाद सभी कर्म एक साथ नष्ट हो जायेगे। जिसके आयुके प्रायः बराबर वे तीन कर्म थे वे समुद्घात विना सिद्ध हुए। थोडा बहुत तो समुद्घात किये विना आयुके बराबर हो जाते है किन्तु

अधिक अन्तर हो तो समुद्घात द्वारा करना होता है। तो कोई समुद्घातके बाद सिद्ध होता है और कोई बिना समुद्घातके होता है।

आसनकृत भेद—अब आसनकृत भेद कहते है। कोई सिद्ध पर्यंक आसनसे होते है, कोई खड्गासनसे। जो मनुष्य खडे हुए आसनसे सिद्ध होते है सिद्ध लोकमे वे उस ही रूपसे खड्-गासनके रूपसे अवस्थित है। जो पर्यंक आसनसे सिद्ध होते है वे पर्यंक आसनसे अवस्थित है। तो पहिले आसनसे भी उनमे भेद दिखाये जाते है। इस तरह सिद्धोमे यद्यपि वर्तमानमे कुछ भेद नही है, सब एक समान है, पर उनकी पूर्व अवस्थासे भेद डालकर उनमे भेद किये जाते है।

पुवेद वेदता जे पुरिसा खवगसेढियारूढा।
सेसोदयेण वि तहा ज्झाणुवजुत्ता य ते दु सिज्झंति ॥६॥

वेदभेदसिद्धता—मुनि कहलाते है छठे गुणस्थानसे। पहिले के ४ गुणस्थान तो अव्रती होते है। ५वाँ गुणस्थान देशव्रती, अणुव्रती होते है, क्षुल्लक ऐलक आर्यिका इनका भी ५वाँ गुणस्थान होता है। साधु अधिक काल बदल-बदलकर छठे सातवें गुणस्थानमे रहा करते है। छठवे गुणस्थानके मायने प्रमत्तविरत, याने जो शिक्षा-दीक्षा दे, उपदेश करें उसे कहते है प्रमत्तविरत, और जो साधु शिक्षा-दीक्षामे तो न लगे, किन्तु ध्यानमे लगे है उसे कहते है ७वाँ गुणस्थान अप्रमत्तविरत।

सो कभी व्यवहारमे आये, उपदेश करे, आहार-विहारमे आये और क्षणभरमे ही जो आत्मध्यानमे लग गये, इस तरहकी स्थितियाँ मुनियोकी चलती है। इसे कहते है कि निरन्तर छठेसे ७वें मे, ७वें से छठवें गुणस्थानमे आते है। सो वे मुनि (आजकल तो ७वे गुणस्थानसे ऊपर नही चढ़ते) चढे तो ऊपर दो श्रेणी होते है—एक उपशमश्रेणी और एक क्षपकश्रेणी। जो मुनि कर्मोको दबाकर आगे चढते है वह तो है उपशम श्रेणी और जो मुनि कर्मोका नाश करके चढते है वह है क्षपक श्रेणी। जो मुनि क्षपकश्रेणीमे चढते है वे नियमसे मोक्ष जाते है और जो उपशमश्रेणीमे पहुचते है वे ११वे गुणस्थान तक चढकर नियमसे गिरते है। गिरनेपर वे छठे तक तो गिरते ही है, इससे नीचे वे जहाँ चाहे थमे और फिर अपने परिणामको सम्हालकर क्षपकश्रेणीपर आये तो वे भी मोक्ष जाते है। तो हर एक मुनिमे तीन प्रकारके भाव होते है। होते तो है वे मुनि सब पुरुष, लेकिन कर्मोका उदय इस तरहका है कि किसी मुनिके पुरुषवेदका उदय है तो किसी मनुष्यके स्त्रीवेदका उदय है और किसी मनुष्यके नपुसकवेदका ऊदय है, यह करणानुयोगकी बात है। कोई मुनि पुवेदसे सिद्ध होते अर्थात् पुरुषवेद नामकर्मका उदय था उसका विनाश हुआ, पश्चात् सिद्ध हुए। कोई स्त्रीवेदसे, कोई नपुसकवेदसे श्रेणी चढे वे उन वेदोका विनाश करके सिद्ध हुए। वे सब निग्रन्थ साधु होकर

और ध्यानमे उपयुक्त होकर सिद्ध हुये हैं।

ध्यानोपयोगसिद्धता—आत्मतत्त्वका परिज्ञान होना, मै केवल ज्ञानस्वरूप हू, ज्ञानसे अतिरिक्त मेरा अन्य कुछ स्वरूप नही है। इसमे जितनी भावना दृढ होती है वे मुनीश्वर सिद्ध होते हैं, और जिसे पर्यायबुद्धि हो वह चाहे मुनि ही क्यो न हो, यदि यह भाव है कि मै मनुष्य हू, मै गुणी हू, मेरी ऐसी इज्जत है, मुझे यो माना जाना चाहिये, इस प्रकार पर्यायमे जो अटक जाता है वह सिद्ध नही हो सकता। जो देहका भान छोडकर अपने आपके ज्ञानस्वरूपका अनुभव करता है, मै ज्ञान-मात्र हू, वह ही पुरुष सिद्ध होता है। तो ध्यानसे उपयुक्त हुआ पुरुष सिद्ध होता है।

पत्तेयसयबुद्धा वोहियबुद्धा य होंति ते सिद्धा।
पत्तेय पत्तेय समये समय पणिवदामि सदा ॥७॥

स्वयंबुद्ध और बोधितबुद्ध—कोई तो पुरुष प्रत्येकबुद्ध हुए, कोई पुरुष बोधितबुद्ध हुए। जैसे तीर्थङ्कर प्रत्येकबुद्ध होते है। उनका पढाने वाला कोई शिक्षक नही होता, वे किसीका उप-देश नही सुनते, किन्तु जन्मसे तीन ज्ञानोके धारी होते है—मतिज्ञान, श्रुतज्ञान और अवधिज्ञान। ये तीनो जन्मसे ही उनमे पाये जाते है। जब उनकी दीक्षा होती है तो दीक्षा होते ही मन.पर्ययज्ञानी हो जाते है और ध्यानबलसे केवलज्ञान होता है। तीर्थंकरदेव कही पाठशालामे पढने नही जाते, उनके कोई

गुरु नही होते, वे स्वयं ज्ञानी होते है। अधिकतया तो सिद्ध बोधितबुद्ध होकर होते है। किसीने उपदेश किया, वैराग्य जगा, ज्ञान उपजा, सिद्ध हो गये, ऐसे बोधितबुद्ध कहलाते है। जिनको उपदेश किया जाय और उस उपदेशको सुनकर ज्ञानी बनें, सिद्ध हो उन्हे कहते है बोधितबुद्ध और जो दूसरोका उपदेश पाये बिना जो स्वय ही अपने आत्माकी भावनाके बलसे ज्ञानी बनकर, निर्ग्रन्थ होकर, ध्यानी होकर सिद्ध हुए है उन्हे कहते है प्रत्येकबुद्धसिद्ध। सो ऐसे जो सिद्ध है उन सबको प्रत्येक प्रत्येकको मै प्रणाम करता हू।

पञ्च परमपदको नमन—भैया! भक्तजन प्रतिदिन णमोकार मत्र पढते है—णमो अरिहताण, णमो सिद्धाण, णमो आइरियाण, णमो उवज्झायाण, णमो लोएसव्वसाहूण। इस मत्रमे आदिनाथ, ऋषभनाथ, पार्श्वनाथ आदि किसी भी व्यक्तिका नाम नही है। इस मत्रमे तो गुणोके विकासको नमस्कार किया गया है। मै विकासको नमस्कार करता हू अर्थात् मै गुणोको नमस्कार करता हू। सभी लोग पहिले पैदा तो घरमें ही होते है। चाहे कोई बचपनमे ही मुनि हुआ हो, लेकिन पैदा वह किसी घरमे ही पहिले हुआ। कोई जब ज्ञान वैराग्यके बलसे घरको छोडकर निर्ग्रन्थ साधु होता है तो उसे कहते हैं साधु परमेष्ठी। सबसे पहिले इन पाँचोमे तो साधुपना आता है। यहाँ साधुके मायने है साधना करने वाला। इस आत्माके

स्वरूपकी साधना करने वालेके अब किसी भी चेतन अचेतन पदार्थसे मोह नही है, वह किसी भी प्रकारका रचमात्र भी परिग्रह स्वीकार नही करता, ऐसी साधनामे लीन जो पुरुष है उन्हे कहते है साधु। साधुओमे कोई आचार्य भी होते अर्थात् साधुजन मिलकर किसी एक मुख्य साधुको जिसमे योग्यता दिखती है आचार्यपद देते है और फिर आचार्य जो होता है वह स्वयं दूसरेको सब सघकी सलाह करके आचार्यपद देता है तो आचार्य भी साधु है और उन साधुवोमे जो बहुत विद्वान् है, ११ अङ्ग १४ पूर्वका ज्ञान देते हैं या कम भी ज्ञाता है उन्हे आचार्य उपाध्याय पद देते है। तो आचार्य, उपाध्याय और साधु—ये तीनोके तीनो आत्माकी साधना करके अरहत बन सकते है। आचार्य भी अरहत हो सकते है और उपाध्याय व साधु भी अरहत हो सकते है। अरहत उसे कहते है जिसने चार घातिया कर्मोंका विनाश किया हो, अपनेमे केवलज्ञान, केवलदर्शन, अनन्तशक्ति, अनन्तआनन्द प्राप्त किया हो वह कहलाता है अरहत, सकलपरमात्मा। और अरहत अवस्थाके बाद फिर होती है सिद्ध अवस्था। उन्हे कहते है सिद्ध परमेष्ठी।

पञ्च आत्मविकासोकी सर्वमहनीयता—देखो—साधकका यह मत्र है, इसमे किसी भी प्रकारका पक्ष नही है। यदि केवल इन गुणोके विकासका वर्णन किया जाय, किसी व्यक्ति

का नाम न लिया जाय तो कही भी बैठकर बोल लो। कोई भी मजहब वाले हो सबके बीच यह बात कहो कि जो आत्मा इतना ज्ञानी विरक्त है कि उसे अब आत्माके साधनाकी ही बात रह गयी है, अन्य कुछ उसे नही सुहाता, वह साधु है। सब लोग स्वीकार कर लेगे कि बात बिल्कुल ठीक है। हाँ जहाँ कुछ नाम लिया जाय जो प्रसिद्ध नाम है उनको सुनकर पक्षवश न मानेंगे, लेकिन व्यक्तिका नाम न लेकर केवल गुणो का वर्णन कर लिया जाय तो सब लोग स्वीकार करेंगे कि हां यह ऊँची अवस्था है। ऐसा पुरुप जिसे केवल ज्ञानसाधनाकी ही धुनि है, जो अन्य कुछ नही चाहता, अन्य कोई परिग्रह नही रखता तो इसे स्वीकार कर सकते है, और ऐसी ही साधना वाले पुरुप जब अन्तर्ध्यानिमे आते है, तब अपने आपके स्वरूपमे, ज्ञानमे मग्न होते है। ससारकी कोई बात विकल्प तरग रागद्वेष रच नही रहते है तब वे होते है प्रभु, और अभी देहमे रहते है। कहते जाओ—सब लोग स्वीकार कर लेंगे। और वे प्रभु जब अन्तमे देहरहित हो जाते तो केवल ज्ञान-ज्योतिके पुञ्ज रह जाते है। बस इन ५ पदोकी णमोकार मत्र मे पूजा है, ज्ञानविकासकी उपासना की है।

पञ्च परमपदोमे सिद्धोकी सर्वोत्कृष्टता—इन पदोमे सर्वोत्कृष्ट पद सिद्ध भगवानका है। यह सिद्धभक्ति पढी जा रही है। सिद्ध प्रभु अपने स्वरूपमे, अपनी परिणतिमे रहा करते है।

सिद्धभक्तिमे उस ही उत्कृष्ट विकासमय सिद्धका यह वर्णन है। सिद्ध एक उत्कृष्ट अवस्थाको प्राप्त है, इससे बढकर और कोई विकास नही है। संसारके कोई पद ऐसे नही है कि जिससे बढकर कोई बात न मानी जाती हो। कोई अभी राजसभाका मेम्बर है तो वह सोचता है कि मै अभी मिनिस्टर तो नही हुआ। फिर वह सोचता है कि मै अभी राष्ट्रपति तो नही हुआ, फिर वह मिनिस्टर सोचता है कि दुनियाकी सयुक्तराष्ट्र कमेटीका मैं अध्यक्ष तो नही हुआ। इस तरह लोकके पदमे तो एकके ऊपर एक पद है, मगर कौनसा वास्तवमे ऐसा पद है जिसके ऊपर फिर अन्य कोई पद नही है ? वह पद है सिद्ध भगवानका पद। रागद्वेष मोहका एक बार विनाश हो जाय तो फिर उनके अवनत होनेका कारण क्या रहा ? सब कर्म दूर हो गए, ज्ञानप्रकाश हो गया, किसी तरहके रागद्वेषादिककी तरग नही उठती, कोई विकल्प ही नही रहा, फिर गिरनेका कारण क्या ? वे त्रिकाल उस ही पदमे रहते है जिस पदको उन्होने एक बार प्राप्त किया है। तो सर्वोत्कृष्ट पद सिद्ध भगवानका है।

बाह्य और अन्तः के विषयमे उचित प्रतीति—हम आप सबको यह प्रतीति रहनी चाहिये कि हमारा जो वर्तमानका समागम है, ठाट-बाट है, मिलन-जुलन है, ये सब असार है, इनमे कुछ दम नही है। ये मेरे शरणभूत नही है, इनका मुझे

कोई अधिकार नही है, मेरे ही साथ रहे, ऐसा कोई निर्णय नही है, और साथ भी जब तक है मेरे भावोके अनुकूल ही चलें, ऐसा निर्णय नही है। ये सब समागम सारहीन है। सार की बात है तो एक आत्मज्ञान है। जितने क्षण अपने ज्ञान-स्वरूपकी ओर दृष्टि रहेगी उतने क्षण तक वह आनन्द प्राप्त होता है जो भगवानकी जातिका आनन्द है। सासारिक सुख तो विषयजन्य सुख है, विनाशीक है, पराधीन है, इनके बीच मे अनेक सुख है, अथवा वे सुख भी दुःखरूप ही है, पर अपने ज्ञानस्वरूपकी सम्हाल हो उसमे जो आनन्दकी अनुभूति होती है वह है प्रभुकी जातिका आनन्द। तो करनेका काम यह है कि हम अपने स्वरूपकी श्रद्धा करें और ऐसा अनुभव करते रहे कि मै ज्ञानमात्र हूं, केवल जानन मेरा स्वरूप है। जानता हू इतनी ही मेरी करतूत है। जानता रहता हू इतना ही मेरा अनुभवन है। जाननके अतिरिक्त मेरा कही कुछ नही है, ऐसा दृढ श्रद्धान करके एक जाननरूप ही अपना अनुभव करे। तो इससे ही मनुष्यजन्मकी सफलता है।

पणणवदुअट्ठवीसाचउतियणवदी य दोण्णि पचेव।
वावण्णहीणवियसयपयडिविणासेण होंति ते सिद्धा॥८॥

ज्ञानावरण कर्म—जिन कर्मप्रकृतियोके विनाशसे सिद्ध भगवान होते है वे प्रकृतियाँ सब १४८ है। मूल तो ८ है—ज्ञानावरण, दर्शनावरण, वेदनीय, मोहनीय, आयु, नाम, गोत्र

और अन्तराय। ज्ञानावरण कर्मके निमित्तसे जीवके ज्ञानगुण प्रकट नही होता। वे ज्ञान ५ प्रकारके है, इससे आवरण भी ५ तरहके है। इन्द्रिय और मनसे जो ज्ञान उत्पन्न होता है उसे मतिज्ञान कहते हैं। सीधा ही कुछ चीज देखकर जो ज्ञान हुआ वह तो मतिज्ञान है और उसके बाद फिर ये कल्पनाये जगी कि यह पीली है, यह नीली है, खम्भा हे, अमुक तरहका है, यह श्रुतज्ञान है। मतिज्ञानमे जानकारी तो आती है, पर जानकारीमे विकल्प नही होता। दूसरे—जानकारीका विशेष समझमे आये, विकल्प उत्पन्न हो वह श्रुतज्ञान है। मतिज्ञानसे जाने हुए पदार्थमे और विशेषतासे जाननेको श्रुतज्ञान कहते है। अवधिज्ञान, इन्द्रिय और मनकी सहायताके बिना अपने आत्मा की शक्तिसे यहां-वहा क्षेत्रमे दूरपर पडे हुए अथवा भूत-भविष्य-कालमे कुछ सीमा वाली पर्यायोको जानना सो अवधिज्ञान है। आत्मा ज्ञानस्वरूप है इसलिये आत्माका ज्ञान कितना ही विशेष प्रकट हो जाय, यहाँ तक कि समस्त लोकालोकको जानने वाला हो जाय तो भी इसमे आश्चर्य रचमात्र भी नही है, क्योकि आत्माका स्वरूप ही ज्ञान है, जाननहार है। मन पर्ययज्ञान वह कहलाता है कि दूसरेके मनकी बातको, विकल्पोको, दूसरा क्या सोच रहा है, उस विचारको व पदार्थको जो इन्द्रिय मन की सहायताके बिना आत्मीय शक्तिसे जानता है। उसे मन पर्यय-ज्ञान कहते है। मनःपर्ययज्ञान साधु पुरुषके ही होता है और

वह एक विशिष्ट ऋद्धि है। केवलज्ञान ज्ञानका पूर्ण विकास है। ज्ञानावरण कर्म जब नष्ट हो जाते है, ज्ञानपर कोई आवरण नही रहता, उस समय ज्ञानका जो विकास है वह केवलज्ञान है। केवलज्ञानके द्वारा त्रिकाल, त्रिलोकवर्ती समस्त पदार्थ एक साथ स्पष्ट जाने जाते हैं। ऐसे ५ प्रकारके ज्ञानोपर आवरण करने वाले कर्म होते है उन्हे ज्ञानावरण कर्म कहते है।

दर्शनावरण कर्म—दर्शनावरण ९ प्रकारके है। जो आत्मा के दर्शनगुणको प्रकट न होने दे सो दर्शनावरण है। दर्शन तो यद्यपि ४ प्रकारका है—चक्षुर्दर्शन, अचक्षुर्दर्शन, अवधिदर्शन और केवलदर्शन। लेकिन उन दर्शनोपर आवरण करने वाले कर्म ९ प्रकारके है। ४ के तो ४ आवरण है ही—चक्षुदर्शनावरण, अचक्षुर्दर्शनावरण, अवधिदर्शनावरण और केवलदर्शनावरण। जो चक्षुर्दर्शन प्रकट न होने दे सो चक्षुर्दर्शनावरण है। नेत्रसे जो कुछ जाना जाता है. पदार्थके नेत्रज ज्ञानसे पहिले जो आत्मावलोकन होता है, जो एक सामान्य प्रतिभास होता है उसे चक्षुर्दर्शन कहते है। उसे जो रोके उस कर्मका नाम चक्षुर्दर्शनावरण है। इसी प्रकार नेत्र इन्द्रियको छोडकर बाकी ४ इन्द्रियाँ और मनके द्वारा जो पदार्थ जाने जाते है उसके पहिले जो सामान्य प्रतिभास होता है उसे अचक्षुर्दर्शन कहते है। अचक्षुर्दर्शनको न होने देने वाला जो कर्म है उसे अचक्षुर्दर्शनावरण कर्म कहते है। इसी प्रकार अवधिज्ञानसे पहिले जो सामान्य प्रतिभास होता है उसे अवधि-

दर्शन कहते है। अवधिदर्शनको न होने देने वाले कर्मको अवधिदर्शनावरण कहते है। ये चार तो आवरण है, लेकिन जब किसीको नीद आ जाय तब भी तो दर्शन नही होता। तो निद्रा भी एक आवरण है जो दर्शनको प्रकट नही होने देता। वह निद्रा ५ तरहकी होती है, इसलिए ५ निद्रा और बढ जाने से दर्शनावरणके ६ भेद हो जाते है। वे ५ निद्रा कौनसी है? एक तो सामान्यनिद्रा। मनुष्य आदि थक जाय, कोई परिश्रम करके तो उस परिश्रम करनेसे जो निद्रा आती है उसे निद्रा कहते है, पर ऐसी निद्रा आये कि साये हुयेको जगाया, वह उठा भी, लेकिन फिर तुरन्त सो जाय। जैसे कोई बच्चा सो गया, उसकी माँ ने उसे उठाकर खडा कर दिया, परन्तु थोडी ही देरमे वह फिर गिरकर सो गया। तो उसे निद्रानिद्रा कहते है। बडी विकटनिद्रा। तीसरी निद्रा है प्रचला नामकी निद्रा। कुछ सोयासा है, कुछ जगासा है। जैसे कभी शास्त्रसभामे कोई पुरुष बैठा हो तो वह कुछ सो भी लेता है और कुछ शब्द भी कानमे पडते है जब कोई वक्ता पूछता—क्यो भाई सो रहे थे? तो वह कहता है कि सोते नही है अथवा थोडेको नीद आती है, चलता जाता है, नीद भी लेता जाता है और चलने मे कोई फर्क भी नही होता, तो ऐसी निद्राको प्रचलानिद्रा कहते है। चौथी निद्रा है प्रचलाप्रचलानिद्रा। सोते हुए मे अग चले, दांत किटकिटाये, हाथ भी चले, लार भी बहे तो वह

प्रचलाप्रचला है। ५ वी निद्रा है स्त्यानगृद्धि। सोते हुयेमे कोई खडा हो जाय, कुछ काम कर ले, फिर सो जाय, फिर जगनेपर उसे पता ही न पड़े कि मैने कुछ काम किया था, उसे कहते है स्त्यानगृद्धि। जैसे कभी सोतेमे मदिरके किवाड़ खोले, दर्शन भी कर लिया और फिर सो गये, जगनेपर पता ही नही रहता कि मै मदिर गया था, ऐसा भी कठिन काम कर ले कि जगती हालतमे इतनी शक्ति वाला काम न कर सके, पर उसे पता ही न रहे कि मैंने कुछ कार्य किया, उसे कहते है स्त्यानगृद्धि। इसी प्रकार ४ तो दर्शनावरण और ५ निद्रा, ऐसे ६ दर्शनावरण कर्मके भेद है। इन सब कर्मोंसे रहित सिद्ध भगवान होते है।

वेदनीय कर्म—तीसरा कर्म है वेदनीय, जिसके उदयसे यह जीव सुख दुःखका वेदन करे उसे वेदनीय कर्म कहते है। ये दो प्रकारके होते है—साता और असाता। जो कुछ साताका अनुभव कराये सो सातावेदनीय और जो असाताका अनुभव कराये सो असातावेदनीय। ससारमे वास्तवमे तो साता कही है ही नही। अथवा यह कहो कि शान्ति कही नही है। कोई असाता कम हो गयी उसीको साता कहने लगते है। जैसे किसीको १०३ डिग्री बुखार चढा था, अब रह गया १०० डिग्री। कोई आकर पूछता है—क्यो भाई अब तुम्हारी कैसी तबियत है? तो वह कहता है कि अब ठीक है। अरे कहाँ

ठीक है, अभी तो दो डिग्री बुखार है। इसी प्रकार ये ससारी जीव थोडासा असाताके कम होनेपर साताका अनुभव करते है। तो ये ससारमे जितने सुख है ये वास्तवमे सुख नही है। पहिले बडा दु ख भोगा था अब वह दु.ख कुछ कम हो गया, उसीको ही लोग सुख मानते है। तो जो सुखका वेदन कराये वह है सातावेदनीय और जो असाताके वेदन कराये वह है असातावेदनीय। इस तरह वेदनीय दो तरहके है—सातावेदनीय और असातावेदनीय।

दर्शनमोहनीय कर्म—मोहनीयके २८ भेद है, मोहनीय कर्म उसे कहते है जो जीवको मोह दे अर्थात् सम्यक्त्व और चारित्र न होने दे। मोहनीयमे और होता क्या है ? आत्मा अपने गुणोमे सावधान नही रह पाता। सम्यक्त्व गुणको मोह दे इसके मायने यह है कि श्रद्धा बिगड गयी, परवस्तुको अपना मान लिया, परवस्तुकी ओर उसका आकर्षण जगा। यह है श्रद्धाका मोह। और चारित्रका मोह यह है कि रचमात्र भी सयम नही पाल सकता, पापोका त्याग नही कर सकता, अपने आत्माकी ओर नही आ सकता, ये सब चारित्रमोह है। सो दर्शनमोह तो ३ तरहके है—मिथ्यात्व, सम्यक्मिश्यात्व और सम्यक्प्रकृति। मिथ्यात्वके उदयमे तो इस जीवके पूरा मोह आ जाता है, बिल्कुल विपरीत श्रद्धान हो जाता है, अपने स्वरूपका रच भी भान नही रहता और सम्यक्मिथ्यात्वके उदयमे इस जीवके मिले-जुले परिणाम रहते है। कुछ सही श्रद्धा है

कुछ विपरीत श्रद्धा है। सम्यक्प्रकृतिके उदयमे यद्यपि श्रद्धा तो नही बिगडती, पर उसमे थोडे दोष लगा करते है। जैसे कोई बूढा आदमी लाठी लेकर चले तो चलने वाला तो बूढा ही है, मगर कुछ चलित चलता है, जवानोकी तरह एकदम जोशपूर्वक नही चल पाता। ये तो तीन दर्शनमोहनीय है।

चारित्रमोहनीय कर्म—चारित्रमोहनीय २५ तरहकी है। अनन्तानुबधी क्रोध, मान, माया, लोभ, ऐसे कर्म, ऐसी कषाय कि जिसके उदयसे जीवके सम्यक्त्व गुण प्रकट नही हो पाते, इतना तीव्र क्रोध कि आत्माका भान भी नही कर सकते, इतना अहकार मान, मायाचार, लोभ कि अपने आत्माकी सुध भी नही रहती, ऐसे क्रोध, मान, माया, लोभ कषायोको अनन्तानुबधी कहते है। अप्रत्याख्यानावरण क्रोध, मान, माया, लोभ जो आत्माके देशचारित्रका घात करें उसे अप्रत्याख्यानावरण क्रोध, मान, माया, लोभ कहते है। रंच भी व्रत न पाल सके, सयमासयम भी न हो सके, श्रावकका व्रत भी न आ सके ऐसी कपायको कहते है अप्रत्याख्यानावरण। प्रत्याख्यानावरण—जिससे मुनि न बन सके, सकल व्रत न हो सके, महाव्रत धारण न कर सके, ऐसी कपायको प्रत्याख्यानावरण कहते है। यह उससे हल्की कषाय है। इसमे सयमासयम तो पाल सकते है, पर महाव्रत धारण नही कर सकते है। संज्वलन कपायमे महाव्रत भी हो गया, साधना भी चल रही, फिर भी

थोड़ी ऐसी कषाय लगी है जिससे आत्मा निष्कषाय नही रह पाता और उसके यथाख्यातचारित्र नहा हो सकता। ये १६ तो कषायें है और ६ नोकषायें है—हास्य, रति, अरति, शोक, भय, जुगुप्सा, पुरुषवेद, स्त्रीवेद और नपुँसकवेद। ये कर्म ही तो है जिससे जीवको हसी आये, हँसीकी बात सूझे, मजाक करे, ऐसी स्वच्छन्दताके और हसीके परिणाम जिस कर्मके उदयसे होवे उसे हास्यकर्म कहते है। जिस कर्मके उदयसे प्रीति उत्पन्न हो, बाह्य वस्तुवोमे अपना स्नेह भाव जगे उसे रति नामक कर्म कहते है। जैसे कि ससारी जीवोके ये रोज ही रोज लगता है, पञ्चेन्द्रियके विषयोमे प्रीति जगती है वे सब रतियाँ कहलाती है। अरति कर्मके उदयसे वस्तुमे अनिष्ट भाव होता है वह वस्तु रुचती नही है उसे अरतिकर्म कहते है। भयकर्म—जिसके उदयसे किसी प्रकारके डरका परिणाम हो सो भय नामक कर्म है। जुगुप्सा कर्मसे जीवमे घृणाका भाव आता है। जैसे कभी कोई गदी चीज दिख जाय और घृणा आये, मन बेचैन हो जाय, ऐसी घृणा होती है। उसका भी कारण कोई कर्मका उदय है। जीवमे जितने भी विभाव होते है, स्वभावके विपरीत जो कुछ भी परिणतियाँ होती है वे सब किसी न किसी कर्मके उदयसे होती है। वे स्वभाव तो नही है। यदि कर्मके उदय बिना जीवमे कोई भाव उत्पन्न होने लगे तो इसका अर्थ है कि वह स्वभाव बन गया। स्वभाव तो आत्माकी चीज है, आत्मोत्थ है। जिसके उदयमें

पुरुषके गुणोकी वृद्धिका ही परिणाम बने सो पुरुषवेद है। स्त्री-वेद—जिसके उदयमे जीवमे मायाचार जगे, अवगुणकी ओर ढले उसे स्त्रीवेद कहते है। नपुँसकवेद—जिस कर्मके उदयसे स्त्रीवेदसे भी और निम्नतर परिणाम बने सो नपुंसकवेद है। इस प्रकार २५ तरहके चारित्रमोह है, यो २८ तरहके मोहनीयकर्म है।

नरकायु व तिर्यगायु कर्म—आयुकर्म ४ तरहके है—नरक आयु, तिर्यञ्च आयु, मनुष्य आयु और देव आयु। जिसके उदयमे नरक शरीरमे रहना पडे उसे नरक आयु कहते है। नरक आयुमे बीचमे कभी छेद नही होता, अकाल मरण नही होता नारकी जीवोके। नारकी जीव रोज-रोज पिटते है, रोज शरीरके खण्ड-खण्ड होते है। अकाल मरण होने लगे तो इसके मायने है कि कोई नारकी आज पैदा हुआ तो आज ही मर गया, क्योकि उसकी सारी खबर नरकमे ली जाती है। तो नारकी जीवोके अकाल मरण नही होता। तिर्यञ्च आयुके उदयसे तिर्यञ्चोके शरीरमे जन्म लेना होता है और उसमें रोके रहता है जीवको। तिर्यञ्च आयु कमसे कम अन्तर्मुहूर्त की होती है और अधिकसे अधिक तीन पल्य तककी हो सकती है। जो भोगभूमिमे तिर्यंच है वहाँ जलचर नही होते, मछली, मगर आदिक जलमे रहने वाले जानवर नही होते। दो तरहके जीव होते है—थलचर और नभचर याने पशु और पक्षी। सो

इन पशु-पक्षियोका जो कुछ आहार है वह वहाँ सदा रहता है, घास चार अगुल ऊँची उठी हुई सर्वत्र रहती है। सो वे तिर्यंच स्वाधीन रहकर उस घासको खाते रहते है। कोई भी पशु वहाँ बन्धनमे नही रहता है। वहाँके मनुष्य स्त्री पुरुष भी बहुत मदकपाय होते है। तो भोगभूमिके तिर्यञ्चोकी आयु ३ पल्यकी है।

मनुष्यायु कर्म—मनुष्य आयुकर्मके उदयसे जीव मनुष्यके शरीरमे जन्म लेता है और मनुष्य शरीरमे रुका रहता है। तिर्यञ्च और मनुष्य—इन दोनोका अकाल मरण हो सकता है, पर भोगभूमिया तिर्यञ्च और भोगभूमिया मनुष्योका अकाल मरण नही होता। प्रश्न—कितना क्षेत्र भोगभूमिका है? उत्तर—जम्बूद्वीपमे ७ क्षेत्र है उनमे भरत और ऐरावत और विदेहको छोडकर बाकी सारा क्षेत्र भोगभूमिका है। विदेहमे भी थोडा हिस्सा मेरूपर्वतके पासका भोगभूमिका है। वहाँ जुगलिया उत्पन्न होते है, पुत्र पुत्री एक साथ माँ के गर्भसे होते है और उनके उत्पन्न होते ही तुरन्त माता-पिताका देहान्त हो जाता है। माता-पिता सतान को नही देख पाते और सतान माता—पिताको नही देख पाती, ऐसी वहाँ रीति है, इसलिए वहाँ सब सुखी है। दु:ख तो इस बातका है कि सतानको देख लिया बस दु:ख लग गया, क्योकि उनमेसे किसी न किसीका वियोग जरूर होगा। सो वहाँपर वे उत्पन्न हुए सतान ४९ दिनोमे ही अपने आप जवान हो जाते है।

अंगूठा चूसकर ही उनका पेट भरता है। बादमे कल्पवृक्षाें मनमाने जो इच्छा हो वह सब प्रकारका साधन मिलता है। तो वे भोगभूमिया मनुष्य कहलाते है। उनका अकाल मरण नहीं है और जो कर्मभूमिज मनुष्य है वे उसी शरीरसे मोक्ष जायेंगे। चरमशरीरी पुरुष हैं उनका भी अकाल मरण नही है। शेष कर्मभूमिया मनुष्योका अकाल मरण हो सकता है। सो मनुष्यो की आयु कमसे कम 'अन्तर्मुहूर्तकी है। कोई मनुष्य १ मिनट ही जी पाया, पेटमे ही गर्भमे आते ही और वही मर गया, ऐसा भी हो सकता है और एक होते हैं लब्ध्यपर्याप्तक मनुष्य, वे तो एक मिनटमे २३ बार जन्ममरण करते हैं, वे व्यवहार मे नही आते। शरीरकी कांख आदिक गुप्त स्थानोसे पैदा होते रहते है। तो उसे मनुष्य आयु कहते हैं जिसके उदयसे मनुष्य शरीरमे रहना पडे।

देवायुकर्म—देवआयुके उदयसे देवोका शरीर मिलता है। देवोका शरीर हाड मास चाम रहित वैक्रियक वर्गणाओसे बना होता है। यद्यपि डील-डौल आकार मनुष्यो जैसा है, मनुष्यो जैसे ही समस्त अङ्गोपाङ्ग है, किन्तु मनुष्योके शरीरसे देवोके शरीरमे दो विशेषताये है—एक तो शरीरमे हाड मास चाम आदिक नही होते और उनको भूख-प्यासकी भी कोई वेदना नही होती। हजारो वर्षोमे जब कभी थोडीसी भूख-प्यासकी वेदना महसूस हुई तो उसी समय उनके ही कठसे अमृत झर

जाता है और वे तृप्त हो जाते है। वे बहुत दिनोमे श्वासोच्छ्वास लेते है। उनका शरीर बहुत समर्थ होता है, एक है यह विशेषता, और दूसरी विशेषता यह है कि देवोके शरीरका अकालमरण नही होता। ऐसे देवशरीरमे रहना पडे जिस कर्म के उदयसे उसे देव आयुकर्म कहते है।

गति व जाति नामकर्म—अब ९३ प्रकृतियाँ नामकर्मकी सुनिये—नामकर्मके उदयसे शरीरकी रचना होती है। यहाँ उन सब कर्मोको बता रहे है कि जिन-जिन कर्मोंका नाश करने से सिद्धभगवान बनते है। तो ९३ प्रकारके नामकर्म है। जैसे ४ तो गतियाँ है—नरक, तिर्यञ्च, मनुष्य और देव। इन्ही गतियोके उदयसे जीवमे उसी गतिका भाव पैदा होता है। जैसे अभी मनुष्यगतिमे है तो मनुष्योकी तरह खाते-पीते है और अगर मरकर पशु-पक्षी आदि बन गये तो उस तरहसे खाने-पीने लगेंगे। यो ही जिस गतिमे यह जीव पहुचता है उसी गतिकी सारी वृत्तियाँ उसमे होने लगती है। तो यह बात उन जीवोमे गतिनामकर्मके उदयसे होती है। जातिनामकर्म—जिसके उदयसे जीवोकी जातियाँ बन जाती है—एकेन्द्रिय, दोइन्द्रिय, तीनइन्द्रिय, चारइन्द्रिय और पचेन्द्रिय। जिसके केवल एक स्पर्शनइन्द्रिय है वह एकेन्द्रिय जातिका है। पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु, पेड वगैरा ये सब एकेन्द्रिय जातिके है। जिनके स्पर्शन और रसना ये दो इन्द्रियाँ होती है उनको

दो इन्द्रियजातिका बोलते हैं। वे सब एक किस्मके है। छूकर ज्ञान कर ले और चखकर ज्ञान कर ले, इससे अधिकका ज्ञान उनमे नही पाया जाता। दो तीन इन्द्रिय जातिमे ३ इन्द्रियां होती है—स्पर्शन, रसना और घ्राणविषयक ज्ञान हो पाते हैं, इससे अधिक ज्ञान नही होते। चतुरिन्द्रिय जातिमे ४ इन्द्रियां होती हैं, इसमे नेत्रेन्द्रियविषयक ज्ञान भी हो जाता है, रूप देख लिया, इससे अधिक ज्ञान नही होता। पञ्चेन्द्रियमें ५ इन्द्रियसम्बंधी ज्ञान जगता है। शब्द भी सुन लिया, और जिनके मन है वे बहुत-बहुत बातें विचार भी लें, कानून, युक्ति, योजना, साहित्य आदिककी बातें सोच सकते है और हित अहितका निर्णय कर सकते है, ऐसी ५ जातियोमे जिस उदयसे जन्म हो उसे जातिनामकर्म कहते हैं।

शरीर नामकर्म—शरीर नामकर्म ५ प्रकारके होते है—जिसके उदयसे शरीरकी रचना होती है। औदारिक शरीर—मनुष्य तिर्यञ्चके शरीरका नाम है औदारिक शरीर। इसकी रचना जिस कर्मके उदयसे हो उसे औदारिक शरीर नामकर्म कहते है। जगतमे मनुष्य बहुतसे ऐसे मिलते है कि जिनको निमित्तनैमित्तिक भावका परिचय नही है, विज्ञान नही है, सो यह कहते हैं कि ये सब कुछ जितने जीव है किसी एक ईश्वरके रचे हुए है। अरे ईश्वर तो अपने ज्ञान और आनन्दमे मस्त रहे, त्रिलोक त्रिकालवर्ती पदार्थोंको जाने और

निरन्तर निराकुल रहे सो तो है ईश्वरका स्वरूप। और उसे यो माने कि वह हम सब जीवोको उत्पन्न करता है। हम सबसे पाप कराये, पुण्य कराये, सुख दे, दुःख दें आदि नाना आफतोमे उसका स्वरूप माने, यह तो ईश्वरका स्वरूप बिगाडना है। बात तो यहाँ यो है कि जो जीव जिस प्रकारके परिणाम करता है उस परिणामके निमित्तसे उस तरहका कर्मबन्ध होता है, और उस कर्मके उदयमे फिर जीवकी ऐसी-ऐसी रचनायें स्वयमेव हो जाती है। बरसात हुई और रात्रि भरमे छोटे-छोटे कितने ही मेढक पैदा हो जाते है, कितने ही कीडे पतिगे घास आदिक उत्पन्न हो गए। जीवके जिस नाम-कर्मका उदय है उसके अनुसार वैसा शरीर मिल गया। तो ये सब शरीर नामकर्मके उदयसे है। देव और नारकियोके शरीरका नाम है वैक्रियक शरीर। सो वैक्रियक शरीर नाम-कर्मके उदयसे देव नारकियोका शरीर बनता है। तीसरा शरीर है आहारक। आहारक शरीर नामकर्मके उदयसे आहा-रक ऋद्धिधारी मुनिके किसी तत्त्वमे शका होनेपर मस्तकसे एक सफेद पुतला निकलता है। जहाँ श्रुतकेवली हो वहा चला जाता है और इनका दर्शन करके उनकी शकानिवृत्त हो जाती है। वह आहारक शरीर है। दो शरीर है तैजस कार्माण, जो इस जीवके सदाकाल परम्परासे लगे आये है। स्थूल शरीर तो बिछुड जाता है। कोई मनुष्य था तब तो औदारिक शरीर

था, जब देव हुआ तब वैक्रियक हो गया। देवसे हटकर मनुष्य तिर्यञ्च हो गया तो वैक्रियक मिट गया, औदारिक हो गया। लेकिन अनन्तकालसे अनन्तदेह धारण किया, पर ऐसा कभी नही हुआ कि तैजस और कार्माण शरीर नही लगा हो जीव के। ऐसा एक समय भी नही होता। ये दोनो शरीर जीवके साथ सदाकाल रहते है। तो इस तरह ५।प्रकारके शरीर जिस नामकर्मके उदयसे होते है उसे शरीर नामकर्म कहते है। एक स्थूल रूपसे यो समझ लीजिये कि दो तरहके शरीर है—एक सूक्ष्म शरीर और एक स्थूल शरीर। जैसे कोई लोग कहते है कि जीवके मरनेपर अर्थात् शरीर छूटनेपर स्थूल शरीर तो साथ नही जाता, वह तो जहाका तहा ही रह जाता है, पर सूक्ष्म शरीर जीवके साथ जाता है। तो यह सूक्ष्म शरीर क्या है—तैजस और कार्माण।

बन्धन और संघात नामकर्म—इसी प्रकार ६ बन्धन और सघात नामकर्म होते है। बन्धन नामकर्मके उदयसे तो जीवको जो शरीर मिला, जो अगोपाग मिला, उनका परस्परमे बन्धन हो जाता है और सघात नामकर्मसे ऐसा बँधते है कि बीचमे छिद्र नही पाये जाते। जैसे हाथमे दो हड्डी है और छोटी मोटी अनेक हड्डिया है और एक हाथमे बँध गये, पर हाथमे किसी जगह छिद्र नही पाये जाते। जैसे चनेके कोई लड्डू बनाये तो उनमे बीचमे अन्तर रहता है। इसी तरह

शरीरमे जो भी अङ्ग बने, पैर-पीठ आदिक बने इनके बन्धनमे बीचमे छिद्र नही होते। इस तरह शरीरकी रचना शरीरकर्म, बन्धनकर्म, संघातकर्मके उदयसे होती है। इन सब कर्मोंका विनाश करके जीव सिद्ध होता है।

किसी एक व्यवस्थापक द्वारा देहधारियोकी रचनाकी असंभवता——जिन कर्मोंके बन्धनसे ये ससारी जीव दुःखी हो रहे है और उन ही जिन कर्मोके बन्धनोसे मुक्त होनेपर ये सिद्ध भगवान अनन्त आनन्दमय हो रहे है उन कर्मोंका वर्णन चल रहा है। शरीरकी रचना करने वाला कौन है? यदि कोई संसारमे एक प्रभु होता इन सब शरीरोका रचने वाला, तो उसमे एक तो यह प्रश्न है कि उसने रचना क्यो किया? क्या वह प्रभु अधूरा था, या वह प्रभु पूरा था, या उसने जीवो पर दया की, दयाके वश रचा अथवा उसे कुछ खेलनेकी सूझी, क्रीडा कौतूहलके वश क्या उसने ससारी जीवोको रच डाला? या ससारी जीवोके रचनेका उसके स्वभाव पडा हुआ है? अगर वह प्रभु अधूरा था जिससे रचा तो जो अधूरा है वह प्रभु कैसा, और अधूरा कुछ होता नही। जो कुछ है वह है के नातेसे पूरा ही होता है। दयाके वशसे जीवोको रचा तो दया ही रखना चाहिये, फिर क्यो वह जीवोको दु:खी करता, कुगतियोमे क्यो ले जाता? यदि खेल-खेलमे रच रहा तो खेलनेका बच्चोका काम है, बच्चे होते है नादान। जो प्रभु है वह अनंत

ज्ञानका अधिकारी है। उसका खलनेका काम कहाँ ? यदि स्वभावसे रचा तो प्रभु तो सदा है, उसका स्वभाव एक है तो सब एक रचना होनी चाहिये, और बिना विरामके निरन्तर तीव्र गतिसे परिणमन होना चाहिये। तो कोई एक यह व्यवस्था नही कर सकता कि अनन्त जीवोके अनन्त शरीरोको रचे और उसमे कही भूल न खाये। कोई कारण प्रत्येक जीवके साथ लगा हुआ है जिसके निमित्तसे शरीरकी रचनाओमे कही बाधा नही आती। वह कारण है नामकर्म।

अङ्गोपाङ्ग नामकर्मके उदयसे देहके अङ्ग और उपाङ्गों की रचना—अंगोपाग नामकर्मके उदयसे जीवोके देहके अग और उपाग प्रकट होते है। स्थावर जीव—एकेन्द्रिय जीव, पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु, वनस्पति उनके अङ्गोपाङ्गका उदय नही है तो इनके कोई अङ्गोपाङ्ग नही है। जो शाखायें फूटी है वे वृक्षके अंग नही है, किन्तु अटपट उसकी फसा निकली है। दोइन्द्रिय जीवसे लेकर पञ्चेन्द्रिय जीव तक अगोपांगका उदय है, सो जो जिस प्रकारके है उस तरहके अग और उपांग निकलते है। अंगके मायने जैसे मनुष्योमे ८ अग है—२ हाथ, २ पैर, मस्तक, छाती, पीठ आदिक और उपाग जैसे अगुली, नाक आदिक। जो उन अङ्गोके और हिस्से है वे उपांग हैं। अङ्ग और उपाङ्ग तीन शरीरोमे हुआ करते है—औदारिक, वैक्रियक और आहारक शरीर। जैसे कि कल कहा था कि

जीवके साथ २ तरहके शरीर लगे है—स्थूल शरीर और सूक्ष्म शरीर। तो सूक्ष्म शरीर है तैजस और कार्माण, जो मरनेके बाद भी रहता है, नया शरीर न पानेके बीच भी रहता है। उसमे अग और उपाङ्ग नही होते, किन्तु औदारिक, वैक्रियक, आहारक, इन तीन शरीरोमे ही अङ्गोपाङ्ग होते है। मनुष्य और तिर्यञ्चके शरीरको औदारिक शरीर कहते है। उसमे अंगोपाङ्ग है, सिर्फ एकेन्द्रियके अङ्ग उपाङ्ग नही है। देव और नारकियोके शरीरको वैक्रियक शरीर कहते है। इनमे भी अगोपाग है और आहारक ऋद्धिधारी मुनिके जब कोई शका उत्पन्न होती है तो शंकाका समाधान पानेके लिए उनके मस्तक से एक हाथका धवल पवित्र पुतला निकलता है और वह तीर्थङ्कर, केवली, श्रुतकेवलीके दर्शन करके लौट आता है। शकाका समाधान हो जाता, वह पुतला आहारक शरीर कहलाता है। जैसे यहाँ लगता है ना कि बम्बईका ख्याल दौडाया तो ऐसा लोग कहते है कि तुम्हारा दिमाग कहाँ गया था? तो वह कहता है कि बम्बई गया था, तो उस दिमागके न अङ्ग है, न कुछ है, किन्तु यहाँ लोग ख्यालसे ही कहते है, लेकिन आहारक वास्तवमे कोई शरीर है जिसके हाथ, पैर, नाक, आँख आदि सब कुछ है, जो एक हाथका धवल शरीर बनता है शकाका समाधान, वदनालाभ आदि पानेके लिए। तो यह अग और उपागमे जो शरीरकी रचनाये होती है वे नामकर्मके उदयसे होती है।

संस्थान नामकर्मके उदयसे देहके आकारोंकी रचना—अब देखिये शरीरोमे भी बडा भेद है, किसीका कैसा ही अट-पट शरीर है, किसीका सुडौल शरीर है। अजायब घरोमे जीव-जन्तुवोको देख लीजिये, कैसे कैसे अटपट विचित्र काय वाले जीव पाये जाते है ? तो इन नाना तरहके काय वाले जीवोको कौन गढता है ? अरे इनका गढने वाला कोई एक प्रभु नही है, किन्तु जीवके साथ अपने भावोसे उपार्जे हुए कर्म लगे हुये है। उन कर्मोके उदयसे स्वयमेव ऐसी रचना होती है, निमित्तनैमित्तिक भाव अनुमानसे या प्रत्यक्ष तो सम्बन्ध देखकर बताया जाता है। वैसे स्पष्टरूप से तो किन्ही भी दो वस्तुवोमे दिखाया नही जा सकता कि निमित्त की यह चीज बनी और दूसरे पदार्थमें गई और उसने यह असर डाला, ऐसा तो यहांके पदार्थोमे भी नही बता सकते। जैसे अग्निपर पानी भरा बर्तन रखा, पानी गर्म हो गया तो विश्लेषण करके वहा भी कोई बताये कि अग्निको देखो यह अश गया, यह पानीके भीतर गया, उसने यहाँ प्रभाव डाला, इस प्रकार तो वहाँ भी कोई विश्लेषण नही कर सकता। हाँ, अन्वयसम्बध देखकर वताते है कि इसके निमित्तसे पानी गर्म हो गया। इसी प्रकार अनुमान द्वारा अन्वय सम्बंध जानकर यह बताया जा रहा है कि ऐसे विचित्र कर्मोके उदय होते है जिसमे ऐसी रचनायें चलती है। तो सस्थान होते है ६ प्रकार के—एक तो बहुत सुडौल आकार होना। शरीरका बीच

नाभिस्थानसे माना गया है। नाभिसे नीचेके अंग उतने ही वडे और नाभिसे ऊपरके भी अङ्ग उतने ही वडे हो, सुडौल हो यह समचतुरस्रसस्थान है। नाभिस्थानसे ही लम्बाई-चौडाई का सही अनुमान होता है। तभी तो प्रतिष्ठाचार्य प्रतिष्ठा की जाने वाली मूर्तिकी सही नाप नाभिस्थानसे लेकर देखता है। यदि सारी लम्बाई-चौडाई सर्व अङ्गोपाङ्गोकी सही है तो यही कहलाता है समचतुरस्रसस्थान। किसीका आकार ऐसा हो कि नाभिसे ऊपरके अंग तो खूब लम्वे-चौड़े, मोटे हो और नीचेके अग वहुत दुवले-पतले तथा छोटे हो तो उसका नाम है न्यग्रो-धपरिमंडलसस्थान। जैसे वटका वृक्ष नीचे तनेकी तरफ तो छोटा और मोटा है और ऊपरका हिस्सा बहुत दूर तक फैला रहता है तो यह है न्यग्रोघपरिमडल सस्थान। नाभिसे नीचे के अग लम्वे, वडे हो और ऊपरके छोटे हो उसे स्वातिसस्थान कहते है। कोई मनुष्य हो तो करीव ४० वर्षका और उसके शरीरकी लम्बाई हो ७ वर्षके बच्चेकी जितनी और खूब मोटा ताजा है तो वह है वामन सस्थान। और जो नाना प्रकारके आकार है वे है हुंडक सस्थान। एकेन्द्रिय, दोइन्द्रिय, तीन-इन्द्रिय तथा चारइन्द्रियमे तो हुडकसस्थान नही होता है। हा मनुष्यके संस्थानोमे भेद पडता है। तो यह शरीरकी रचना आकार ६ सस्थान नामकर्मकी प्रकृतियोके उदयसे होती है। उन सबका विनाश होता है तब वे सिद्ध भगवान अशरीर

कहलाते हैं और अशरीर होकर ही अनन्त आनन्दमग्न रहते हैं ।

संहनन नामकर्मके उदयसे देहके अस्थि आदिकी रचना— इसी प्रकार शरीरमे मजबूतियाँ भी भिन्न-भिन्न प्रकारकी हैं । हाडोकी मजबूती अनेक प्रकारकी है । देव और नारकियोमे तो हाडोकी रचना ही नही है, उनका वैक्रियक शरीर है । मनुष्य और तिर्यञ्चोमे स्थावरोको छोडकर सबमें हाडोकी रचना है । यहाँ भी तो किसीमे कमजोरी है, किसीमे मजबूती है । यह भी रचना करने कौन आया ? जीवोके साथ वैसे ही परि-णामोका पाया जाता हुआ प्रकृतिका उदय है और यह रचना हो जाती है । यह सब विषय सिद्धातका अध्ययन करनेसे और स्पष्ट होता है कि किस जीवमे किस प्रकारके भाव होते है, जिससे इस ही प्रकृतिका बंध है, अन्यका बन्ध नही है । तो ये सब भाव, बध, उदय सब ससारी जीवोके साथ लगे है । उनसे जो कर्म बँधे है उनका विनाश करके ये सिद्ध भगवान होते है ।

स्पर्श, रस, गंध, वर्ण, आनुपूर्व्य व अगुरुलघु नामकर्मका विपाक—जीवोके देहमे जो भिन्न-भिन्न जातिके जीवोमे एकसा स्पर्श, एकसा रस, एकसी गध और एकसा वर्ण पाया जाता है उसका भी कारण कर्म है । प्रश्न—पुद्गलके नातेसे स्पर्श, रस, गध, वर्ण होते ही थे, फिर नामकर्ममे जो दूसरे और बताये

है स्पर्श आदिक, उनकी क्या जरूरत है ? याने जब शरीरकी रचना हुई तो स्पर्श आदिक तो होते ही, फिर नामकर्म होनेकी जरूरत क्यो है ? समाधान यह है कि स्पर्श नामकर्मके उदयसे प्रतिनियत स्पर्श होता है। जैसे हाथी हाथी जितने हैं उनमे उन जैसा ही स्पर्श होगा, ऐसा नियम नामकर्मसे बनता है। इसी प्रकार रस, गध और वर्णकी बात है। जीव जब मरता है अर्थात् एक देह छोडता है और दूसरा देह पानेके लिए जाता है तो रास्तेमे उस जीवका क्या आकार रहता है ? यह व्यवस्था आनुपूर्व्य नामकर्मसे होती है। जैसे कोई मनुष्य देह छोडकर गुजरे और तिर्यञ्चमे कही गायकी पर्यायमे पैदा होना है तो रास्तेमे उसका मनुष्य जैसा आकार रहेगा। तो इस तरह की व्यवस्था कर्मके उदयमे प्राकृतिक होती है। जीवोके शरीर उन उनकी योग्यताके माफिक वजनदार अथवा हल्के होते है। कही इतने हल्के नही होते कि रुईकी तरह उड जाय, न इतने वजनदार होते कि लोहेके गोलेकी तरह ठस रहे अर्थात् देहोमे जो उनके हिसाबसे फुर्तीलापन है, जैसा जिसमे होना चाहिये वह सब अगुरुलघु नामकर्मके उदयसे होता है।

उपघातादि अनेक प्रकृतियोके विपाक—शरीरके अग खुद के खुदको ही दुःख देते है। जैसे किसीका पेट बढ गया तो खुद दुःखदायी हो जाता है। जब शरीरमे वात, पित्त, कफकी विषमता हो गयी तो खुद दुःखी हो जाता। तो ऐसे अगका

बनना, जिससे खुदको क्लेश होता उसका कारण है उपघात-नामकर्म। अपने अग दूसरे जीवके घातका कारण बने, जैसे सिहके पंजा, नख, दाँत, ये दूसरेके घातके कारण बनते है, यह है परघात नामकर्मका फल। सूर्यके विमानमे जो पृथ्वीकायके जीव हैं उनके आतप नामकर्मका उदय है जिसके कारण पृथ्वी तलपर वस्तु गर्म हो जाती है। चन्द्रविमानके जीवोमे और जुगनू आदिक तिर्यञ्चोंमे उद्योत नामकर्मका उदय है, जिससे उनका शरीर ठडे प्रकाश वाला होता है। जीवोमे जो श्वासोच्छ्वास निकलती हैं एकेन्द्रिय तकके भी श्वासोच्छ्वास है, कीट मकौडेमे भी श्वासोच्छ्वास है तो इस श्वासोच्छ्वासको कौन पैदा करता है ? यह श्वासोच्छ्वास नामकर्मके उदयसे होती है। मनुष्य चलता है, कोई सुहावनी चालसे चलता है, कोई बेढगी चालसे चलता है, ये सब चाल उनके चालके भेद विहायोगतिनामकर्मके उदयसे होते हैं। कोई एक शरीरका एक ही जीव स्वामी है तो कही शरीर तो एक है और उसके स्वामी अनेक जीव हैं। तो यह व्यवस्था प्रत्येक और साधारण नामकर्मसे है। कोई दोइन्द्रिय आदिकमे जन्म लेता है, कोई स्थावर एकेन्द्रिय ही रहता है, यह त्रस और स्थावर नामकर्मके उदयसे व्यवस्था है। किसीका शरीर पूर्ण भी नही हो पाता है और मरणको प्राप्त हो जाता है और कोई बिना शरीर पूर्ण किये मरणको प्राप्त ही नही हो सकता, यह व्यवस्था पर्याप्ति

अपर्याप्ति नामकर्मके उदयसे है। किसीके शरीरके धातु उपधातु ठिकाने रहते है और किसीके चलित रहते है। कोई ५-७ उपवास करनेके बाद भी बडे मजबूत स्थिर शरीर वाला रहता है, कोई एक बार ही भोजन न मिलनेपर कुम्हला जाता है। यह सब स्थिर अस्थिर नामकर्मके उदयसे व्यवस्था है। किसीके शरीरके अवयव सुन्दर, किसीके बुरे है, यह सब व्यवस्था शुभ अशुभ नामकर्मसे है। किसीका स्वर बडा अच्छा है, किसीका बहुत बुरा है। गधेका स्वर बुरा है, कोयल आदिका या अनेक मनुष्योका स्वर अच्छा है तो यह व्यवस्था सुस्वर दुस्वर नामकर्मसे है। किसी मनुष्यको देखकर जीवोको स्वभावतः प्रीति उत्पन्न हो जाती है, कोई मनुष्य रूपमे भी सुन्दर है तो भी उससे प्रीति नही उत्पन्न होती। यह व्यवस्था दुर्भग नामकर्मसे है। किसीको कोई रुच जाता है वह उसे अपनासा मानने लगता है, किसीपर अपनायत नही होती है यह व्यवस्था आदेय उपादेय नामकर्मसे है। किसी मनुष्यका यश फैल रहा है, किसीका अपयश फैल रहा है। यह व्यवस्था यश अपयश फल नामकर्मके उदयसे है। कोई महापुरुष तीर्थंकर होता है, कोई पचकल्याणकधारी होता है तो यह व्यवस्था तीर्थंकर नामकर्मके उदयसे है। शरीरके अवयव जो जहाँ होना चाहिये वही होते है। जैसे हाथ कधेपर होते है, नाक मुखके ऊपर होती है तो वही हो और जिसके अङ्ग जिस प्रमाणको लिए हुए

होते हैं इसी प्रमाणको लिए हुए हो, यह व्यवस्था निर्माण नामकर्मके उदयसे है। जैसे मनुष्यकी नाक तो बन जाय हाथी की जैसी और हाथीकी नाक बन जाय मनुष्य जैसी तो इस प्रकारसे आफत आ जायगी। तो ये सब शरीरकी व्यवस्थायें कर्मोके उदयसे होती है। जिन कर्मोको नष्ट करके सिद्ध भगवान बनते है, शरीर ही नही रहता है इसलिये वे पूर्ण सुखी रहते है।

कर्मरहित सिद्धप्रभुका स्मरण व तत्सम निजस्वरूपका स्मरण—गोत्रकर्मके उदयसे ऊँच-नीच कुल मिलते हैं, यह भी भगवानसिद्धमे नही है, अतएव वे अब सर्वोच्च है, उनमे उच्च नीचका व्यवहार नही है। अतराय कर्म नष्ट हो गए तो उनके अनन्तशक्ति प्रकट हो गयी, इस प्रकार १४८ प्रकृतियोके निकट होनेसे सिद्ध भगवान हुए। जो सिद्ध है वही तो हम आप है अर्थात् सिद्ध होनेपर जो आत्मा है बस वहीका वही रह जाता है। तो जो आत्मा सिद्धकी अवस्थामे प्रकट हुआ वैसी ही जाति, वही आत्मस्वरूप हम आपमे है। उससे अधिक जो कुछ ये शरीर, रागद्वेषमोह, कर्मादिक लदे है ये सब अब भी मै नही हूं। पर अपने आत्मस्वरूपकी भूलसे मै उन्हे अपनाता हू, रागद्वेप करता हू, तो ये सारी मलिनताये लद गयी। जो सिद्धमे प्रकट हुआ है वह तो मेरी चीज है और जो सिद्धमे नही है और यहां है वह अब भी मेरी वस्तु नहीं है। इस प्रकार हम सिद्धस्वरूपकी उपासना करके अपना ध्यान

बनायें ।

अइसयमव्वाबाहं सोक्खमणंतं अणोवम परमं ।
इंदियविसयातीद अप्पत्तं अच्चव च ते पत्ता ।।६।।

प्रभुके आनन्दकी सातिशयता—सिद्ध प्रभुको कैसा सुख प्राप्त हुआ है उसका वर्णन इस गाथामे है । प्रभुका आनन्द अतिशय है, सर्वाधिक है, जो कि अन्यत्र नही पाया जाता । जीवने अनादिकालसे अपने उस आनन्दको नही पाया । प्रभुका सुख अतिशयवान है । कोई मनचले लोग सोचने अथवा कहने भी लगते है कि सिद्ध भगवानको क्या आनन्द है, न वहाँ घर है, न परिवार है, न कोई मित्र है, न कोई खाने-पीनेका साधन है, क्या सुख होता होगा सिद्धको ? तो उन लोगोने जो पचेन्द्रिय विषयजन्य सुख यहाँ पाया है उन्हीको ही सुख मान लिया है, उससे अलग है आत्माका आनन्दस्वरूप, इसकी उन्हे कुछ सुध भी नही है । यहाँ बतला रहे है कि प्रभुका सुख ही वास्तविक अतिशयवान है, सही आनन्द है । आत्मामे जैसा ज्ञानगुण है और ज्ञानगुणके विकासमे सारी जानकारी बन रही है । इसी प्रकार आत्मामे आनन्दगुण है और आनन्दगुणका परमविकास सिद्ध प्रभुमे है । प्रत्येक पदार्थ स्वय है, स्वतःसिद्ध है, इसी कारण अनादिनिधन है । तो जब आत्मा स्वतः है तो जैसा है वैसा है, परके बिना इसका गुजारा न हो सके इसकी गुजाइश कहाँ है ? बल्कि परपदार्थोके संसर्गमे यह जीव बर-

बाद ही हो रहा है। प्रभुका सुख अतिशययुक्त है।

प्रभुके आनन्दकी अनेक विशेषतायें—प्रभुका आनन्द अव्याबाध है जहाँ रंच भी बाधा नही है। संसारके सुखोमें सर्वत्र बाधा ही बाधा पायी जाती है, परन्तु मुक्तात्माके आनंद मे कही भी बाधा नही है। प्रभुका सुख अनन्त है, जिसका कभी नाश नही है। अनुपम है, जिससे किसीकी उपमा नही दी जा सकती। प्रभुका सुख समृद्धिशाली, परम है। पर-उत्कृष्ट, मा—लक्ष्मी जहाँ है उसे परम कहते है। प्रभुका आनंद इन्द्रिय-विषयोसे उत्पन्न नही होता। विषयोसे उत्पन्न होने वाला सुख सुख नही है, विपत्ति है, विडम्बना है, विरुद्ध है। इन्द्रियसुख मिलनेके बाद गायब हो जाता है, तृष्णा उत्पन्न हो जाती है। जैसे हम आप सभी लोग रोज खाते है, रोज भूखकी वेदना होती है, रोज खानेका सुख पाते है, पर कभी पूर्ति तो नही हो पाती है। प्रत्येक इन्द्रियविषयोकी यही बात है। विषयोको भोगकर यह जीव तृप्ति नही पाता है। भगवानका आनन्द इन्द्रियविषयोसे अतीत है, आनन्दस्वरूप है। जो स्वभावतः आनन्दका जो विकास है वह सिद्धप्रभुमे प्रकट हुआ है। उनका आनन्द आत्मासे उत्पन्न होता है, वह उनका आनन्द उपाधिजन्य नही है। अब वह है एक अकेला, सो धर्म आदिक द्रव्योकी तरह शुद्ध स्वरूपमे निरन्तर परिणमते रहते है। आनन्द वास्तविक वह कहलाता है जहाँ रंच भी आकुलता

नही है। अब सोचिये कि जहाँ शरीर नही रहा तो शरीरके साथ वे शरीरकी आवश्यकतायें सब समाप्त हो गई। शरीरकी वेदनायें सब समाप्त हो गयी। अब केवल ज्ञानमूर्ति आनन्द-घन चैतन्य विराज रहा है, वहाँ आकुलताका क्या काम है? तो आकुलताओंका सर्वथा अभाव होनेसे सिद्धप्रभुका आनन्द अनन्त आनन्द है, आत्मीय आनन्द है, जिस आनन्दसे कभी च्युत नही हो सकते, ऐसे अनुपम आनन्दको सिद्ध भगवानने प्राप्त किया है।

लोयग्गमत्थयत्था चरम सरीरेण ते हु किंचूणा।
गयसित्थमूसगब्भे जारिस आयार तारिसायारा ॥१०॥

सिद्धप्रभु लोकमे अग्रभागपर विराजमान है। इस लोक की जो रचना है वह पुरुषाकार है। जैसे ७ पुरुष एक ही कद के एकके पीछे एक, कमरपर हाथ रखकर और पैर पसारकर खडे हो जायें तो वह ठीक लोककी रचनाकी नकल बन जाती है। यह लोक सामने तो नीचे ७ राजू है, ऊपर घटकर बीचमे एक राजू कुछ ऊपर बढकर ५ राजू और सबसे ऊपर एक राजू रह जाता है। सो यह आकारमे उन फैले हुए पैर वाले पुरुषोके आकारका बनता है। और भीतरमे गहराईमे सर्वत्र ७-७ राजू है। इसलिए ७ पुरुष खडे किये जानेपर वह सही आकार बनता है। तो सिद्ध भगवान कहाँ विराज रहे है? इस लोकके अग्रभागपर। वे चरम शरीरसे थोडे ही न्यून है।

सीधा ही कह लो कि वे चरम शरीरके ही माप बराबर है। जिस शरीरसे उनकी मुक्ति हुई है उस शरीरमे आत्मा जितने आकारको लिए हुए था, मुक्त होनेपर, शरीरका विच्छेद होने पर वह उतनाका ही उतना आकार रह जाता है, क्योकि घटे तो घटे क्यो और बढ़े तो बढे क्यो ? घटनेका कारण कर्मका उदय है, और बढनेका कारण भी कर्मका उदय है, कर्म रहे नही तो जितना आकार रह गया उतने ही आकारमे रह जाते है सिद्धप्रभु। जैसे यहा चीटीके शरीरमे आत्मा कितना है ? कोई दो-तीन सूत बराबर प्रदेशमे फैला है। और वही चीटी मरकर हाथीके शरीरमे जाय तो वह आत्मा उस हाथीके शरीर के आकार बराबर फैल गया। तो इसका कारण शरीर नाम-कर्मका उदय है, पर जहाँ कोई कर्म नही रहे तो अब चरम-शरीरके आकारसे घटें तो कैसे घटे और बढे नो कैसे बढे ? जीवके उतने ही आकार प्रमाण रहता है। यो समझिये कि जैसे आभूषण बनानेका साँचा बनाया जाता है जिसमे मोम रखा जाता है तो उस साँचेमे मोम तो गल जाता है और उसका आकारमात्र रह जाता है, इसी प्रकार शरीरके बिछुडने पर अब जो आकार रह गया उस ही आकार वाले सिद्ध भग-वान है।

वैसे तो सिद्ध भगवान निराकार है। जैसा यहाँ पौद्गलिक पदार्थोंमे आकार देखा जाता है वह आकार उनके नही है।

आकाशकी तरह अमूर्त जीव है तो उसका आकार ही क्या ? तो इस दृष्टिसे वे सस्थानरहित है, लेकिन प्रत्येक द्रव्यके प्रदेश होते है तो किसी न किसी आकारमे रहते है, एक परमाणु है वह भी एकप्रदेशात्मक है, कालद्रव्य है वह भी प्रदेशाकार है, धर्मद्रव्य है वह भी लोकके आकार बराबर है। तो यह जीव अपने प्रदेशके आकार बराबर है। जब जितने प्रदेशोमे फैला हुआ है जीव तब उतने ही प्रदेशके आकार है। इस तरह सिद्ध भगवानका लक्षण यह आकारकी अपेक्षा कहा गया है। जब हम प्रभुका ध्यान करें तो जान तो सब जायें, किन्तु चैतन्यातिरिक्त अन्य सर्व प्रकारकी जानकारीमे अनुभवकारी स्पष्ट ध्यान नही बनता। प्रभुका ध्यान जब हम एक उत्कृष्ट रूपमे करना चाहे तो उनका एक चैतन्यस्वरूप ज्ञानस्वरूप सहज ज्योतिके रूपमे ही उनका ध्यान करें। तो इससे यह प्रभाव पडता है कि जानने वाला हमारा ज्ञान है और इस ज्ञानने ज्ञानके स्वरूपको ही जाना है। तो यहां ज्ञान ज्ञाता ज्ञेय एक हो जायें, ऐसी स्थिति बन सकती है, किन्तु सिद्धका आकार या अन्य बातोमे विचार करनेमे ज्ञान ज्ञाता ज्ञेय—एक बननेका अवसर नही है। निर्णय तो करना है सब, पर जब निर्विकल्प भावना हो तो आत्मस्वरूपका विचार करें तो चैतन्य ज्ञानमात्र प्रतिभासमात्र इस स्वरूपमे विचार करे। इससे वह स्थिति मिलती है जहा ज्ञान ज्ञाता ज्ञेय एकरूप हो जाते है।

तो यहा सिद्ध भगवानका एक आकारकी अपेक्षा निर्णय दिया गया है, क्योकि सब प्रकारसे जब हम वस्तुको जानते है तो प्रयोजनभूत बातका हम विशेषरूपसे वहा ध्यान कर पाते है।

जरमरणजम्मरहिया ते सिद्धा मम सुभत्तिजुत्तस्स।
देंतु वरणाणलाहं बुहयणपरिपत्थणं परमसुद्धं ॥११॥

निर्दोष सिद्ध प्रभुसे वरज्ञानलाभकी प्रार्थना—वे सिद्ध भगवान जन्म जरा मरण रहित है। एक शरीरको छोडकर नवीन शरीर धारण करे, यह बात सिद्धमे नही पायी जाती, वे जन्मसे अतीत हो गए। जन्मका कारण है कर्म। कर्म उनके रहे ही नही फिर जन्म कैसे हो ? जन्म तो एक रोग है। यहाँ तो लोग बच्चेके जन्मके समय खुशी मनाते है, पर वह बच्चा दु.खके मारे रोता है। जन्मके समय उस बच्चेको क्या दुःख होता होगा, उसे तो वही समझ सकता है। तो जिन जीवोको शरीर छूटनेपर फिर नवीन शरीर न धारण करना पड़े उनको ही तो मुक्त कहते है। उनका आत्मा अब विशुद्ध ज्योतिर्मय रह गया है, जन्मसे अतीत हो गया। जरा बुढापा यह भी विडम्बना है, यही मनुष्योको देख लो, बुढापा आनेपर कितना क्लेश मानते है ? यदि पहिलेसे ज्ञान न पैदा किया हो और बुढापा आये और साथ ही साथ योग्य सतान न हो, पूछने वाला न हो तो उस बूढेकी क्या दुर्दशा होती है, सो यह सभी दिखनेमे आ रहा है। प्रथम तो चाहे सम्पन्नता भी हो तो भी

बुढ़ापेमे बडा क्लेश है । खुद उठ बैठ नही सकते, सारी इद्रियाँ शिथिल हो गयी, खानेकी इच्छा है, पर खाया नही जाता, अन्न पचाया नही पचता, तृष्णा और भी अधिक बढ गयी । कितनी तरहके क्लेश इस बुढापाके शरीरमे है । सिद्धप्रभुके जब शरीर ही नही है तो बुढापा कहांसे आयगा ? सिद्धप्रभु मरणसे रहित है । मरण हो गया, एक बार निर्वाण हो गया, आयुका क्षय हो गया, पडित पडितमरण हो गया, अब दूसरा शरीर ही नही मिलेगा । तो सिद्ध भगवान जन्म जरा मरणसे रहित है, ऐसे सिद्धप्रभु मेरेको उत्तम ज्ञानका लाभ देवे । सिद्धप्रभु ज्ञानलाभ देने अपने स्थानको छोडकर यहा आयेंगे नही, न वे अपने स्वरूपका कुछ भी अश किसी दूसरेको दे सकते है, पर सिद्धप्रभुका स्मरण करनेके प्रतापसे मेरी उस ज्ञानकी ओर दृष्टि होती है और उससे ज्ञानलाभ होता है । तो इस पद्धतिसे स्वयका ज्ञानलाभ पानेमे आश्रय हुए सिद्धप्रभु, अतएव भक्तिमे उनसे प्रार्थना की है कि आपकी भक्तिसे युक्त यह मै सेवक हू, सो मेरेको ऐसे सिद्ध भगवान उत्कृष्ट ज्ञानका लाभ देवें । जो ज्ञानलाभ कैसा है कि बडे-बडे विद्वान जनोके द्वारा प्रार्थनीय है । जिस ज्ञानलाभकी बडे-बडे ऋषि सतोने प्रकृष्ट रूपसे चाह की है, जो परम शुद्ध है, जहा रागद्वेपादिक नही है, ऐसे ज्ञानका लाभ सिद्ध भगवानके प्रताप से मेरेमे प्रकट होवे ।

किच्चा काउस्सग्ग चउरट्ठयदोसविरहिय मुपग्गिुद्धं ।
अइयत्तिसपउत्तो जो बदइ लद्धु लहइ परमसुह ॥१२॥

सिद्धप्रभुके निर्दोष वन्दनसे परमसुखका लाभ—इस प्रकार कायोत्सर्ग करके जो अत्यन्त भक्तिसे युक्त होता हुआ सिद्ध भगवानकी वन्दना करता है वह शीघ्र ही परमसुख प्राप्त करता है। कायोत्सर्गकी वदनामे ३२ दोष हुआ करते है। तो यहाँ यह चाह की है कि उन ३२ दोषोसे रहित कायोत्सर्ग करूँ और ऐसा कायोत्सर्ग करके उस सिद्ध भगवानकी वदना की है। तो आचार्य कहते है कि अत्यन्त भक्तिसे युक्त होता हुआ जो सन्तोष पद्धतिसे कायोत्सर्ग वन्दना करता है वह शीघ्र ही उत्तम आनन्दको प्राप्त होता है। सिद्धप्रभुका वदन वास्तविक वदन क्या होता है कि जो सिद्धका स्वरूप है केवल ज्ञानपुञ्ज है, ज्ञानमात्र उसका निश्चन्न ज्ञान। श्रावक जन जैसे एक दीपक जलाते है तो जब वह दीपककी लौ चलायमान नही होती और एक बडे सुन्दर ढाँचेमे लौ जल रही है तो उसे देखकर यही तो भाव लाते है जैसा यह ज्योतिपुञ्ज है, प्रकाशमात्र इसी प्रकारका निश्चल ज्योतिपुञ्ज प्रतिभास मात्र यह आत्मतत्त्व है। जो-जो पदार्थ आत्मतत्त्वकी सुध्रि दिलाये वे वे पदार्थ सगुन माने गये। जैसे पानीसे भरा हुआ घडा कोई पुरुष या महिला लिये जा रही हो तो उसे देखकर लोग कहते है कि सगुन हुआ। उसमे क्या सगुन होता है ? अरे उसे देख-

कर अपने आत्मतत्त्वकी सुधि आती है। जैसे यह घडा जलसे पूर्ण भरा है, बीचमे कोई स्थान खाली नही है, इसी प्रकार आत्मा अपने प्रदेशोमे ज्ञानज्योति प्रकाशसे पूर्ण भरा हुआ है, इसके बीचमे कोई एक प्रदेश भी उससे खाली नही है। ज्ञान-घन यह आत्मा है। जैसे वह घडा इस समय जलघन है। घनरूपमे जल ही जल भरा है, इसी प्रकार यह आत्मा ज्ञान-घन है। घनके कहनेसे कही लोहे जैसा घन न समझना। घन उसे कहते है जिसमे किसी दूसरे पदार्थका प्रवेश नही है। घनका है यह लक्षण। घन मायने वजनदार नही, किन्तु जो है सो वही वही है। उसमे दूसरे पदार्थका प्रवेश नही है, क्योकि दूसरे पदार्थका अश यदि वहाँ मिले तो वह ठोस न कहलायेगा, तो घनका अर्थ जो ठोस प्रसिद्ध हुआ है। वह इसी बलपर हुआ है कि जहाँ दूसरी चीजका सम्बंध नही है उसे घन कहते है। तो ज्ञानघन आत्माकी सुधि होती है। जलपूरित घडा देखनेसे तो वह सगुन मान लिया। तो दीपशिखा देखकर ज्योतिर्मय आत्माकी सुधि होती है। तो दीप भी सगुन माना जाता है। ऐसा आत्मतत्त्व है, उसकी जो वदना करेगा, उसको जो अभेद ज्ञानभावमे लायगा वह शीघ्र ही निर्वाणको प्राप्त होता है, और निर्वाणमे ही परम आनन्द है। सो हम विशुद्ध आनन्दकी प्राप्तिके लिए सिद्धप्रभुका स्मरण करें।

—:*:—

लघु सिद्धभक्ति

ससारचक्रगमनागतिविप्रमुक्तान्,
नित्य जरामरणजन्मविकारहीनान् ।
देवेन्द्रदानवगणैरभिपूज्यमानान्,
सिद्धास्त्रिलोकमहितान् शरण प्रपद्ये ॥१॥

सिद्धशरणग्रहणका भाव—मै सिद्धकी शरणको प्राप्त होता हू । शरण लेने वाला कौन है और किसका शरण लिया जाता है ? इसमे मुख्य दो ही बातें है । जिनको कोई बाधा हो वे तो शरण लेते है और जिनके कोई बाधा नही है उनकी शरण ली जाती है । कोई बाधा वालेकी ही शरणमे जाय तो उसे क्या शरण मिलेगा ? दु खी पुरुप दु खीकी शरणमे जाय तो उसे क्या शरण मिलेगा ? दु.खी पुरुष दुःखीकी शरणमे जाय तो दु.ख तो न मिटेगा । मोही पुरुष मोहीकी शरणमे जाय तो मोह तो न मिटेगा । तो शरणमे जाने वाले है हम लोग जो कि इस संसारचक्रमे आवागमन कर रहे है, और शरण ले रहे है हम सिद्ध भगवानकी । वे संसारचक्रमे आने-जानेसे रहित है । जब हम उनके स्वरूपका स्मरण करते है तो शरण गह लेते है । शरण तो हम अपना ही पाते है, पर उनके स्वरूपके स्मरणसे हमे अपने इस स्वभावका ध्यान होता है कि अरे आत्मा तो एक ज्ञानमात्र है, उसमे कहाँ गमनागमन

है, कहाँ संसारमे आना-जाना है, वह तो केवल ज्ञातादृष्टा स्वभावी है। प्रभु इस आवागमनसे रहित है। जब दर्शन करनेके बाद वेदीकी तीन परिक्रमायें लगाते है तो तीन परिक्रमाओमे भी यही भाव है कि गमनागमन किया, अब मै उस गमनागमनसे उल्टे चलकर गमनामगनसे रहित हो जाऊँ। मेरा आवागमन न रहे, ऐसा भाव करके प्रदक्षिणा देते है।

सिद्धप्रभुकी जन्मजरामरणविकारहीनता—सिद्ध भगवान जन्म जरा मरणके विकारोसे रहित है—ये तीनो रोग है—जन्म लेना, बुढापा होना और मरण होना। इन तीन विकारो से रहित है प्रभु, इसलिये इन तीन विकारोसे फसा हुआ मै उनकी शरणको प्राप्त होता हू। और जिनकी शरण गही जाती है उनमे कुछ व्यावहारिक बडप्पन भी रहा करता है। तो ये सिद्ध भगवान बडे-बडे देवेन्द्र व्यन्तरेन्द्रादिक द्वारा पूज्य है, और देवेन्द्र ही क्या, बडे-बडे ऋषि महर्षि भी उन सिद्ध भगवानका पूजन करते है, ध्यान करते है। तो जिसका कुछ प्रभाव होता है उसीकी लोग शरण गहा करते है। तो यहाँ यह कहा है कि जो सिद्ध भगवान बडे-बडे ऋषि महर्षि जनो द्वारा पूज्य है ऐसे सिद्ध भगवानकी शरणको मै प्राप्त होता हू। वे सिद्ध भगवान तीन लोकमे पूज्य है। तीन लोकके जोवोके वे एक अधिपति है, तीनो लोकके जीव जिनकी स्तुति करते है। अब तीनो लोकके जीव है अनन्तानन्त, तो वे सब

कहां जातते है कि यह अरहत है, यह सिद्ध है । तो समझना चाहिये कि ऊर्ध्व लोकके इन्द्रने जब प्रभुकी शरण गही तो ऊर्ध्व लोकके सभी जीवोने शरण गही, यह अर्थ हो जाता है । जब गाँवका कोई मुख्य आदमी किसीका आदर करता है तो समझो कि गाँवके सभी आदमियोने उसका आदर किया । इसी प्रकार जब मध्यलोकके इन्द्र, राजा, सिह जब सिद्धप्रभुको नमस्कार करते है तो समझो कि मध्यलोकके सभी जीवोने सिद्धप्रभुको नमस्कार किया । इसी प्रकार अधोलोकके इन्द्रनें अगर सिद्धप्रभुको नमस्कार किया तो समझो कि अधोलोकके सभी जीवोने सिद्धप्रभुको नमस्कार किया ।

परमार्थ शरण ग्रहण करनेका उत्साह—तीनो लोक मे शरण गहनेकी बात केवल दो जगह टिकती है, एक तो परमार्थसे अपने आपमे अपने स्वरूपके शरण गहनेकी बात है, दूसरे—भगवान सिद्धकी शरण गहना । इन्द्रियका व्यापार बन्द करके स्वय जो जान रहा है उसकी ओर दृष्टि रखकर यही तो हू मै ज्ञानमात्र, उसकी ओर भीतर अपने ज्ञानोपयोगको ले जाकर साक्षात् ज्ञानके द्वारा ऐसा समझमे आने लगता है कि यही तो हू मै, इसीका शरण सच्चा शरण है, मै इसीके निकट रहू, अब मुझे कही अन्यत्र अपने उपयोगको नही ले जाना है, कही बाहरमे मेरा कोई शरण नही है, यह मै ही अपने आपका शरण हू, ऐसा सोचकर यही लगूं । मै तो अपने आपके अमूर्त ज्ञानस्वरूपको निरखूं बस यही सबसे बडा काम है ।

बाहरी सर्व कामोकी उपेक्षा करके अपने आपके स्वरूपमे ही रमण करनेका यत्न करे, यही सर्वप्रथम करने लायक काम है। अपने आपमे ऐसी हिम्मत आनी चाहिये कि बाहरमे कुछ भी होता हो होने दो, कुछ भी घटना घटती हो घटने दो, उससे मेरी कुछ भी बाधा नही है, उससे मेरा कुछ भी बिगाड नही है। समस्त घटनाओकी उपेक्षा करें और सबसे मुख्य बात अपने आत्माकी शरण गहनेकी है। सो अपने आत्माकी शरणमे जावें, यही एक मुख्य काम है। और इतना अभ्यास बनायें इसका कि हमारे अपने जीवनमे इतना साहस बना रहे कि कुछ भी गडबड बात हो जाय, धन-वैभव कम हो जाय, नष्ट हो जाय तो समझें कि कुछ भी बात नही है, कुछ नही हुआ, यह तो साधारण बात है, ये तो जगतके काम ही हैं, उनकी उपेक्षा करनेकी बुद्धि आये और अपने आपके आत्माकी शरणमे रहनेकी उत्सुकता बढे, ऐसा अपने भीतरमे यत्न हो।

परमार्थतः व व्यवहारतः शरण—जैसा मै अपने स्वभाव को सोच रहा हू ऐसा स्वभाव जिनके प्रकट हो गया वे है सिद्ध भगवान, अरहत भगवान। अरहत भगवानके तो अभी शरीर का और कुछ अघातिया कर्मोंका सम्बध है और सिद्ध भगवान के न तो शरीरका सम्बध है, न कर्मोंका। ऊपरी बातें भी सब हट गयी। ऐसा जो शुद्ध स्वरूप है उसका स्मरण करें, उसकी शरणमे जायें। दो जगह शरण मानना चाहिये। तीसरा स्थान

कोई शरण नही। व्यवहारसे शरण है तो भगवानके गुणोका स्मरण, ध्यान शरण है। परमार्थसे शरण है तो ज्ञानस्वरूप अपने आत्माकी अनुभूति बनी रहना, उसे ही अपने अनुभवमें लेना, बस यही शरण है, और बाकी दुनियामे कोई शरण नही है। यह जीव आज यहाँ है, इस भवको छोडकर न जाने कब किस भवमे चला जायगा, फिर कौन इस जीवका शरण रहेगा ? जिन भवोको छोडकर यहाँ आये है उन भवोका भी कोई कुटुम्बी आकर यहाँ शरण बना है क्या ? कोई भी तो शरण नही रहा। यहाँ भी कुटुम्बी जन परस्परमे अच्छी तरह बोलते है, एक दूसरेको सुख-सुविधा भी देते है, पर उसमे मुख्य बात यह है कि कोई किसीके लिए शरण नही बन रहा, सभी अपने-अपने स्वार्थमे, अपनी कषायमे अपना-अपना काम करते है। यदि यहाँ कोई पूछता भी है हमे तो हम कुछ अच्छे हैं अर्थात् हमने कुछ धर्म किया था और इस समय भी हम कुछ धर्मकी बुद्धि रखते है, हमारा आचरण अच्छा है, व्यवहार भी हमारा अच्छा है। इस कारणसे लोग हमे पूछते है, हमारा ध्यान रखते है, तो इसमे भी हमारा अच्छापन काम कर रहा है। जब हमारा ही अच्छापन मिट जायगा तो हमे कोई भी न पूछेगा। तो असलमे कौन हमारा शरण रहा ? हमारी ही करतूत, हमारा ही धर्म, हमारा ही कर्तव्य हमारा शरण रहा, इसके अतिरिक्त दुनियामे हमारा और कोई शरण

नही है ।

असरीरा जीवघणा उवजुत्ता दसणे य णाणे य ।
सायारमणायारा लक्खणमेय तु सिद्धाण ॥२॥

सिद्धप्रभुकी अशरीरताका महत्त्व—जिन सिद्ध भगवान की हम शरण गह रहे है वे सिद्धप्रभु कैसे हैं ? शरीररहित है । कभी अपने आप भी एक स्थिर आसनमे बैठकर इस तरह का उपयोग भीतरमे लगायें कि शरीरकी सुधि न रहे कि यहाँ शरीर भी है । केवल एक ज्ञानस्वरूपकी ही सुधि रखें, ज्ञान, जानन प्रतिभास, उजेला, प्रकाशमात्र ऐसा अपने आपमे ध्यान रखे, तब अपनेको भी ऐसा अनुभव हो जायगा कि बस मै तो यही हू । और फिर सोचेगे बाहरी बुद्धि लगाकर कि मै शरीर-रहित हू । शरीररहित हू—यह तो एक बाहरी बुद्धिमे कहा जाता है, और जब अन्त.बुद्धि रहती है तो शरीररहित हू यह अनुभव नही रहता, किन्तु मै यह हू, यही मै हू, इतना अनुभव रहता है । जो यह ज्ञान है, जो यह प्रतिभास है बस यही मैं हू, और इसी केवलका अभ्यास कर करके यही जीव जब बडी ध्यानसाधनामे आता है तो यही परमात्मा बन जाता है । तो वे सिद्धभगवान शरीररहित है । जब शरीररहित है तो सारी आफतोसे रहित हो गये । वे स्वय शुद्ध है । क्योकि भूख-प्यास, सर्दी गर्मी, नाते-रिश्ते, इज्जत पोजीशन, सम्मान-अपमान आदिककी समस्त विडम्बनायें इस शरीरके कारण है । सिद्ध-

प्रभु शरीररहित हैं, इस रूपमे सोचे तो ऐसा ध्यानमे लाते ही यह तुरन्त स्पष्ट निर्णयमे रहता है कि वे प्रभु सर्वबाधावोसे रहित है। सिद्ध भगवान शरीररहित है, इसका मतलब यही है कि वे प्रभु समस्त सकटोसे रहित है। जितने भी सकट हम आपपर आते है वे शरीरके ही कारण आते है। तो यह सिद्ध भगवान शरीररहित है। केवल वह ज्ञान ज्ञान ही है, ज्ञानघन हैं, चैतन्यघन है। वहाँ बस यह चैतन्यस्वरूपमात्र रह गया है, दूसरी चीजका वहाँ प्रवेश नही है। तो शरीररहितके रूप मे सिद्धभगवानका ध्यान करना चाहिये और अपनेको भी ऐसा ही विचारना चाहिये कि यह शरीर तो कोई मुर्दा लाश की ही तरह है, कभी जला दिया जायगा। मै तो इससे निराला हू, जो शरीर छोडकर जायगा। तो उस ही ज्ञानरूप मे अपनेको भाना चाहिये।

वस्तुतः स्वयंकी शरणरूपता—लोकमे शरणभूत स्थान अथवा उपयोगके विषयभूत दो ही है—एक सिद्ध भगवान, दूसरा अपना आत्मदेव। व्यवहारसे तो सिद्ध भगवान शरण हैं और परमार्थसे अपना अन्तस्तत्त्व शरण है। जब हम सिद्धप्रभु के स्वरूपपर अपनी दृष्टि लगाते है, उन्हे ज्ञानमे लेते है तो उस समय कोई सकट अनुभवमे नही रहता। उस स्मरणके साथ अपने आत्माकी प्रतीति भी लगी हुई है। मै उस ही स्व-भावका हू। अपने आपमे समाधान हुये बिना शान्ति नही

मिला करती। चाहे कोई कितना ही चाहे, चाहे किसी भी विषयका हम कितना ही ज्ञान करे, पर अपने आपके ज्ञानमे अपने आपका अनुभव आये बिना, अपनी ही बात अपनेमे समझे बिना समाधान नही हो सकता। जब लौकिक बातोमे ही यह देखा जाता है कि किसी भी समस्यापर जो हमपर गुजरी है, अनेक रिश्तेदार, अनेक लोग समझाते है और वे समझाकर हैरान होकर कह भी बैठते है---क्या बतायें इनकी समझमे जरा भी नही आता है। कोई इष्टवियोग हो गया, बडा भारी धन-वैभवका नुक्सान हो गया, ऐसी स्थितिमे लोग समझाते-समझाते हैरान हो जाते, पर वह शान्त नही हो पाता। अरे किन्ही दूसरोके समझानेपर उसका दु ख दूर हो सकेगा क्या, उसे शान्ति प्राप्त हो सकेगी क्या ? खुदके आत्मा मे खुदकी दृष्टि आये बिना, खुदकी समस्यावोका खुद समाधान पाये बिना कोई समझ नही सकता, न कोई शान्त हो सकता। भले ही कोई समझाने वाले कितना ही समझाये, पर समझना तो खुदको ही पडता है। तो जब हम सिद्धभगवानके स्वरूप का स्मरण करते है, उनके गुणोका ध्यान करते है और वहाँ शान्ति मिलती है तो यह न समझिये कि सिद्धभगवानके गुणोका ख्याल हुआ, इसलिए सन्तोष मिला, बल्कि ख्याल करते समय खुदका भी कुछ कुछ स्पर्श होता रहा, इसलिए सन्तोष मिला। तो परमार्थसे कौन अपना शरण रहा ? खुद

के लिए खुद ही शरण है ।

वास्तविकी विपदा--अहो, यह जीवपर कितनी बडी विपदा है कि एक जन्म छूटा, दूसरा जन्म मिला, और उसकी भी कोई गारटी नही, राजा भी मरकर कही कीडा बन जाय। आज मनुष्यभवमे उसकी बडी पोजीशन भी है, बडी इज्जत है, बडा चला है और मरनेके बाद कीडा-मकौडा बन जाय, पेड-पौधा बन जाय तो अब क्या रहा ? आत्मा तो वही है । तो अपने ऊपर यह कितनी बडी विपदा है ? इसपर तो कुछ ध्यान नही देते और छोटी-छोटी बातोको विपदा मानकर व्याकुल रहते है । कहते है कि हमपर बडी अनहोनी हुई । अरे कितनी अनहोनी हुई ? यहाँ तक कि प्राण भी चले जाये तो भी कोई अनहोनी नही हुई । वह तो सासारिक परिणमन है, पौद्गलिक परिणमन है । जिस विधिसे जिस ढगसे जो होना है वह हो रहा है । इसमे अनहोनी क्या ? अनहोनी तो यह है कि अपना चैतन्यस्वभाव है निश्चल ज्ञानमात्र, निस्तरग और उसकी ये नाना दशाये हो रही है, भ्रम करनेके कारण इस चैतन्यस्वभावपर ये अनहोनी गुजर रही है, इसपर कुछ भी ध्यान नही देते । अरे इस जीवनमे जो सकट आ रहे है वे कुछ भी संकट नही है, कोई अनहोनी नही है ।

अज्ञानमे स्वयंकी मलिनता दूर करनेकी बेहोशी--जैसे दूसरे जीवोपर जिन्हे हम व्यवहारमे अपना सम्बधी नही

मानते, उनपर कुछ भी वात गुजरती है तो उसके कैसा ज्ञाता-द्रष्टा रहते है, वहाँ कोई राग स्नेहकी लपेट नही रखते, देखते रहते हैं। ज्ञाताद्रष्टा वहाँ भी वही है पर एक समझो हँसीमे कह रहे। दूसरेकी विपदा देखकर हम कैसा बडा ज्ञान बना रहे है और खुदपर कोई सकट आ जाय तो वहाँपर चिल्ला उठते है कि हमपर तो अनहोनी हो गयी, अपने आत्मस्वरूपकी ओर कुछ भी ध्यान नही देते कि उसका स्वरूप तो है आनन्द-मयी, पर उसपर कितनी-कितनी प्रकारकी गडबडियाँ हो रही है, उसपर कैसी अनहोनी हो रही है ? इसका कुछ भी ध्यान नही है। जब हम एक स्वच्छ सिद्धप्रभुके गुणोका ध्यान करते है, उनका उपयोगसे दर्शन करते है तो हमे हमारी मलिनतावो का बोध होता है। जैसे चेहरेपर कही काजल लगा हो तो झट दर्पण उठाकर देखते है और चेहरेपर लगी हुई कालिमाको किसी कपडेसे साफ कर डालते है। उस समय कही ऐसा तो नही करते कि दर्पणमे दिखने वाली कालिमाको साफ करनेके लिए कपडेसे दर्पणको पोछे ? तो जैसे दर्पण देखकर हम आप अपने चेहरेकी कालिमा पोछते है, यो ही समझिये कि सिद्ध भगवान तो एक आईना है, हम उनमे देखते तो वहा है, पर उस माध्यमसे हम अपनी मलिनताके भी दर्शन कर लेते है। स्वरूप तो मेरा इस तरहका है और यह मुझमे कालिमा लगी है तो अब हम सिद्धभगवानको रगडें कालिमा छुटानेके लिए

या अपने खुदके आत्माको रगडें ? बताओ। लोग भगवानका प्रक्षालन करते है और पढते है—तुम तो सहज पवित्र यही निश्चय भयो। तुम पवित्रता हेत नही मज्जन ठयो ॥ यो पढ़ते जाते है और तेजीसे भगवानको रगडते जाते है। अपनी ओर दृष्टि नही देते। भगवानको खूब रगडते जाते है और हर्षपूर्वक खूब तेजीसे पढते जाते है। तो सिद्धप्रभुका गुणस्मरण हमे बता देता है कि स्वरूप तो मेरा यह है और वर्तमान प्रसग यो चल रहा है। तो हम उस वर्तमान कालिमाको दूर करनेका यत्न करें।

सिद्धप्रभुकी जीवघनता—ये सिद्धप्रभु कैसे है ? ये जीव घन है, जीवत्वसे ठोस है। जीवत्वका अर्थ है—शुद्ध चैतन्यप्राणेन जीवति इति जीवः तस्य भावः जीवत्व। शुद्ध चैतन्यप्राणसे जीवे इसका नाम है जीव और उस जीवके भावका नाम है जीवत्व। वह जीवत्व जहां ठोस पडा हुआ है। ठोस पडनेके मायने यह है घनरूपसे है, जिसके बीचमे अन्य कुछ न रहे, केवल वही वही रहे, उसका नाम है ठोसपना। जैसे लकडी ठोस है, सारभूत है। और देखा होगा—खूब ठोस, सारभूत, घन, जिसको आग भी बडी देरसे पकड पाती है। लकडीमे जो ऊपरका बक्कल (छाल) रहता है वह भी आगमे जलानेपर कुछ देर नही लगती है और जो फसफस मुलायम लकडी होती है उसको बडी जल्दी आग पकड लेती है। इसका कारण क्या है

कि जो फसफस लकडी होती है उसमे बीच-बीचमे अतर रहता है, केवल लकडी ही लकडी ठोसरूपसे नही रहती है, और जो सारभूत लकडी होती है उसमे बीचमे कुछ भी अन्तर नही रहता। घनरूपसे वही लकडी रहती है जिस लडकीके बीचमे कोई प्रदेश ऐसा नही रहता जहाँ कि वह लकडी निरन्तर न हो। उसका इतना ठोस होता है कि उसके अन्दर हवा भी प्रवेश नही कर सकती। जैसे एक घडेमे पानी भरा है तो वह पानी उस घडेमे ठोसरूपसे भरा रहता है, उसके बीचमे कोई भी प्रदेश ऐसा नही बचता जहा पानी ठसाठस रूपसे भरा न रहता हो। किसी गागरमे चने भर दिये गए तो वे चने ठोस-रूपसे नही भरे जा सकते, उनके बीचमे छिद्र रहते है, गुजाइश रहती है। उसमे पानी डालेंगे तो पानी भी समा जायगा। तो ठोस उसे कहा जाता है जहा वही-वही चीज निरन्तर हो। तो सिद्ध भगवानमे क्या है ? वह चैतन्यप्रतिभास, शुद्ध जीवत्व, वही निरन्तर है। भावदृष्टिसे अन्तर बिना है, कालदृष्टिसे अतर बिना है, क्षेत्रदृष्टिसे अन्तर बिना है। जब तीनोको मिलाकर एक पिण्डदृष्टिसे भी अन्तर बिना है, वह सर्वत्र एक चैतन्यरस विराज रहा है। अनुभवमे भी चैतन्यरसका पान चल रहा है और वृत्तिमे भी चैतन्यका ही बर्तन हो रहा है, ऐसा शुद्ध जीवघनसिद्ध है, ठोस जीवत्व है। हम सब भी घन है, पर इसमे रागद्वेष विभावमोह इन सब हवाओकी गुंजाइश बीचमे

भरी रहती है, हमारा ठोसपन नदारत हो गया है। तो उनका स्मरण करके अपनी ओर दृष्टि देना है कि हे प्रभो ! मै भी आपकी ही तरह चैतन्यरससे भरा हुआ हू, जहाँ न कोई क्लेश है, न अवगुण है, न अन्य कोई परचीज है। ऐसा एक स्वभावी मैं शुद्ध चैतन्यमात्र हू। ऐसी दृष्टि रखकर समानता लाकर सिद्ध भगवानकी भक्ति हो तो वह यथार्थतः सिद्धभक्ति है।

स्वयकी सिद्धप्रभुसे समानताका भाव—सिद्ध भगवानके लक्षण बताये जा रहे है। साथ ही यह भी ध्यानमे रखना है कि मै अपने लक्षणोको जान रहा हू। मै वह हूँ जो है भगवान, जो मै हू वह है भगवान। एक स्वरूपदृष्टिकी बात कही जा रही है। जैसे बिरादरीकी पगतमे चाहे कोई सेठ भोजन कर रहा हो और चाहे पासमे ही बैठा कोई गरीब भोजन कर रहा हो, बिरादरीकी दृष्टिसे सब एक है। वहाँ यदि कोई भेद की बात करता है—सेठको ज्यादा लड्डूकी पूछे और गरीबको कम पूछे तो सब लोगोकी दृष्टिमे वह परोसने वाला गिर जाता है और परोसने वालेको भी शर्मिन्दा होना पडता है और उसे अपने दिलको भी सताना पडता है। वह प्रसग तो एक बिरादरीका है। वहाँ अमीर गरीब सब एक समान है, पर भोजन करके उठे, सब अपने घर गये, सभी लोग अपने-अपने कारोबार मे लग गये। तो अब वहाँ समानताकी बात नही रही। सेठ

जैसा काम करेगा, गरीव जैसा काम करेगा। तो ऐसे ही हम और सिद्धभगवान कारोबारकी दृष्टिसे तो बरावरी नही रखते। वे अपने अनुपम ज्ञानानन्दका अनुभवन कर रहे है और यहा अपने पाये हुए थोडेसे ज्ञानानदमे अपना समय विता रहे है, लेकिन जब स्वरूपदृष्टिका प्रसग आया, जब उस द्रव्यके सत्त्वके देखनेकी बात आयी तो वहा प्रभु और हम सब जीव एक समान है। वहा जो भेद डालते है मोहमे वे कभी अपनी उन्नति नही कर सकते।

सिद्धप्रभुकी दर्शनज्ञानोपयुक्तता——सिद्धप्रभु दर्शन और ज्ञानमे उपयुक्त है अर्थात् ज्ञानमे उपयोग है, दर्शनमे उपयोग है, ज्ञाताद्रष्टा है, जानन देखनहार हैं। अरे तो यही तो अपना स्वरूप है। जब हम इस स्वरूपसे अधिक कुछ करते है, जैसे रागद्वेष करना, परवस्तुको अपना मानना, तो यो समझो यह हम भगवानसे बढकर चल रहे है। तो जैसे लोग समझाते है अपने बच्चेको कि देखो बेटा! जो अपनी कुलकी रीति है उसके अनुसार चलो, उससे बढकर कुछ मत दिखावो। बढकर दिखावोगे तो कुछ ही दिन बाद तुम हर तरहसे लुट जावोगे। अपनी कुल रीतिके अनुसार चलो। तो इसी तरह हम आपको भी यह उपदेश है कि देखो तुम——उस चैतन्य कुलके हो, सिद्ध भगवानके वशके हो। जैसी उनकी रीति है उसके अनुसार तुम यहा चलनेका प्रयास करो। उनसे बढ़कर मत चलो। बढ़कर

चलनेके मायने खोटे पथमे चलना। प्रभु नही जानते है कि यह अमुक प्रसादका, अमुक लालका घर है और हम आप जानते हैं, तो यह प्रभुसे बढकर चलना हुआ कि नही ? आप समझते है कि यह मेरा घर है और भगवान नही जानते कि यह इनका घर है। क्या भगवान जानते होगे जैसा हम आप यहाँ विपरीत जाना करते हैं ? तो देखो जानकारीमे भगवानसे भी अधिक बढ करके हम आप बन रहे है। बढकर नही बन सकते, परन्तु उसका अर्थ यह लेना कि हम आप कुबुद्धिमें बढकर चल रहे है। भगवान अपने ही प्रदेशमे, अपने ही घर मे सीधे-सादे बहुत शान्तिसे विश्रामसे स्थित होकर अनन्त आनन्दामृतका पान कर रहे है, और यहाके ये ससारी जीव अपने घरको तो जानते ही नही। यहासे हटकर परवस्तुवोकी शरण लेकर आकुलताओका विष पीते जा रहे है। यह प्रभुसे बढकर चलनेकी बात है कुबुद्धिमे।

स्वभावदृष्टिसौख—प्रभुके लक्षणको जानकर हम अपने आपमे भी उस प्रकारकी दृष्टि बनायें कि यह मेरा ही लक्षण है, पर हो क्या गया ? किसी माका लाल यदि कुछ व्यसन मे पड गया, खोटी चालमे पड गया, अब जब लोग उस मासे शिकायत करते हैं—देखो तुम्हारा लडका कैसा खोटा हो गया ? तो माँ कहती है कि मेरा लडका तो भला है, खोटा

नही है, यह खोट तो उस लडकेकी पड गयी है, जिसके सगमे यह रहा करता है। तो मा की अपने बच्चेके उस गुणपर दृष्टि है, और जो अवगुण आये है वे एक उपाधिसे आये है, सगति से आये है। अरे तो उस ही की तरह हम भी तो अपनी दृष्टि बनायें। मै खराब नही हू, मै तो प्रभुके ही वशका हू और मै भगवानका सच्चा पुत्र हू। पुत्र उसे कहते है जो वंशको पवित्र करे, कुलको पवित्र करे उसे पुत्र कहते है। मेरा कुल वही चेतना ज्ञान दर्शन। उसको पवित्र करनेका अर्थ है कि शुद्ध तत्त्वका ज्ञान करके जिस द्रव्यका जो स्वरूप है उस स्वरूपका अवगम करके उपेक्षाभाव करना और अपने आपके उस शुद्ध स्वरूपमे स्थित होकर अपनेको पावन बनाना, यही मेरा काम है, और ऐसा मै हू। मेरे स्वभावमे यह बात है, लेकिन जो खोट हो गयी है वह उपाधि की है। मेरे स्वभावमे खोट नही है।

सिद्धसम स्वरूपकी निःसंदिग्धता—भैया! सभी जानते है कि पानीका स्वभाव गर्म है या ठडा? ठडा है। किसीको यह भ्रम नही है कि पानीके स्वभावमे गर्मी है। तभी तो तेज गर्म हुए पानीको भी ठडा करनेकी जरूरत होनेपर तुरन्त उसे किसी बडे बर्तनमे फैलाते है और पखेसे हवा करने लगते है। किसीको यह भ्रम हो जाय कि पानीका तो स्वभाव ही गर्म है तो वह उसे ठडा करनेका यत्न कर सकता है क्या? क्यो

फैलायेगा पानी, क्यो पंखा चलायेगा उसपर ? तो इसी प्रकार यदि अपने आपके बारेमे यह भ्रम हो जाय कि रागद्वेष करना तो मेरा स्वभाव ही है, ऐसा मोहमे रहना यह तो मेरा काम ही है। जब तक यह भ्रम है तब तक उसमे यह बुद्धि ही नही जग सकती कि मै रागद्वेष मोहसे हटकर अपने शुद्ध ज्ञानस्वरूप मे उपयुक्त होऊँ। जो-जो बातें प्रभुमे प्रकट है वे वे सब बाते मेरे स्वभावमे है। बस एक ही इसका गुर समझ लीजिये। जैसे गणितज्ञ लोग हिसाबका गुर बनाया करते है। जैसे जो-जो बातें उस ठंडे निर्मल जलमे व्यक्त है वे वे सब बाते संतप्त जलमे स्वभावरूपसे है, इसमे कोई सदेह नही। इसी प्रकार अपने आपके स्वरूपका भी सिद्ध भगवानके स्वरूपका स्मरण करके भान करे और उसमे कोई सदेहकी बात न रखे।

सिद्धप्रभुकी साकारनिराकाररूपता—सिद्ध भगवान का लक्षण आकारदृष्टिसे कह रहे है कि वह साकार भी है और वह निराकार भी है। जैसे सिद्धकी मूर्ति मदिरमे देखते है, एक पीतलके पत्रमे पुरुषाकार कुछ खुदी रहती है ना, उस सिद्धकी मूर्तिको ही देखकर आप बतलावो कि वहाँ आकार है अथवा वह निराकार है ? बुद्धि दोनो बातोको पकड लेगी। है तो निराकार, जिस तरहसे यह अरहतकी मूर्ति है। पद्मासनसे विराजी यह पाषाण धातुकी जो मूर्ति है उस तरहका आकार यह नही है इसलिए तो निराकार है, मगर सर्वथा निराकार

तो नही, अन्यथा ये मब लोग कैसे अगुली उठाकर बता सकेंगे कि यह सिद्धकी मूर्ति है, यह अरहतकी मूर्ति है, यह अमुक तीर्थंकरकी मूर्ति है। आकार है वहा। इसी प्रकार मिद्धका जो आत्मा है वह आत्मा निराकार है। वहा कोई पिण्ड नही है, कुछ भी चीज वहा नही पायी जाती। जैसे कि शरीर अवस्था मे कुछ आकार प्रकटमे मिलता है। केवल आत्मा ही आत्मा रह गया, इस दृष्टिसे वह निराकार है, लेकिन जिन प्रदेशोमे ज्ञानघन विराजमान है, जहा ज्ञान और आनन्दका प्रचुर वास है, ऐसे ज्ञानानन्दघन स्वरूपका अनुभवन कितनी जगहमे चल रहा है उनके ? कितनेमे उनके उस ,स्वरूपका परिणमन हो रहा है। यह तो बात अब भी है ना, बस उस दृष्टिसे वह साकार है। जैसे यहा कुछ तकलीफ हो जाय शरीरमे अथवा बाहरके कोई पदार्थ प्रतिकूल हो जाये, अनुकूल न रहे तो मन से वेदना होती है, तो बतलावो कितने स्थानमे वेदना हुई ? जितना आत्मा फैला है उतनेमे अनुभवन होता है। तो विशुद्ध ज्ञानानन्दस्वरूपका वहां सिद्धप्रभुके जितने स्थानमे अनुभवन होता है उस दृष्टिसे साकार है। ये सिद्धभगवानके लक्षण है, उन्हे जानकर हम अपने आपमे भी उन लक्षणोको देखें और उत्साह बनाये कि इन सब जालोको फेककर मुझे तो वही स्वरूप प्राप्त करना है।

मूलोत्तरपयडीरण बंधोदयसत्तकम्मउम्मुक्का ।
मगलभूदा सिद्धा अट्ठगुणातीदससारा ॥३॥

सिद्धप्रभुकी सर्वसारता—अवस्थाकी दृष्टिसे सब जीवोमें लग रहा होगा ऐसा कि मनुष्य सबमे अच्छे होते है । और आगे बढे तो उन मनुष्योमे जो निराकुल हो, ज्ञानी हो, विरक्त हो, जिन्होने अपना सच्चा दर्शन पाया हो, जो अपने आप अपनी ही कलासे अपने आपमे तृप्त और आनन्दित रहते हो वे सार है । फिर और आगे बढो—उन योगियोमे भी जो योगीन्द्र है, स्नातक है, ऐसे सकलपरमात्मा वे सार है, और फिर आखिरी चरम पवित्र सर्वत. शुद्ध अवस्थाको देखकर कहो कि सर्व जीवोमे सारभूत जीव सर्वश्रेष्ठ सिद्ध भगवान है । अभी किन्ही बच्चोसे ही पूछे कि तुम्हे अच्छा बनना है कि बुरा ? तो हर एक बच्चा यही कहेगा कि हमे तो अच्छा ही बनना है । तुम्हे थोडा अच्छा बनना है कि बहुत अच्छा ? तो इसपर भी प्रत्येक बच्चा यही बोलेगा कि हमे तो बहुत अच्छा बनना है । तो अब यह देखो कि बहुत अच्छा कौन है ? तो सबसे अच्छे है सिद्धभगवान । तब यही ठानो कि हमको तो सिद्ध-भगवान बनना है । दर्जा एक-दो की भी किताब पढ़ने वाले आजकलके बच्चे बडे चतुर है । वे जानते है कि हमको तो बी. ए , एम. ए पास बनना है, हमे तो इतना ऊँचा विद्वान् बनना है । तो जो सबसे ऊँचा आदर्श हो उसपर यदि अपनी

संकेतदृष्टि न जाय कि हमे तो यह बनना है तो वह कभी वैसा उच्च नही बन सकता । संगीत सीखने वाला जिसे केवल अपने गाँवका ही कोई उस्ताद मिल गया है, सीख रहा है सरगमविधिसे सगीत वाद्य, किन्तु उसके चित्तमें कोई एक सगीतका महान विद्वान् बसा हुआ होता है जो उसकी समझमे आया हो कि मुझको तो ऐसा बनना है । जो भारतमे सर्वोच्च संगीतज्ञ कलाका विशारद हो उसपर दृष्टि जाती है और करता है काम अपनी शक्ति माफिक तो ऊँचासे ऊँचा आदर्श, जिससे बढ़कर और कुछ न हो वह हम आपके चित्तमे जरूर रहना चाहिये, नही तो यह मनुष्य क्या है ? एक मिट्टीका जैसा पुतला है । जिसे अपने भविष्यका ही पता नही कि मुझे क्या बनना है, कैसा बनना है तो फिर उसे क्या कहा जाय ?

सिद्धप्रभुकी कर्मबन्धोदयसत्त्वरहितता—सर्वोत्कृष्ट जीव है सिद्धभगवान । उनका वर्णन हुआ है कि वे आनन्दमय है, शरीररहित है, उत्कृष्ट बातें बतायी गई थी, उन्ही सिद्धभगवान के सम्बधमे यहाँ यह कह रहे है कि मूलकर्म और उत्तरकर्मके बंध उदय सत्त्वसे वे रहित है । यहाँ हम आप ससारी जीवोंके साथ कर्म भी अनते बँधे हुए है और ऐसी भी वर्गणायें साथमे लगी हुई है कि कषायभाव किया कि उस ही समय वे वर्गणायें कर्मरूप हो जाती है । सभी लोग कहते है कि जीवके साथ कर्म लगे है, पर कर्म कैसे होते है जो लगे है, इस बारेमे वर्णन

कोई नही बनता, सबके तकदीर है, भाग्य है, कर्म है, ऐसा साधारण तो कह देंगे, पर उस तकदीरका रूप रग क्या है, आकार प्रकार क्या है, उसमे क्या गुण है, उसकी क्या दशा होती है ? इस बारेमे सब मौन रहते है, किन्तु जैनदर्शनके ग्रन्थोको देखिये, इतनी उच्च विज्ञानकी निधि बनी बनाई हुई आपके घरमे है, मंदिरमे है, पर निरखना नही चाहते, देखना नही चाहते । वे कर्म क्या है, कैसे बँधते है, कब तक ठहरते है, उनका रूप रग क्या है, वे किस आकारमे हैं, कैसी शक्ति है, क्या गुण है, कैसे वे झडते है, कैसे वे फल देते है ? ये सब बातें स्पष्ट रूपसे खूब लिखी हुई है, जिनके अध्ययनसे ऐसा स्पष्ट ज्ञान होता है कि जैसे किसीके बारेमे बात कर रहे हो ।

कर्मका निर्देशन—कर्म क्या है ? सक्षेपमे यो समझिये कि इन ससारी जीवोके साथ सूक्ष्म पौद्गलिक तत्त्व कार्माण-वर्गणा नामका सहज लगा हुआ है । जिसे सस्कृतमे कहते है—विस्रसोपचय । जो अभी कर्मरूप नही है । कर्मरूप है वे भी लगे है । तो जो कर्म बन बैठेगे वह चीज जीवके पास अब भी है । जहा कषायभाव जगा वहाँ वे कर्म बँध जाते है । कोई छिप करके पाप करे तो चाहे लोगोकी आखसे छिप जाय, मगर जीवके साथ लगे हुए जो वे विस्रसोपचय है उनसे छिप-कर कहा जायगा ? जिस समय खोटे भाव हुए उस ही समय वे कर्म अच्छे या बुरे रूपमे बध जाते है, और उसी समय

उसमे शक्ति, प्रकृति पड जाती है कि ये कर्म इस प्रकारके दुःख देनेके कारण बनेगे, इतने समय तक जीवके साथ लगे रहेगे, और अलग होनेके समय ये कर्म ऐसा क्लेश देकर विदा होगे, जिसको भक्तजन प्रभुभक्तिके समय कहा करते ना कि कर्मों के विध्वसके लिए मैं धूप चढाता हू। वे कर्म कौनसे है जिनके विध्वंसकी भावना भक्तजन कर रहे ? वे कर्म इस जीवके साथ लगे हुए है। देखो जीवोमे कितनी विभिन्नतायें है—कोई मूर्ख है, कोई ज्ञानी है, कोई धनी है, कोई गरीब है, किसीका यश है, किसीका अच्छा काम करके भी कोई यश नही है आदिक विषमतायें उन कर्मोंको ही तो सूचित करती हैं। जैसा जिनका उदय है वैसा उनका बर्ताव चल रहा है। निश्चित समझिये कि जो कुछ हम करते है उसका फल हमे भोगना होगा। बिरला ही कोई महापुरुष, विचित्र शक्ति ऐसी एकदम पा ले तत्त्वभावना, ज्ञानभावना, ज्ञानानुभूति आदि, उसके प्रसादसे बहुत काल तक टिकने वाले कर्मोंको जल्दी ही अभीसे खपा ले, उदयमे ला दे, उदीरणा कर दे, बिगाड दे, पर विरले ही जीवकी यह बात है। खूब सोच-विचारकर सावधानीसे हमे अपना व्यवहार विचार बनाना चाहिये, जिससे हमारा आत्मा, हम खुद स्वय किसी विपत्तिमे न फसें और इस ससारके सकटोमे बहुत लम्बे काल तक न रुलें। तो ऐसे उन कर्मोंके जो मूलमे तो ८ प्रकारके है और उनके उत्तर

भेद १४८ है और असलमे कितने है, इसकी हम आपको गिनती नही, असख्यात है। तो उन असख्यात कर्मोके बन्धसे भी जो रहित है, उदयसे भी रहित है, सत्त्वसे भी रहित है, ऐसे सिद्धभगवानका स्मरण किया जा रहा है भक्तिमे।

सिद्धप्रभुकी मंगलरूपता—वे प्रभु मगलरूप है। जब किसी कार्यको करने चलते है तो हम सगुन ढूढते है। जब कोई सगुनकी बात दिख जाय तब इस कार्यको करे तो हमे उस कार्यमे सफलता प्राप्त होगी। तो कार्यसिद्धिके प्रसगमे उस सिद्धप्रभुका स्मरण करो ना, उससे बढकर सगुन क्या मिलेगा? और उससे उत्कृष्ट मंगल क्या होगा? वे सिद्धप्रभु मंगलभूत है। किसी समय विशेष रिवाज था कि विवाहका अवसर हो तो जैसे एकदम आटा पिसाया उसको किसी बडे बर्तनमें भरना है तो णमोकार मत्र पढ़कर भरा जाता था। यो ही जो भी काम शुरू किया जाता था उसके शुरू करते समय णमोकार मत्र पढा जाता था। धवलामे भी आया है कि व्यवहारके कार्योको भी मत्राराधनापूर्वक करो। तो यह क्या है? यह मगल है।

सिद्धप्रभुकी गुणात्मकता व अतीतसंसारता—सिद्धप्रभु अष्टगुणोसे युक्त है। क्या है उनमे? वे क्या चीज है? जो सम्यक्त्व भाव है, स्वच्छ भाव, विपरीत अभिप्रायरहित शुद्ध चैतन्यभाव वह वहाँ प्रकट है, वे अपने आपका साक्षात्कार करते है। यहाँ तो जीवोको अपना ही पता नही, दूसरोका

भी पता नही। कोई कहे कि मुझे अपना पता नही तो दूसरे का तो है। तो दूसरेका भी पता नही है। जैसे अपना परिचय न होकर शरीरको माना कि यह मै हू, इसी प्रकार दूसरे जीवो का भी परिचय न होकर बाहर रहने वाले शरीरोको माना कि ये दूसरे जीव है। बहिरात्माओकी ऐसी ही दशा है। जैसे स्वप्नमे हम आप अटपट जो चाहे देखते रहते है, यह जगल है, यह शेर है, यह नदी है आदि, पर जग जानेपर वे कुछ भी चीजें वहाँ नही दिखती, ऐसी ही हालत यहाँ है। अनेक विकल्प करते है, परस्परका व्यवहार करते है, वे सब झूठ निकलते हैं। इसी भवमे तत्त्वज्ञान जगनेपर मालूम कर लेते है कि वह सब झूठ था। वह सब सिनेमाका खेल था। यहाँ तो विपरीतता लग रही है ना। सिद्धप्रभुका वह चैतन्यस्वरूप स्वच्छ है, वे सिद्धप्रभु अपने आपको देखते है, साक्षात्कार करते है और अपनेको व सारे विश्वको जानते है। जहाँ सबकी एक-सी अवस्था है, जहाँ शरीर नही है, जहाँ किसी प्रकारकी बाधा नही है, जहाँ ऐसे उच्च गुण प्रकट हुए है वे हैं सिद्धभगवान। अब वे ससारसे अतीत हो चुके है। कोई सकट नही रहा। अब थोडा ध्यानमे लावो कि जिस आत्माके शरीर भी नही रहा, न कभी हो सकेगा, केवल ज्ञान ही ज्ञान है उसको क्या सकट है? वह ज्ञानानन्दमय है, ऐसे सिद्ध भगवत परमात्मा सबको मंगलरूप होवें।

अट्ठविहकम्मवियला सीदीभूदा णिरंजणा णिच्चा ।
अट्ठगुणा किदकिच्चा लोयग्गणिवासिणो सिद्धा ॥४॥

सुखी होनेकी होड़—विशुद्ध आत्यतिक शाश्वत आनन्द का धाम कौन है ? वह है सिद्धात्मा । जैसे हम इस लोकमे किसी पुरुषकी विशिष्टता जानकर उसके निरखनेको उत्सुक रहते है ऐसे ही जगतकी समस्त आत्माओमे विशिष्टता है सिद्ध प्रभुकी । सोचिये कि आत्मा जहाँ आत्मा ही रहे, आत्माके अतिरिक्त अन्य कुछ जिसके साथ न हो, ऐसी स्थिति होना सबसे उच्च और विलक्षण स्थिति है ना । उसके देखनेको हमे उत्सुक रहना चाहिये, उस ओर हमारा ध्यान जाना चाहिये । ओह शान्त है तो यही है प्रभु । हम दूसरोको सुखी जानकर उनसे सुखकी होडमे लगते है, बस यही आदत तो है हम सबकी । जैसे कोई प्रश्न रखे कि आजकल लोग धनकी होडमे क्यो ज्यादा लगे है, क्या पेटमे खानेके लिए अनाज नही या तन ढाकनेके लिए दो-चार कपडोकी मुश्किल है ? फिर क्यो धनकी होडमे इतना अधिक लग रहे है ? तो यो लग रहे है कि सभी जीवोकी एक आदत है कि किसीको सुखी देखा सो मै इससे अधिक सुखी हो जाऊँ, ऐसी बात उसके मनमे आ जाती है और वह उससे उस सुखके लिए होड मचाने लगता है । तो बात तो अच्छी है, दूसरोको सुखी देखकर वैसा ही सुखी बननेके लिए होड़ लगाना, यह कोई बुरी बात नही है ।

यह तो अच्छी ही बात है, पर उस सुखके लक्षणमे भूल कर ली ह। अरे जिन्हे ये जीव सुखी समझ रहे है वे सुखी है कहां ? अभी उनके पास तीन-चार दिन रहनेमे मिल जाय तो फिर सही पता पड जाय कि वे कितने तो सुखी हैं और कितने दुःखी है ? जैसे सुखानन्द सेठके पास एक मुनिने अपने शिष्य को भेजा तो वह शिष्य तो एक माहमे सुखानन्दकी विरक्तिकी वातको पाहचान पाया था, पर यहां तो उन सुखी दिखने वाले लोगोके पास यदि तीन-चार दिन भी रहनेको मिले तो पता पड जायगा कि किस तरहसे दुःखमय अथवा आकुलतापूर्ण उनका जीवन व्यतीत होता है ? ये टाटा, बाटा आदिक जो कि कुछ धनिकोमे बडे प्रसिद्ध है, जरा उनके पास तीन-चार दिन ही रहकर उनकी हालत देख लो। तो इस जीवने लक्षण मे भूल की। इसने सुखके लक्षणको नही पहिचाना। सुखी होनेके लिए यदि सुखी दिखने वालोसे होड लगाये तो यह तो प्रशसाकी बात है। लेकिन जरा इस बातपर तो विचार करो कि वास्तवमे सुखी है कौन ? तो सुखी है वे केवली भगवान, जो कि ज्ञानपुञ्ज रह गये। तो सुखी होनेके लिए होड लगावो इन केवली भगवानसे। कौन है आत्यंतिक स्वाधीन आनन्दमय ? जो आत्मा समस्त कर्मोंसे रहित, शरीरसे रहित, केवल अपने आपके अस्तित्वमे है, केवल उस ही अस्तित्व वाला रह गया, बस वही हे परमसुखी, अनन्त आनन्दमय।

सिद्धप्रभुकी निष्कर्मता और शान्तरूपता—जो आत्मा अष्ट प्रकारके कर्मोंसे रहित है वह सिद्धभगवान हमारा उपासनीय है, आदर्श है। चौबीस घटेमे चलते-फिरते, उठते-बैठते किसी भी जगह रहते हुए, दो-चार दस बार तो सिद्धप्रभुका स्मरण हो जाना चाहिये, भीतरसे। इस दृष्टिसे कि वे है सिद्ध, जो कि कर्मोंसे रहित है, केवल आत्मा ही आत्मा है, परम प्रभु है, वही स्वभाव मेरा है, इतना स्मरण दिन-रातमे चार-छः बार होना जरूरी है। जिसका हमे स्मरण भी न रहे, सुधि भी न रहे उसको हम पायें कसे ? तो ये सिद्धप्रभु अष्ट कर्मोंसे रहित है और शान्त है, परम आनन्दमय है। जैसे यहाँ कुछ बात देखकर अनुकूल प्रतिकूल दृष्टिमे लेकर कुछ न कुछ तरग बना लेते है, सुख दुःख किसी भी प्रकारके क्षोभकी बात अपनेमे बना लेते है तो उसके साधन हो हमारे पास है। कर्म लगे है, शरीरमे बसे है, विषयकषायोकी योग्यता है, मलिनता है, ये प्रसग आते है, पर सिद्धभगवानमे ये प्रसंग नही आते। वे सिद्ध तो लोकाग्रभागपर है और यही कही होते तो भी प्रसग न आते। यहाँ क्या होते नही ? सिद्ध नही होते तो सकलपरमात्मा तो यही मध्यलोकमे होते है, पर वे किसी भी बातसे क्षोभको प्राप्त होते है। जहाँ आने-जाने, ठहरने आदिकी व्यवस्था इन्द्र करे और ऐसी उच्च व्यवस्था कि जहाँ ठहरे हो वे सकलपरमात्मा वहाँ पहिलेसे ही समवशरण

बन जाता है। विहार करते हो तो एक पैर आगे धरा कि एक-एक कमल और बन गया। चारो ओर २२५ कमल रचे जाते है। और आगे बढे तो १५ कमल और रच दिये, तो ऐसी हुजूरीमे रहना, ऐसी भक्तिमे रहना, जहाँ बडो-बडोका काम बन रहा। ऐसे बडे ठाठके बीच अरहत प्रभुको कोई क्षोभ होता है क्या ? नही होता। वे वीतराग है। वे जो करते है वह अपने लिए करते है। यहाँ क्षोभ क्यो होता है कि हम आप यह दृष्टि बनाये बैठे है कि यह सब कुछ मेरा है, पर सिद्धभगवान तो इन सभी झझटोसे मुक्त है, इस कारण वे अत्यन्त शान्त है।

सिद्धप्रभुकी निरञ्जनता—सिद्धप्रभु निरञ्जन है। द्रव्य-कर्म, भावकर्म, नोकर्ममल, विभावविकार, क्षोभ तरग आदिक कुछ भी उनमे नही है। वे समस्त अञ्जनोसे दूर है। जैसे अञ्जन आंखमे फैलकर चिपक ही तो जाता है, तो अञ्जन कहा है उन सब मलोको। रागद्वेप कर्म ये अञ्जनकी तरह चिपके हुए होते है संसार अवस्थामे, लेकिन वे प्रभु उनसे मुक्त हो गये। वे प्रभु अब निरञ्जन है। ऐसे वे कब तक रहेगे ? वे नित्य है। सदा ऐसे ही अनन्त आनन्द, अनन्तशक्ति, अनन्त-ज्ञान, अनन्तदर्शनसे युक्त रहेगे। त्रिकालमे भी कभी वे वहाँसे नीचे नही गिरते। मोक्षके विषयमे अनेक लोगोकी अनेक कल्पनाये हैं। किसीका कहना है कि जीव रागसे रहित कभी

होता ही नही। राग कम हो गए—उसीका नाम है मोक्ष, वैकुण्ठ। और चिरकालके बाद वह राग उखड गया, सो फिर जन्म लेना पडता है। कोई लोग मानते हैं कि मोक्ष हो जाने पर फिर वहाँ कुछ भी नही रहता। जैसे दीपक बुझ गया, ऐसे ही यह आत्मा बुझ गया, कुछ नही रहा, मोक्ष हो गया, पर जो सत् है उसका कभी विनाश भी हो सकता है क्या? वह तो है, वहाँ विभाव परभाव नही, यही मोक्ष है।

मुक्तिस्वरूपके जाननेका अनायास प्रयास—मुक्ति क्या है, उस मुक्तिके सम्बधमे हम आप यदि जाननेका प्रयास करें तो भली-भाति यहा मुक्तिका स्वरूप जान सकते है। संकल्प-विकल्प क्षोभ आदि छोडकर समस्त बाह्य पदार्थोंको अभिन्न असार जानकर उनका ख्याल छोड दें दो-चार मिनटको ही, फिर आप जहा रह रहे है, रहे, कही आपका घर नही छुटाया जा रहा है, पर एक उपयोगमे रात-दिन वैभवको ही बसाये रहे, दिनमे उसे समाये रहे, उस भारसे किसी दिन, किसी क्षण तो रहित होकर विश्राम लेना चाहिये। लोग माहभर काम करके एक-दो दिन तो विश्राम लेते है। यह दिलके व्यायामकी बात कह रहे है। यह दिल रात-दिन उलझनोमे, विकल्पोमे, परदृष्टिमे, परको अपना माननेमे निरन्तर लग रहा है, इसे कुछ छुट्टी देना चाहिये या नही, कि सदा ऐसे ही जोतना चाहिये? अगर छुट्टी देना चाहिये तो छुट्टी यह है कि

२४ घटेमे दो-चार मिनट तो कभी सामायिक आदिकके रूपमे ऐसा दिलको खाली बना लें कि ये कोई भी बाह्यपदार्थ बाह्य-परिवार, सम्पदा, शरीर, पोजीशन आदिक कुछ भी दिलमे न रहे और इस तरह ठानकर बैठ जाये कि मुझे तो एक केवल खालिस रहकर अनुभव करना है कि सत्य क्या है इसमे ? इसीलिए हमने समस्त परको दिलसे उतारकर फेंकनेकी धुनि बनायी है। दो-चार मिनट तक दिलको विश्राम तो दें, और तब अपने आप यह समझमे आयगा कि मुक्ति क्या चीज होती है, मुक्तिमे कैसा आनन्द हुआ करता है ?

सिद्धप्रभुका अष्टगुणात्मकत्व, कृतार्थत्व व लोकाग्रवास— सिद्धपभु स्वाश्रित, परमपवित्र अनन्त चतुष्टयमे नित्य रहा करते है। वे अष्टगुणोसे सहित है, कृतकृत्य है। जो करने योग्य कार्य है वह सब प्रभुने कर लिया। उन्हे अब कुछ करनेको रहा ही नही। वे तो अपने ज्ञानरसमे लीन है, जानते है। क्या परमे करनेको रहा ? ऐसे ये सिद्धभगवान लोकके अग्र-भागमे रहते है। लोकके शिखरपर विराजे है, और अपने परम ज्ञानज्योतिके ऐश्वर्यसे सतत आनन्द भोगते रहते है। ऐसे सिद्धप्रभुका इस भक्तिमे स्मरण किया जा रहा है, जो सर्वोत्कृष्ट है, उसकी ओर हमारी दृष्टि होगी तो हम भी अवगुणोसे हटकर गुणोमे समृद्ध होगे और सुखी हो सकेंगे। जैसे ये सिद्ध प्रभु सम्यक्त्व, दर्शन, ज्ञान, अगुरुलघु, अवगाहना, सूक्ष्मत्व,

अनन्तवीर्यत्व, अव्याबाध—इन अष्टगुणोसे युक्त है, ऐसे ही अष्ट गुण हम सबमे है, शात प्रयासके द्वारा विकसित होते है। जैसे ये सिद्धभगवान कृतकृत्य है, ऐसी कृतकृत्यता हममे भी है, तत्त्वज्ञानसे प्रकट होती है। ये सिद्धप्रभु लोकाग्रवासी है, सो ऊर्ध्वगमनस्वभावके कारण निर्मल सिद्धात्मा वहां ही अवस्थित होते है। उनके ध्यानसे यह यह विकास निकट हो जाता है।

सिद्धा णट्ठट्ठमला विसुद्धवुद्धी य लद्धसब्भावा।
तिहुवणसिरसेहरया पसियतु भडारया सव्वे ॥५॥

सिद्ध भगवंतोसे प्रसादकी प्रार्थना—भट्टारक सर्व सिद्ध भगवान प्रसन्न होवें। भट्टारकका अर्थ है सर्वश्रेष्ठ। तो सिद्ध प्रभु प्रसन्न होते है क्या? हाँ वे प्रसन्न होते है। हमपर प्रसन्न नही होते, किन्तु खुदपर प्रसन्न होते है। प्रसन्न होनेका अर्थ खुश होना नही, किन्तु निर्मल होना है। जैसे शरद ऋतुमे छोटी-छोटी तलैया प्रसन्न हो जाती हैं। तो प्रसन्नका अर्थ है निर्मल होना। तो निर्मल होनेमे ही सर्वमगल है, कल्याण है, आनन्द है, इसी कारण लोगोने प्रसन्नका अर्थ खुश होना कर लिया है। प्रसन्न होनेका सही अर्थ शब्दानुसार निर्मल होना है। भगवान सिद्ध प्रसन्न होवे। और जब प्रसन्न होनेका अर्थ खुश होना, कल्याणकारी होना लगाना है तब वहाँ यह दृष्टि करनी है कि भगवान सिद्धके स्मरणके प्रसादसे हमारा पापरस

शीर्ण होता है और पुण्यरस बढता है, इस कारण सुख सामग्री, प्रसन्नताके साधन हमे स्वय उपस्थित होते है और हम स्वय प्रसन्न हो जाते है। तो इस हमारी प्रसन्नतामे सिद्धभगवान निमित्त कारण हुए, आश्रयभूत हुये, इस कारणसे कारणमे कार्यका उपचार करके भी यह कहा जाता है कि सिद्धभगवान हमपर प्रसन्न होते है। तब यह प्रार्थना की गई कि सिद्धप्रभु हमपर प्रसन्न होवे।

सिद्धप्रभुकी चरमसिद्धता—सिद्धका अर्थ है जो पक चुके। जैसे यहाँ कार्य जब पूर्ण हो जाता है, जिसके आगे और कुछ उसमे करना बाकी नही रहता है उसे सिद्ध होना कहते हैं। जैसे चावल सिद्ध हो गये, भात बन गया, अब पक जाने के बाद और कुछ भी अपेक्षा चावलमे की जाती है क्या कि इसकी अन्य क्या दशा बनायें ? पक चुके। जो कार्य करना था चावलके सम्बधमे, वह पूर्ण हो चुका, इसीको कहते है— सिद्ध होना। इसी प्रकार इस भव्य जीवके सम्बधमे जो कार्य होना था, पूर्णरूपसे हो चुका। जिसके बाद फिर उसमे कोई कार्य होनेकी कमी नही रहती, ऐसा कार्य होनेको कहते है सिद्ध होना। तो भव्यत्व गुणका विपाक होता है जहाँ भव्यत्व भी फिर नहीं रहता। भव्य अभव्य दोनोसे अतीत अनुभय अवस्था रहती है उस अवस्थाको कहते है सिद्धदशा। तो जो अपने समग्र गुणोमे परिपूर्ण विकसित है, ऐसे सिद्धभगवान

हमपर प्रसन्न होवें ।

सिद्धप्रभुकी अज्ञान और अदर्शन मलसे रहितता—कैसे है ये सिद्धप्रभु ? जिनके अष्टमल नष्ट हो गए, ऐसे निर्मल है । मल ८ है—अज्ञान, अदर्शन, सुख दुःखकी बाधायें, क्षोभ, अनवगाहना, स्थूलपना, ऊँच-नीच होना और शक्ति क्षीण होना । ये संसार अवस्थामें ८ मल है । जिनका कारण है अष्ट प्रकारके कर्मोंका उदय । ये ८ मल अब सिद्धप्रभुमे नहो रहे, अज्ञान नही रहा । यह अज्ञान १२वें गुणस्थान तक रहता है । ज्ञानका अभाव, ज्ञानकी कमी अर्थात् अज्ञानका मल वह केवलज्ञान होनेपर नही रहता । इस कैवल्यकी प्राप्तिका साधन कैवल्यका अनुभवन है । अपना ज्ञान निर्मल रखना हो, अपनेको शान्त ज्ञाता बनाना हो तो कैवल्यका अनुभव करना चाहिये । मै सिर्फ अपने ही सत्त्वके कारण सहज जिस स्वरूप मे हू उस कैवल्यस्वरूपका अवलोकन करना, अनुभवन करना, यही उत्तरोत्तर विकासको करके केवलज्ञानप्राप्तिका कारण होता है । प्रभुमे सिद्धमे अब अज्ञानदोष नही है । अज्ञान दोष तो अरहत अवस्थामे ही मिट गया । इसी प्रकार दूसरा—अदर्शन दोष है—जानने वाले आत्माको अपने दर्शनमे लेना, महसूसी मे लेना, यह तो है दर्शन और यह दर्शन जहाँ अनुभूत न हो सके, ऐसी छद्मस्थ अवस्थामे यह अदर्शनमल था । अब प्रभुके यह अदर्शनदोष नही रहा ।

सिद्धप्रभुकी सुखदुखबाधामलसे रहितता—तीसरा दोष है सुख दु खकी बाधाओका। ससारी जीवोमे कभी तो दु खकी बाधा आती है और कभी सुखकी बाधा आती है, बाधा दोनो मे है। जिसमे आत्मा बाधा जाय, क्षुब्ध हो, शान्त न हो सके उस सबको बाधा कहते हैं। जीव जैसे दुःख भोगते समय शान्त नही रहता, इसी प्रकार सुख भोगते समय भी शान्त नही रह सकता। दु ख अशान्तिसे भोगा जाता और सुख भी अशान्तिसे भोगा जाता। खूब परख कर लो—किसी भी विषयका सुख हो, उस सुखके भोगनेसे पहिले भी अशान्ति, भोगनेके विचार और प्रयास करनेके समय भी अशान्ति और विषयोके भोगते समय भी अशान्ति। विषय भोगनेके बाद तुरन्त भी अशान्ति। तो सुख दुःख ये दोनो जीवको बाधाये है। ये बाधायें अब सिद्धभगवानमे नही है।

क्षोभ, अनवगाहन व स्थौल्य दोषसे रहितता—चौथा दोष था क्षोभका। तो यह क्षोभ भी अब उन सिद्धप्रभुके नही रहा। ५वाँ एक पिण्डोलासा बनकर, अलग-अलगसा रहकर अवगाहके योग्य नही रहना, यह दोष था। जैसे एक मनुष्यमे दूसरा मनुष्य तो नही आ सकता। तो यह अवगाहनका दोष भी सिद्धमे नही है। छठा दोष है स्थूलता। देखो ये जीव बडे मोटे ढगसे न्यारे-न्यारे दिख रहे है। कहाँ तो जीवका अमूर्त रूप और कहाँ यह दशा? स्वरूपसे अमूर्तपना अब भी है,

लेकिन अभी तो ये बँधे हुए दिख रहे है। शरीरमे बँधे है और उस शरीरमे बँधनेके कारण न्यारे-न्यारे दीख रहे है—ये फलाने आये है, यह गाय है, यह भैस है, यह घोडा है आदिक। जो कि केवल एक ज्ञानगम्य था, यद्यपि सही रूपमे नही जाना गया इस तरह, लेकिन फिर भी जीवके सम्बधमे यह जानकारी हो रही है। यह जीव अपनी सूक्ष्मताको छोडकर किसी रूपसे स्थूलतामे आया है तब यह कुछ व्यवहार और समझ बन रही है। तो जीवमे यह दोष था और सिद्धभगवानमे स्थूलताका दोष नही रहा। वे अपने स्वच्छ सद्भाव गुणमे आ गए।

सिद्धप्रभुकी गुरुलघुत्वदोषसे रहितता—७वां दोष है छोटे-वडे ऊँच-नीच कुलमे रहना। नारकी जीव जितने होते है वे सब नीच कुलके कहलाते है। तिर्यंच जीव जितने है वे सब नीच कुलके कहलाते है। देवगतिके जीव उच्च कुलके जीव कहलाते है। केवल मनुष्यगतिमे ही ऐसा है कि कुछ जीव उच्च कुलके कहलाते है और कुछ न्यून कुलके कहलाते है। तो इस ससार-अवस्थामे जो उच्च और नीच कुलका दोष था, उच्च होकर फिर नीच हो सकनेका दोष था वह अब सिद्धप्रभुमे नही रहा। सिद्धभगवान सर्वोत्कृष्ट सारभूत अवस्थाको प्राप्त है, अब उनमे ऊँच-नीचका व्यवहार नही रहा। चाहे कोई तीर्थंकर होकर सिद्ध हुए हो और चाहे कोई ऐसे ही मुनि

सिद्ध हुये हो। जिन मुनिको मुनिके कालमे भी कोई जानने वाला न था, और वह हो जाय सिद्ध तो अब वहा उनका सर्व वैभव सुख आदिक सब सिद्धोके एक समान है। परमार्थसे वहाँ ऊँच-नीच छोटे-बडेका कोई भेद नही रहता है और न कभी वे उससे रच भी हीन हो सकेंगे।

सिद्धप्रभुकी शक्तिह्रासदोषसे रहितता—नवा दोष है शक्तिक्षीणता। आत्मामे कितनी अतुल अनन्त शक्ति है कि जिसका पूर्ण विकास अरहत सिद्ध अवस्थामे हुआ है। उसको तो वचनोसे क्या बता सके, पर यहाँ भी देखो तो जीवोमे शारीरिक मानसिक भी जो शक्ति है, नजर आती है, वे भी यद्यपि आत्माकी विकृत दशाये है तथापि कैसी विशिष्ट है? आजकल देख लो विज्ञानके कितने-कितने प्रकारके आविष्कार हो रहे है, और ऐसे-ऐसे आश्चर्यजनक आविष्कार हो रह है कि जिनका पहिले कुछ भान ही न था, जिनकी कभी कोई कल्पना न की जाती थी। कैसे-कैसे राकेट, कहाँ-कहाँ तक पहुचना, बिना तारके सन्देश भेजना आदिक अनेक प्रकारके आश्चर्योत्पादक आविष्कार हुये है, ये क्या हैं? ये इस जीवकी शक्तिके प्रयोग ही तो है, इस आत्माकी विकृत अवस्थाकी शक्ति ही तो है, पर जिन भगवानने किसी प्रकारका विकार नही रहता, आत्मा शुद्ध पवित्र हो जाता है, ऐसे अरहत और सिद्ध अवस्थामे इनके अनन्तशक्ति प्रकट है। यहाँ मनुष्योमे

तो वह आत्मशक्ति थोडीसी प्रकट है, किन्तु परमात्माकी शक्ति अनन्त है। भगवान अरहत और सिद्धने तीन लोक तीन कालवर्ती समस्त पदार्थोंको एक साथ जान लिया है। उनकी शक्तिका हमे परिचय यो नही हो रहा कि उनके राग-द्वेष इच्छा आदिक नही है, वे कोई खटपटमे नही पडते, अत-एव उनकी शक्तिका यहा हम आप अन्दाज नही कर रहे, पर जहाँ त्रिलोक त्रिकालवर्ती समस्त गुणपर्यायोका एक साथ बोध हो रहा हो उसकी शक्ति आप कितनी कहेगे ? संसारी जीवो मे कोई है क्या उनकी उपमा दिये जाने लायक कि इस मनुष्य के समान उन सिद्धप्रभुकी शक्ति है ? ऐसा कोई मनुष्य नही है। तो ये प्रभु अष्ट प्रकारके मलोसे दूर होकर निर्मल हुए है और अष्टकर्मोसे मुक्त हुए है।

सिद्धप्रभुकी विशुद्धबुद्धिता—वे सिद्धभगवान निर्मलज्ञानके अधिपति है। ससार-अवस्थामे हम आप लोगोका ज्ञान सदोप रहता है। जाननेके साथ ही स्नेह, द्वेष कुछ न कुछ बात उसमे बनी रहती है। किसी भी चीजको निरखकर जानकर हेयरूप से, उपादान रूपसे, विषयरूपसे कुछ न कुछ उसका विकल्प बना लेते है, शुद्ध ज्ञाता दृष्टा नही रह पाते। ज्ञानका काम तो मात्र जानना है। किसे जानना ? केवल शुद्ध जानना। केवल जानन रहा, प्रतिभास रहा, उसके साथ कोई विकल्प नही, स्नेह घृणा द्वेष आदिक कोई बातें न उठें और केवल जानन-

पना रहे, यह है ज्ञानका विशुद्ध काम। ऐसा संसार-अवस्थामे कहाँ अभी पाया जा रहा है ? तो यह ज्ञान विशुद्ध नही है, पर प्रभुमे यह पूर्ण विशुद्ध ज्ञान हुआ है। इसी कारण सिद्ध भगवान अरहतदेव भी एक समयमे समस्त वस्तुओको जान लेते है, प्रतिसमय जानते रहते हैं। देखो अल्पज्ञके ज्ञानकी व्यक्तिमे पदार्थोंके जाननेका जो विकास होता है वह अन्तर्मुहूर्त उपयोग रहनेपर उसका व्यवहार और विकास हो पाता है। किसी पदार्थके सम्बधमे लगातार अन्तर्मुहूर्त तक जानन चलता रहता है तब हम आपकी समझमे आ सकने वाला यह ज्ञान होता है, लेकिन अरहतदेव और सिद्धभगवानके ज्ञान एक-एक समयमे परिपूर्ण होते है और एक ही समयमे समग्र लोका-लोकका ज्ञान होता है, फिर दूसरे तीसरे प्रत्येक समयमे ज्ञान उनके चलता रहता है। ऐसा विशुद्ध बोध सिद्धभगवानके प्रकट हुआ है।

सिद्धप्रभुकी लब्धस्वभावता—सिद्धभगवान लब्धस्वभाव है। अपने स्वभावको उन्होने पा लिया। जैसे गर्म पानी हो तो बतलावो उस पानीने अपना स्वभाव पाया है क्या अभी ? स्व-भाव तो है पानीमे, मगर व्यक्त रूपमे, परिणतिमे अभी पानी अपना स्वभाव नही रख रहा। ठडा किया जाय थोडे समय बाद वह पानी तो वह अपने स्वभावको पा लेता है। तो इसी प्रकार स्वभाव तो हम आप सब जीवोमे है। जो जिसका स्व-

भाव है वह जायगा कैसे ? आत्माका स्वभाव है चेतन, ज्ञान-दर्शन, जाननदेखनहार रहना, ऐसा विशुद्ध ज्ञानदर्शनस्वभाव है। लेकिन ससार अवस्थामे विशुद्ध ज्ञानदर्शन कहाँ है ? यह वभाव तिरोहित है। रागद्वेष विषयकषायके भावोसे मिले हुये होनेके कारण अब यह मलिन हो गया है। स्वभाव होकर भी उपयोग जब उसे न पाये तो वह न पाया कहलाता है। जैसे हाथमे कोई चीज मुट्ठीमे है छोटीसी चीज, मान लो अगूठी ही है और उसे भूल गये, यहाँ-वहाँ देख रहे, कपडे भी फैलाकर देख रहे, बाये हाथसे सन्दूक भी खोलकर देख रहे, बहुत-बहुत ढूढनेपर भी अगर उस अगूठीको पाया नही है तो यही कहा जायगा कि हाथमे वस्तु होकर भी जब उसका ख्याल नही है तो उसे पाया ही नही है। इसी प्रकार हम आप सब आत्माओ का स्वभाव चैतन्य ज्ञानदर्शन प्रतिसमय रहता है। स्वभाव न हो तो वस्तुका अभाव ही हो जायगा। प्रतिसमय रहकर भी जब उपयोग स्वभावको न जाने तो यह ही कहना होगा कि हमने स्वभाव नही पाया। कभी पाते भी है तो आशिक रूपसे अस्थिरतासे, लेकिन सिद्धभगवानके स्वभाव तो सर्वत सर्व प्रकार व्यक्त हो गए है तो उन्हे कहते है कि स्वभाव पा लिया है।

स्वभावकी अनादिसिद्धता—जैसा आत्माका शुद्ध स्वभाव है अपने ही सत्त्वके कारण बिना परके ससर्गके स्वय जो कुछ

है वह सब ज्योका त्यो प्रभुमे प्रकट हो गया । जैसे किसी बडे पत्थरमे से कोई मूर्ति बनायी जाती है तो मूर्ति बमनेपर जितना अश प्रकट हुआ है वह अश, वह पाषाण क्या पहिले न था ? क्या कारीगरने उसे बनाया है ? कोई कारीगर पत्थरकी मूर्ति बनाता है क्या ? बनाता नही है, किन्तु कुछ हटाता है । उस मूर्तिके जो आवरण करने वाले पत्थर थे उनको वह कारीगर हटाता है, और वह मूर्ति उन आवरणोके हटनेसे ज्योकी त्यो प्रकट हो जाती है । तो वह मूर्तिके कारीगर द्वारा बनायी नही गयी है, किन्तु जिन पाषाण-खण्डोसे वह मूर्ति ढकी हुई थी उन पाषाणखण्डोको हटाया गया है । ज्यो हो उस मूर्तिका आवरण करने वाले पापाण खण्ड हटे कि वह मूर्ति प्रकट हो गयी । इसीलिए टकोत्कीर्णवत् ज्ञायकस्वभावका दृष्टान्त दिया जाता है । मूर्ति प्रकट होनेपर वह मूर्ति निश्चल है, उसका कोई अग हिलता नही है । तो यह आत्मा जो सिद्ध हुआ है, सिद्ध अवस्थामे जो कुछ बात हुई है वह सबका सब वैभव स्वभाव पहिले भी था । कबसे था ? अनादिकालसे था । पर उसको ससार-अवस्थामे यह जीव ढके हुये था । विषयकपायोके परिणाम जब उपयोगमे आ रहे है तो वह स्वभाव उपयोगमे नही आ रहा था, अब एक कैवल्यभावनाके बलसे विकसित होकर अब वह स्वभाव पूर्ण विकसित हुआ है । तो ये सिद्धप्रभु लब्धस्वभाव है ।

सिद्धप्रभुकी त्रिलोकशेखरता—ये सिद्धभगवान तीन लोक के सिरपर शेखर है अर्थात् ३ लोकके शिखरपर विराजमान होनेसे वहाँ भी सर्व श्रेष्ठ ऊँचे स्थित है। सिद्धान्तकी दृष्टिसे इस जीवका ऊर्ध्वगमन स्वभाव है, कोई नही रोकने वाला और जहाँ तक कारणभूत धर्मास्तिकाय है वहाँ तक यह जीव एक ही समयमे ऊर्ध्वगमन स्वभावके कारण पहुच जाता है। इस जीवका ऊपरको जानेका स्वभाव है। ससार-अवस्थामे तो कर्मो से दबा हुआ है, इसलिए यह स्वभाव प्रकट नही है। जैसे जीवको मरकर नरक जाना है तो वह यहाँसे सीधे नीचे चला जायगा। उसे ऊपर जानेका अवकाश नही है। जिसको जिस दिशामे जाना है उस ओर चला जाता है, पर यो जाते समय यह जीव कर्मोके भारसे संयुक्त है। जैसे तूमीमे कीचड भरा हो तो वह पानीमे नीचे पडा रहता है। जब कीचड पिघलकर पानी मे घुल मिल जाता है तो वह तूमी हल्की होकर पानीके ऊपर आ जाती है, इसी प्रकार विषयकषाय कर्म ये सब कीचड जब तक जीवके साथ रहते है तब तक यह जीव दबा रहता है। जब ये दूर हो जाते है तो यह जीव एकदम ऊर्ध्वगमन स्वभाव से तीन लोकके शिखरपर पहुच जाता है, और वैसे भी बडा सुहावना लग रहा, ऐसा होना। जो सर्वोत्कृष्ट है उसका आसन सबसे ऊपर होना चाहिये। पर इतना ध्यान रखनेकी बात है कि जहाँ सिद्धभगवान विराज रहे है वहीपर अनन्तनिगोदिया

जीव भी है, पर सिद्धभगवान तो अनन्त आनन्द भोग रहे है और निगोदिया जीव वैसा ही दुःख भोग रहे है जैसे कि यहाँ के । तथा रहनेमे भी फर्क इतना है कि वे सिद्धभगवान कभी उस शिखरसे नीचे नही आ सकते और वे निगोदिया जीव जन्ममरण करते हुए इस ससारमे बने रहते है । वे निगोदिया जीव क्षणभरमे एकदम नीचे १४ राजू तकमे जन्म ले सकते है । सिद्धभगवान त्रिलोक शेखर है, भावोसे भी और क्षेत्रसे भी वे ऊँचे विराजमान हैं । मनुष्य जब प्रभुकी याद करता है तो याद करते समय वह ऊपर कुछ देखता है या उपयोग ले जाता है और कुछ ऊपरको ही अपना मुख करके हाथ जोडता है । तो इससे भी यह विदित है कि भगवान ऊपर ही रहा करते है । किसीको कभी नीचे जमीनकी ओर सिर गाडकर भगवान को हाथ जोडते न देखा होगा । तो ये सिद्धभगवान तीन लोक के शिखरपर विराजमान है । ऐसे ये सर्व सिद्ध प्रसन्न होवें ।

सिद्धका प्रसाद---सिद्धपूजाकी जो विराग सनातन आदि जयमाल है वह सब सस्कृतमे है, हिन्दीमे नही है । जरा सीधे शब्द हैं, सो लोग समझते है कि येह जयमाल हिन्दीमे है । ये सभी शब्द सम्बोधनके है----हे विराग, हे सनातन, हे शान्त, हे निरश, हे निरामय, हे निर्भय, हे निर्मल, हे हस, हे सुधाम, हे विबोधनिधान, हे विशुद्ध, हे सुसिद्धसमूह ! प्रसीद, प्रसन्न होवो । तो क्या ये सिद्धभगवान पहिले हम हमपर नाराज थे

जो अब उन्हे मना रहे कि प्रसन्न होवो ? अरे वे स्वयं अपने आपपर प्रसन्न है। जब उनकी भक्तिके प्रतापसे हम आप सबके भी एक ज्ञानविकास होता है, पुण्यरस बढता है, प्रसन्नता मिलती है तो एक निमित्त दृष्टिसे कहा जाता है कि हे सिद्धप्रभु प्रसन्न होवो। तो यहाँ प्रार्थनारूपमे आचार्य कह रहे है कि सर्व सिद्धभगवान प्रसन्न होवे।

गमणागमणविमुक्के विहलियकम्मदुपयडिसंघाए।
सासहमुहसवत्ते ते सिद्धे वदिमो णिच्च ॥६॥

सिद्धप्रभुकी गमनागमनविमुक्तता—उन सिद्ध भगवतोकी हम नित्य वदना करते है, जो सिद्धभगवान गमनागमनसे रहित है, पचपरावर्तनसे रहित है। एक शरीरसे दूसरे शरीरमे जाना, दूसरे शरीरसे किसी नये शरीरमे आना, यह आवागमन इन ससारी जीवोके लग रहा है। वे प्रभु इस प्रकारके आवागमनसे रहित है। इन सिद्धभगवन्तोने अष्टकर्म प्रकृतिके सघको क्षीण कर दिया है। देखिये आनन्दका मार्ग कितना सहज और सरल है, पर उस आनन्दके पानेकी धुनि बने और उसकी रुचि हो तो वह सहज और सरल है। जब रुचि ही नही है तो आनन्दका मार्ग कठिन है और कठिन ही नही बल्कि तब असभव है, यो कह लीजिये। आनन्दमय तो ये प्रभु भगवान सर्व आत्मा है ही, क्योकि आत्माका स्वरूप-निर्माण ही ज्ञान और आनंदभावसे है। बनाया नही गया यह कभी। अनादिसे

हैं ये सब आत्मा । पर आत्मा किस रूपसे है, आत्माका क्या स्वरूप है, आत्मामे पाया क्या जाता है ? ज्ञान और आनन्द । तो ज्ञान और आनन्दसे रचे हुये ही है हम आप सब, पर ऐसी दृष्टि करके कि मुझमे ज्ञान कहाँ, आनन्द कहाँ ? सो ज्ञान पानेके लिए परकी अपेक्षा रखते है और आनन्द पानेके लिए भी परकी अपेक्षा रखते है । यह ज्ञानानन्दका प्रकट न होना और परवस्तुवोकी अपेक्षा रखना—इन सबका कारण ये कर्मोके उदय है । तो सिद्ध भगवन्तोने इन कर्मप्रकृतियोका विघटन कर दिया । समस्त कर्म दूर हो गये तो उनका ज्ञानानद पूर्ण प्रकट है । ऐसे सिद्ध भगवन्तोकी हम नित्य वन्दना करते है ।

दूसरेके देहसे लोगोकी प्रीतिका अभाव—यहाँ हम आप जितने मनुष्य अथवा पशु-पक्षी आदिक जानवर जो कुछ भी दिख रहे है वे सब न तो खालिस आत्मा है, न खालिस शरीर है, न खालिस वे कर्म है जिनकी बात गाया करते है, किन्तु इन तीनोका एक सघ जुटाया है—जीव, कर्म और शरीर । ये जो जीव दिख रहे है इन्हे हम देह भी नही कह सकते, क्योकि शरीरसे बात कौन करता है ? यही शरीर जब जीवसे त्यक्त हो जाता है, फिर इसे पूछता कौन है, और सभी लोग चाहते यह हैं कि इसे जल्दीसे जल्दी ठीहाठिकाने लगा दीजिये ताकि खराब न हो । और कभी जब बहुतसे लोग जुटते हैं और उस मुर्दाको जलाने ले जानेके लिए उठाते है तो घरके भाई घरके

लडके, स्त्री आदिक उस मुर्दाको पकडकर कहते है कि न ले जावो हमारे फलानेको। और कोई पच कह बैठे कि ये कहते है तो इसे यहाँसे मत ले जावो, चलो, तब तो फिर घरके लोग हाथ जोडकर यही कहेगे कि अरे भाई लौट आवो, इसे यहाँसे ले जावो। तो इस देहसे सम्बध कौन रखता है ? यह देह केवल देह नही।

दूसरे जीवोसे लोगोकी प्रीतिका अभाव—दृश्यमान यह जीव केवल जीव नही। केवल जीवसे सम्बध कौन रखता है ? किसीको किसीके जीवसे प्यार है क्या ? किसीसे प्यार है नही। तो यह जीव क्या है ? एक ज्ञानदर्शनका पिण्ड, ज्ञानानन्द चैतन्यस्वरूप। उसे चैतन्यस्वरूप मात्र जानकर भी कोई प्यार करता है क्या ? अरे यदि सही रूपमे जान ले कोई तो वह तो सर्व झझटोसे रहित हो गया। वह स्वय एक उस चैतन्यतत्त्व का जाननहार हो गया। अब उसके लिए व्यक्ति नही रहा, फिर प्रेम कैसा ? और उस चैतन्यमे प्रेम करनेका अर्थ क्या है ? भिन्न पदार्थ है। हाँ, कुछ कहा जा सकता है तो यह कहा जा सकता है कि कुछ ऐसी बात कहो कि दृष्टि विशुद्ध हो जाय और अपने चैतन्यस्वरूपमे उपयुक्त हो जाय। ऐसा करता कौन है ?

जो कुछ दिख रहे है ये सब जीव, कर्म और शरीर स्कंध इन तीनके पिडोले दिख रहे है। तो ये सब पिडोले, ये सब

मलिन जीव ससारमे रुलते है, दु·खी होते है, जो इन्द्रियसे जाने, जो आँखोसे जाने उसने माना कि ये सब मेरे है और ये मेरे हितरूप है, ये मेरे विरोधी है। तो ये स्वय कल्पनायें करते है और इसीसे दुःखी होते है। तो फिर क्या स्थिति बने कि ये जीव इन दु·खोसे छूट जायें ? बस जीव केवल जीव ही रह जाये, शरीर और कर्म भी सदाके लिए छूट जाये, बस जीवके समस्त दु·ख खत्म हो गए। तो सिद्धभगवान ऐसी स्थितिको प्राप्त हैं। उन्होने अष्टकर्मोंके सघका विघटन कर दिया है, अतएव सर्वोत्कृष्ट है।

धर्मधारणका प्रयोजन– धर्म किसलिए किया जाना चाहिये ? उसका प्रयोजन क्या है ? धर्म करनेका प्रयोजन यही है कि मै सकटरहित हो जाऊँ। किसी मनुष्यसे यदि कहा जाय कि तुम थोडे दिनोके लिये इस सारी सम्पत्तिके स्वामी बन जाओ, पर थोडे ही दिनोके बादमे तुमसे तुम्हारी भी पहिली सारी सम्पत्ति छीन ली जायगी और तुम्हे जगलमे छोड दिया जायगा, तो कौन ऐसा विवेकी पुरुष होगा जो इस वैभवको उस थोडेसे समयके लिए लेना स्वीकार करेगा ? अरे प्रत्येक व्यक्ति यही चाहता है कि मुझे तो जैसी मेरी स्थिति सदा निभ जाय वैसी मेरी स्थिति रहे। तो ऐसे ही यहाँ भी समझ लो, मान लो इस थोडीसी जिदगीको मौज-मस्ती में व्यतीत कर दिया और बादमे नरक निगोदकी योनियोमे

पटक दिये गये तो फिर क्या लाभ पाया ? अरे इस मनुष्यभव पानेकी सार्थकता इसीमे है कि समस्त प्रकारके कर्मोंका विध्वस करनेकी बात सोचो। जिन प्रभुकी हम आप उपासना करते है उन्होने किया ही और क्या था ? अष्ट प्रकारके कर्मोका विध्वंस करके संसारके आवागमनको मेटा था और शाश्वत आनन्द प्राप्त किया था।

सत्य आनन्दका विधान— शाश्वत आनन्द वह है जो सदाकाल रहेगा। जिस आनन्दमे कभी किसी भी प्रकारकी बाधा नही आ सकती। इस प्रकारका आनन्द हम आप तब तक नही प्राप्त कर सकते जब तक कि इस मोहमलका भार लदा हुआ है। और मोह भी किस बातका ? अरे जिस शरीर से इतना मोह किया जा रहा है वह शरीर है कैसा ? जरा इस पर भी तो कुछ ध्यान दे लो। इस शरीरके अन्दर खून, मास-मज्जा, मल-मूत्र आदिक समस्त गदी चीजे भरी हुई है, केवल ऊपरसे पतली चाम मढी है, उसीसे लोग मोह करने लगते है। मोहमे तो इस जीवको कुछसे कुछ दिखता है। लोग प्राय यह शिकायत करते हुए पाये जाते है कि मैने अपने लडकेकी बडी सेवा की, बडी खुशामदे की, मगर आज वह हमसे विरुद्ध हो गया, हमारी बात ही वह नही सुनता। जरा-जरासी बात उसे एक अनिष्टरूपमे दिखती है। तो यह सब क्या है ? यह दुःख क्यो होना है ? अरे मोह लग गया, इसलिए क्लेश हुआ।

यदि परसे स्नेह न करते, परसे मोह न करते तो ये दुःखके दिन न देखने पडते। इस मोहसे होता क्या है कि जीवको खोटी-खोटी दुर्गतियोमे जन्म लेना पडता है। इससे बढकर और खराबी क्या कही जाय ? तो यहांके सुखोमे क्या दम है ? क्या बल है ? कौनसा सार है ? थोडा कल्पनामे मान लिया कि मुझे बडा अच्छा सुख प्राप्त है, पर ऐसा सुख कोई सुख नही जिसके बाद बहुत-बहुत दुःख भोगना पडे। सुख तो वास्तविक प्रभुका है जिसमे किसी भी प्रकारकी आकुलता नही रहती। आकुलतारहित भी अपना एक शुद्ध स्वभाव है शुद्धके मायने अपने आपके अन्तस्तत्त्वके कारण ही जो अपने आपमे स्वभाव बना है उसपर दृष्टि जाय, सारे विकल्प हटें तो संकट टल गये।

धर्म व अधर्म और उनका फल— अपने अन्त विराजमान कारणपरमात्मतत्त्वकी दृष्टि आये तबसे समझिये कि हम अब धर्म करने वाले हुए है। धर्म किया जाता है अपने आपके आत्माके उद्धारके लिए। तो इस धर्मके फलमे ये सिद्ध भगवंत हुए है, जिन्हे शाश्वत आनन्द प्राप्त है, ऐसे सिद्ध भगवतो को आचार्यदेव कहते है कि हम नित्य वन्दन करते है। धर्म क्या है ? आत्मशोधन, आत्माको संकटोसे बचानेकी योजना बनाना, उसपर चलना। धर्मपालन किसीपर ऐहसानके लिए नही है। जो धर्म करेगा वही उसका फल पायगा। धर्मका

फल है शान्त होना, सुखी होना, समस्त प्रकारके संकटोसे छुटकारा प्राप्त करना। जो कर्म हम आपमे बँधे हुए है उनका उदय सामने आयगा, उनका फल भोगना पडेगा। भले ही आज पुण्यका उदय है और ऐसा लगता है कि पाप करते है तो इसमे मेरा क्या बिगाड है ? लोगोमे तो मेरी वही इज्जत है। ठीक है, मगर जो पाप बँध गये है उनका उदय तो सामने आयगा ही, दुर्गतिमे जाना होगा और घोर दुःख सहना होगा। तो जब तक मनुष्य है, हमारा मन श्रेष्ठ है, जानने समझनेकी शक्ति है तब तक हम कुछ कर लें तो ठीक है और ऐसा अवसर व्यतीत हो जानेपर फिर तो इस आत्माकी बात करनेकी नौबत न रहेगी। ऐसी भी स्थितियाँ हो सकती है, फिर क्या किया जायगा ? यह मनुष्यजन्म विषयकषायोके लिए नही है, किन्तु धर्मपालनके लिए है। एक ही यह अपना उद्देश्य बनाना चाहिये कि मोहमे बस-बसकर कुछ कार्य न बनेगा और अपना ज्ञान पाकर किसी भी क्षण अपनी दृष्टिको अपनेमे लेकर शात हो, ऐसी ऐसी यदि योग्यता बना ली जाय तो मैने कुछ पाया अन्यथा नही। विषयोका तो रवैया ही यह है कि उनमे पडकर पाया कुछ नही है बल्कि खोया है।

जय मगलभूदाण विमलाणं णाणदसणमयाण।
तइलोय सेहराणं णमो सया सव्वसिद्धाणं ॥७॥

सिद्धभक्तिके समयके भाव—समस्त सिद्धोको सदा नम-

रकार करता हूँ। सिद्धके मायने आत्माकी परम पवित्र शुद्ध अवस्था। जहाँ न आकुलता है, न अज्ञान है, न किसी प्रकार की न्यूनता है। अपने गुणोकी पूर्ण समृद्धि जिस अवस्थामे हुई है उसे हम सिद्धभगवान कहते है। सिद्धकी अरहतकी हम पूजा भक्ति करते है, पर भक्तिके समय भक्तिके साथ क्या हम यह भी ध्यान रखते है कि ये महान् है, आदर्श है, हमे भी ऐसी ही अवस्था चाहिये और कुछ न चाहिये ? सब कुछ एक अपनी दृष्टिका ही तो प्रभाव है और फर्क है। लौकिक बाते तो जैसी होनी है होगी, पर दृष्टिके फेरसे अपनेमे फेर जरूर आता है। एक अपने परिवारके सुखके लिए, धन-वैभवके सचयके लिए, इष्ट विषयोकी प्राप्तिके लिए हम यदि प्रभु पूजन करते है तो उससे कही सिद्धि नही हो जाती। होनी होती है तो हो जाती है, उदय है तो उनकी प्राप्ति हो जाती है, मगर उस समय जो उन सासारिक विषयोकी वाञ्छा कर ली। जो पाप हुआ, जो मलिनता हुई वह और ऊपर आ गयी। इस प्रकार जब एक निष्काक्षाभावसे आन्तरिक सावधानीके साथ जो जानेगा उसे फिर तीन लोक तीन कालमे अन्य कुछ भी चीज सारभूत नजर नही आती। हे प्रभो! आपकी जो स्थिति है, अनुभूति है, यही सार है, मुझे भी वह सार चीज प्राप्त हो, ऐसी दृष्टि बने तो फिर कही भी अपना घाटा नही है, किसी प्रकारको फिर आपत्तियाँ नही है। जो होता हो होने

दो, किन्तु अपनी दृष्टि यदि निर्मल रहेगी तो उससे आत्माका भान होगा, उससे पुण्यरस बढ़ेगा, और सर्वसिद्धियाँ स्वयमेव ही प्राप्त होगी ।

सिद्धप्रभुकी मंगलभूतता—प्रभु सर्व हिद्ध मगलभूत है। मंगलका अर्थ है– 'म' मायने पाप, 'गल' मायने जो गला दे। जो पापोंको गला दे, नष्ट कर दे उसे मंगल कहते है। मगलका दूसरा अर्थ है—'मग' मायने सुख, 'ल' मायने लाना अर्थात् जो सुख लाये, पैदा करे उसे मगल कहते है। व्यवहारमे लोग चगा-मगा बोला करते है तो चगाका अर्थ तो ठीक है– जो शरीरसे हृष्ट-पुष्ट हो वह चगा है। पर मगाका यहाँ अर्थ है कि जो अपने भीतरी आनन्दमे मग्न रहे। तो शरीरसे भी हृष्ट पुष्ट रहे, ऐसा जो हो वह कहलाता है चगा-मगा। सो मगका अर्थ आनन्दरूपमे रूढ भी है। वे प्रभु मगलभूत है, सुखको उत्पन्न करने वाले है, पापोको गला चुकने वाले है, ऐसा उनका निजी स्वरूप है, और जो उनके इस स्वरूपका ध्यान करते है उनके भी पाप गलते है और सुख उत्पन्न होता है।

धर्मपालनका लक्षण—देखिये– धर्मके लिए जो कुछ भी किया जाता है उस सबका उद्देश्य एक है। मे अपनेमे विराजमान उस परमात्मतत्त्वको निहार लूँ, उन समस्त धर्मविधियो के करनेका प्रयोजन एक यही है। जैसे दूधमे घी है या नही है ? नजर तो नही आता, दूधमे दूध ही समझमे आ रहा, घी

तो नही समझमे आता, पर परखने वाले लोग फिर कैसे बता देते है कि इस एक किलो दूधमे तो १।। छटाक घी निकलेगा और इस १ किलो दूधमे सिर्फ आधी छटाक घी निकलेगा। तो उस दूधमे घी व्यक्त रूपसे नही है, पर शक्ति रूपसे विद्यमान है। और परखने वाले लोग जानते है कि इस विधिसे बनाया जाता, अब तो यो ही मशीनसे ही घी निकाल लेते है। दही बनाकर, बिलोकर उस घी को लोग निकालते ही है। तो उस दूधके अन्दर घी था तभी तो पारखी लोग समझ लेते है और उस घी को निकाल लेते है। इसी प्रकार हम आप सब लोगोके आत्मामे परमात्मतत्त्व बसा हुआ है जो कि परखनेसे परखा जा सकता है। वह परमात्मतत्त्व अपनी दृष्टि मे आ जाय तो यही सर्वोपरि बात है और यही सर्वोत्कृष्ट वैभव है। यही वैभव अपने काम आयगा, अन्य किसी भी प्रकारके वैभव अपने काम न आयेंगे। यहांके कोई भी समागम सदा न रहेंगे, इनका विछोह, अलगाव होगा। ये कोई भी समागम काम न देंगे। तो बुद्धिमानी इसीमे कही जायगी कि अपने भविष्यकी बातको भी बहुत ठीक सुधार करके चले।

देवपूजा सामायिक आदिमे आत्मस्पर्शके भावमे धर्म—ये सिद्धभगवन्त मगलभूत है व स्वय निर्मल है, शान्ति मिलती है वीतरागतासे। और धर्ममार्गमे वीतरागताका महत्त्व है। प्रभुको वीतराग स्वरूपमे निहारनेपर तो उस प्रभुके ध्यानसे

मिलेगा कुछ और सरागके रूपमे निहारनेपर उस प्रभुके ध्यान से मिलेगा कुछ नही। तो यह दृष्टि हमारी समस्त व्यवहार धर्मोंमे आनी चाहिये। पूजा करते हो तो प्रभुको निहारकर अपने आपमे निरखें कि बस यही स्वभाव तो मेरा भी है, यही स्वभाव मेरेमे प्रकट हो। सामायिकके समयमे अपने आपके शरीरको सावधान बनाकर दिलपर ऐसा नियन्त्रण करके कि उन १०-५ मिनटोंमे हम किसी भी बाहरी चीजको अपने दिलमे नही लाना चाहते, कुछ नही सोचना चाहते। एक अपने आपमे अपना ही शान्त वातावरण बनाकर विश्रामसे बैठना चाहता हू। विकल्पोसे मै बहुत थक गया था। अब मै अपने विकल्पोकी थकानको दूर करनेके लिए अपने विश्रामकी अवस्था मे आना चाहता हू। देखिये आत्मस्पर्श ही तो किया जा रहा है। गुरुवोकी उपासनाके समय, गुरुवन्दन, गुरुसेवाके समय दृष्टि यही तो होनी चाहिये कि ये देखो अपने अध्यात्ममार्गमें बढ रहे है और मोक्षपथपर जा रहे है। इन्होने अपना लक्ष्य अपनी ही अलौकिक दुनियाकी ओर कर लिया है। सार तो इस जगह है। ऐसी गुरुवोके कर्तव्योकी सराहना करते हुए और वहां सार देखते हुए अपने लिए भी उसी मार्गपर चलने की बात आये तब तो गुरूपासनामे धर्म है और इससे क्या किया गया ? अपने आत्माका स्पर्श।

स्वाध्यायमें आत्मस्पर्शका प्रयत्न– स्वाध्याय करते है तो

स्वका अध्ययन है ना, तो आत्माका अध्ययन है। कुछ भी पढनेमे आ रहा हो, कभी यह भी पढनेमे आये कि ऐसे-ऐसे देहधारी जीव है— स्वयभूरमण समुद्रमे एक हजार योजन लम्बा, ५०० योजन चौडा और २५० योजन मोटा मगरमच्छ रहता है। प्राय. ऐसा देखा भी जाता है कि जिस तालाबका जो रूप है उसके अनुसार उसमे मछलियाँ भी छोटी-बडी पायी जाती है। यहांके बडे-बडे सागरोमे भी २-३ मील तककी लम्बी मछलियाँ देखी जा सकती है। तो जिस स्वयभूरमण समुद्रमे करीब आधा राज समा गया है उसकी तो चर्चा ही क्या की जाय ? वहाँपर यदि इतनी बडी अवगाहना वाले मगरमच्छ हो तो इसमे क्या आश्चर्य ? खैर, वह पढकर भी प्रयोजनभूत बात अपनको यह लेनी है कि ओह ! एक आत्म-स्वरूपकी सुधि बिना बाह्य विकल्पोमे फसे हुए इस ससारी जीवकी ऐसी-ऐसी विशालकाय वाली योनियोमे भी जन्म लेना पडता है और वहांके दु.ख भोगने पडते है। इस प्रकारसे उस पढे जाने वाले विषयसे अपने आत्मतत्त्वका स्पर्श करे।

सयम, तप, दान आदिमे आत्मस्पर्शका लक्ष्य—सयम तपश्चरणमे उपवास आदि किये जाते है, वहाँ यह ध्यान बनायें कि जिन विषयोमे रत रहकर यह आत्मा अपना परि-चय नही कर पाता है उन विषयोका हमे त्याग करना है, अपने आपको सावधान बनाना है और आत्मस्पर्श करना है।

इसी प्रकार दान करनेमे भी आत्मस्पर्श किया जाता है। ऐसा ध्यान बने कि चलो हमने इतने धनका त्याग किया, इस धनके विकल्पोसे हम दूर हुए, अपने आपकी ओर झुकनेके लिए हमे कुछ अवसर मिला। तो दान करके इस प्रकारका भाव आना यह भी आत्मस्वरूपके स्पर्शका कारण है। तो प्रत्येक धार्मिक कार्यको करके उसमे उद्देश्य अपने आत्माके परमात्मस्वरूपके दर्शनका रखना है। यदि यह कार्य किया जा सका तो समझो कि हमने धर्मपालन किया और यदि इसकी सुधि न हुई, बाहरी बातोके लिए ही, अपनी दिलपसदीके लिए ही धार्मिक कार्य किया तो उससे न तो आत्माको शान्ति प्राप्त होती है, और न उससे आत्माका कोई उत्थान होता है। तो ये प्रभु मगलभूत है, इसीलिए कि इनका स्वरूप साक्षात् ऐसा ही है। उनके ध्यानके प्रतापमे हमे भी ऐसे सर्वमगल प्राप्त होगे।

वास्तविक सत्यकी हृदयपर छाप—वास्तविक मगलभूत परम उत्कृष्ट परम आराध्य सिद्धभगवान निर्मल ज्ञानदर्शन स्वरूप है। जीवपर छाप पडती है सत्य तत्त्वकी। ऐसा पुरुष भी जो कभी स्वार्थवश कुछ किसी धनिकादिकका समागम बनाते है और वहाँ कुछ भी गुण नही पाते अथवा अनुदारता, कृपणता या अवसरपर काम न आना, ऐसी बातें पायी जाती हैं तो उनके चित्तमे भी आस्था नही रहती। छोटेसे छोटे पुरुष, बड़ेसे बड़े पुरुष सभीके हृदयपर छाप पडती है तो सच्चाईकी,

वीतरागताकी और निर्दोषताकी। चाहे स्वार्थवश व्यवहार कुछ भी करना पडे किन्तु हृदयपर छाप सत्यकी ही रहती है। अन्तरगमे तो ये प्रभु सिद्ध भगवन्त निर्मल ज्ञान दर्शन स्वरूप है, उघडा हुआ सत्य हैं, अर्थात् सत्य ही सत्य वहाँ प्रकट है, असत्यका काम ही नही है। वह सत्य भगवान है, उनका दर्शन हमारी दृष्टि निर्मल हो, हम अपने ज्ञान दर्शनस्वभावके रुचिया हो तो पा सकते है, ऐसे निर्मल ज्ञान दर्शनस्वरूप सिद्ध भगवन्तोको सदा नमस्कार हो। जो तीन लोकके शेखर है। शिखरपर रहने वालेको शेखर कहते है। वैसे भी तीन लोकके समस्त जीवोमे सिद्धप्रभु उत्कृष्ट हैं इस कारण भी शेखर है, तीन लोकके अन्तिम अग्रभाग पर विराजमान है इसलिए भी शेखर है। ऐसे उत्कृष्ट धाम सिद्ध भगवन्तोको नमस्कार करने का परिणाम एक विशिष्ट पुण्यकर्मका बन्ध कराता है और अन्तः शुद्ध दृष्टि होनेमे पहिले सवर निर्जरा भी होती है।

वास्तविक निर्भार अनुभव करनेका अनुरोध— भैया! अपने को भार वाला अनुभव करते रहने से तो बेचैनी होती है और अपनेको भाररहित हल्का अनुभव करने से शान्ति होती है। यहा भारसे मतलब बाहरी भारसे नही, किन्तु विकल्प उलझन मोह स्नेह इन भावोके कारण जो चित्तपर भार लद गया है उस भारमे बेचैनी होती है। उस बेचैनीसे हटकर दो चार मिनट अपने आपकी सुधि लेना चाहिये कि

वास्तवमे मेरा स्वरूप क्या है और भाररहित शान्त दशामे मेरी क्या स्थिति होनी चाहिये, क्या होती है ? इसका कुछ अनुभव अवश्य करना चाहिये और यह कितनी सुगम चीज है, आध या पाव सेकेण्डमे ही होने वाली बात है। जैसे जिसको जिस चीजका ज्ञान है, घरमे कहाँ क्या चीज रखी है इसका जिसे परिचय है उसका ज्ञान करनेमे उसे कितनी देर लगती है ? जैसे ही उसका ध्यान दिया कि तुरन्त उसकी स्पष्ट जानकारी हो जाती है। तो उस जानकारीमे पाव सेकेण्डका भी तो समय नही लगता। इसी प्रकार जिसे अपने आत्माका परिचय है, उसे बस इन्द्रियव्यापारोके बन्द करके एक अपने आपके भीतर ही तो झुकना है कि बस अपना ज्ञानस्वरूप आत्मा स्पष्ट रूपसे दिखने लगता है। वस यही तो मैं ज्ञान-मात्र हू, इसके अतिरिक्त अन्य कुछ भी नही है मेरा, इस प्रकारकी दृष्टि बनानेमे कितना समय लगता है ? अरे आध सेकेण्ड या पाव सेकेण्ड भी तो समय नही लगता है। इस थोडे से ही समयमे उस आत्मानुभव करने वाले को बडा विश्राम मिलता है। यो समझिये कि जैसे घोडा आदि जब बोझा लादकर कही ले जाते है तो बोझ उतरनेपर झट नीचे गिरकर और लौटकर उल्टा याने सीधा होकर अपनी थकान को दूर करनेकी सोचते है और मौका पाकर ऐसे ही थकान को दूर कर लेते है, ठीक इसी प्रकार आत्मानुभवी पुरुष अपने

आत्माका क्षणिक भान करके अपनी थकानको दूर कर लेना है, उसे एक विश्राम प्राप्त होता है। तो हम आपको इन विकल्पोकी थकानको मिटानेके लिए अपने ज्ञानस्वरूपका अनुभव करना कितना आवश्यक है ? जैसे थके पुरुषको नीद लेना कितना आवश्यक है ? ४—६ घटे नीद तो आनी चाहिये और यदि वह नीद न ले तो क्या बुरी हालत हो जाती है तो बहुत-सी बाते सोचनेसे, बहुत भार अनुभव करने से, अनेक ममताओसे जो थकान होती है उस थकानको मेटने का भी ख्याल करना यह हम आप सबका काम है और यह खुदके लाभवाली बात है। इस थकानको मेटनेका उपाय बस एक विविक्त ज्ञानघन अन्तस्तत्त्वकी दृष्टि है।

दृष्टान्तपूर्वक विकल्पभाररहित होनेपर शान्तिके अनुभवका प्रतिपादन—जैसे स्वप्न आ जाय कि मै जगलमे फस गया। जगलमे कही तालाब दीखा, वहाँ पानी पीने चले गये, मगरने पैर पकड लिया, मगर खीच रहा है तो उस समय वह स्वप्न देखने वाला कितना दुःखी हो रहा है, बेचैन हो रहा है ? उसी बेचैनीमे नीद खुल जाय तो कितना आनन्द मानता है, अरे यहाँ तो कुछ भी नही है यह तो झूठा स्वप्न था, कहाँ हमे मगर खीच रहा है आदिक बाते सोच-सोचकर उसका दुःख दूर हो जाता है। ऐसे ही समझिये कि जहाँ मोह की नीदमे ये विकल्प आ गए, भार अनुभव किया कि दुःखो

हो गए और जिस समय इस थकानको मेटनेके लिए अपने अन्तःतत्त्वकी दृष्टि की कि यह तो मै केवल ज्ञानप्रकाशमात्र हू, हमने अभी तक जाननेका ही काम किया, आगे भी जाननेका ही काम कर सकूगा। बाहरी चीजोको छूता नही, इन्हे जमा नही करता। यह तो सोचता है कल्पनायें करता है, जानता है। तो यह तो मै इतना ही हू और अपने इस स्वरूपमे मौजूद हू, इसको वहाँ दुःख था। जितने इसने जीवनमे जो दुःख माने थे उन दुःखोसे घबडाकर अथवा उनकी उपेक्षा करके जब यह तत्त्वज्ञानकी आँख खुलती है तो उस तरहसे निर्भार अनुभव करता है। जैसे स्वप्नमे फसा हुआ पुरुष जग जाने पर निर्भार अनुभव करता है। मेरेको कहाँ दुःख है ? मै तो अच्छे कमरेमे बैठा हू, यही तो हू, इसी तरह वह भी एक परमविश्राम अनुभव करता है कि कहाँ है विपत्ति ? कहाँ धन बिगडा, कहाँ लोग बिगडे, कहाँ व्यापार बिगडा ? यह तो मै पूराका पूरा सुरक्षित जितना हू, हू ही, ज्ञानमात्र हू। तो अपने आपमे बसे हुए इस अन्तस्तत्त्वकी उपासनाका कितना ऊँचा महत्त्व है ? अपने जीवनको शान्त रखनेके लिए सोच ले। २४ घटेमे इतना काम कर लिया जाय तो यह हम आपके बडप्पनकी बात है। यह तो कही भी किया जा सकता है। जानकारी बन गई, समझ हो गयी स्वयकी, कही यात्रामें भी है, घरमे भी है, किसी भी जगह हो, जैसे कहते है ना कि

जिस पभुकी तस्वीर मेरे दिलमे है, जब जरा गर्दन झुकावो देख लो। देर नही लगती। इसी प्रकार यह स्वतन्त्र परमात्म-स्वरूप है, निर्लोभ होकर जब भी निहारो, जब जरा दृष्टि हो, जब भी दृष्टि दें कि ज्ञानमात्र यह मै हू, बस इतनी पलक भरसे, इतनी दृष्टि भरसे समझ लीजिये कि सब थकान खतम हो गयी और फिर बल भी बढ़ा काम करनेके लिए। जसे बहुत विकल्पोमे भी दिमाग बिगड जाता, दिमाग कार्य कर सकने वाला नही होता, तब यह अपना अन्तः विश्राम तो दिमागका बल भी उत्पन्न करता है, आप फिर उससे चौगुना काम कर सकेंगे।

अमृतपानका विश्लेषण—अपने आपमे बसे हुए सहज सिद्ध स्वरूपकी भी दृष्टि किसी क्षण हो जाय तो यही है अमृतपान। जैसे कहते है ना कि अमृतका पान करो, तो वह अमृत कैसा होता है ? क्या कोई पानी जैसा होता है या फल जैसा या लड्डू जैसा ? अरे वह अमृत क्या है सो सुनो। अमृत शब्दमे ही भरी हुई है अमृतकी खोज। अ मायने न, मृत मायने मरना। जो मरे नही उसका नाम अमृत है, अर्थात् जो सदा एक रूप रहे, कभी विनष्ट न हो उसका नाम अमृत है। यदि कोई खाने पीने वाली चीजका नाम अमृत है तो उसे अमृत क्यो कहा जाय, क्यो कि जो चीज खा पी डाली गयी, स्वय मिट गयी, विनष्ट हो गयी उसे अमृत कैसे

कहा जाय ? जो चीज स्वय अमर नही वह दूसरेको अमर क्या करेगी ? अमृत नाम है इस ज्ञानस्वरूपका । जो न मरे, जो विनाशीक नही है, सदा एकस्वरूप है, सहजसिद्ध है, उस अमृतका इस दृष्टि द्वारा पान किया जाय तो लो अमर है । जैसे स्वप्न देखने वाला व्यक्ति मगर द्वारा जालमे खीचे जानेपर मै मरा, मै मरा, ऐसा सोच सोचकर दु:खी हो रहा था, नीद खुल जानेपर वह देखता है कि अरे मै कहाँ मरा, मै तो पूर्ण रक्षित हू । इसी प्रकार ये ससारी प्राणी इस मोहकी नीदके सपने देख रहे है, अरे हमपर बडा दु ख है, मै अब मरा आदिक सोच-सोचकर दुःखी हुआ करते है, पर जहाँ इस मोह-निद्राका भग हो जाता है, ज्ञाननेत्र खुल जाता है तब वे देखते है कि अरे हमपर कहाँ सकट है, हम कहाँ मरे, हम तो पूर्ण रक्षित है । तो ये सब बल सिद्धभगवन्तोके ध्यानसे प्रकट होते है । उनका ध्यान करें और उनके ही समान अपने स्वरूपका भान करे तो इससे हम अपने जीवनमे वास्तविक बल प्रकट कर सकते है ।

सम्मत्तणाणदसण वीरिय सुहुम तहेव अवगहण ।
अगुरुलहुअव्वबाह अट्ठगुणा होंति सिद्धाणं ॥८॥

सिद्धप्रभुवत् स्वरूप होनेपर भी हम आप जीवोकी वर्तमान झझटे—हम आप सब आत्मस्वरूपकी दृष्टिमे देखनेपर जानेगे कि निर्दोष है । हममे से रने आप स्वयंमे क्या तत्त्व पाया

जाता है ? है इसकी ही गाँठकी, इसकी ही निजी भावोंकी बात, मगर देखो तो, स्वरूपमे न कोई कष्ट है, न कोई झंझट है, पर अब तो झंझटे बनी हुई है। ये झंझटें हम स्वरूपदृष्टिमे ही मिटा सकते है उन्हे छोड दें। हम आप सब कितनी झंझटो मे है ? ये क्या कम झंझटें है कि शरीरोमे फसे हुए है और पहिले भी अनेक शरीरोमे इसी तरह बन्धनमे जकड रहे थे। ये बहुत बडी झंझटें है। हम दूसरे जीवको लौकिक झंझटोमे देखकर उसके सम्बधमे दयाके परिणाम कर डालते है, पर स्वय कितने बडे झंझटोमे फसे है, इस ओर दृष्टि ही नही रखते। ये झंझटें कैसे लग गयी ? इनका कारण क्या है ? अब शरीर छोड़ा, फिर दूसरा शरीर लिया, फिर जन्म लिया, फिर मरण किया, यही चक्कर हम आप सभी जीव लगा रहे है। इस चक्करमे रहते हुए, अपने जीवनमे जीते हुए कर क्या रहे है हम आप लोग ? अपने अगले भवकी बातोके निर्माणका प्रबन्ध ही तो कर रहे हैं। यहाँपर जिस प्रकारके परिणाम करके, जिस प्रकारकी करतूते करके हम आप लोग जी रहे है, बस उसीसे निर्णय हो जाता है कि हम कैसी गति मे जायेंगे, हमारा क्या हाल होगा ? तो यह जीव इस ससार मे जन्म और मरण कर रहा है। इस मनुष्यपर्यायको पाकर यह जीव मौज मस्तीमे ही अपने जीवनको व्यतीत कर देता है, पर जरा सोचो तो सही कि यह १००-५० वर्षकी जिन्दगी

उस सम्यग्दृष्टि जीवको यहाँकी कोई भी चीज सुहाती नही है। लोकमे ऐसा कहा जाता है कि साधु जनोको कभी निद्रा नही आती, और आती भी है तो सोते हुए भी जगते जैसे। तो निद्रा न आनेके दो मुख्य कारण है— एक तो किसी चीजका स्नेह हो तब निद्रा नही आती, दूसरे किसी चीजका भय हो तब निद्रा नही आती। तो उन साधु जनोको स्नेह है अपने आत्माके शुद्ध स्वरूपसे और उन्हे भय है इस ससारसे। इस कारण इन साधु जनोको निद्रा नही आती है। तो यो ही समझिये कि जो इन शरीरोमे फसे हुए हम आप चक्कर लगा रहे है यह एक बहुत बडा सकट है हम आपपर। इससे बडी झझट, इससे बडी समस्या हम आपपर कोई नही है--इस बात का अच्छी तरह विचार कर लो।

जन्म मरण शरीरबन्धनकी झंझटोका मूल कारण— इस शरीरके बन्धनमे हम आप पड गये, उसका मूल कारण क्या है? इसका मूल कारण है शरीरसे प्रीति। जिस शरीरको हम आप धारण करते है उसी शरीरमे प्रीति करने लगते है, यही कारण है कि बार-बार शरीर मिलते रहते है। तो ठीक है, शरीरसे प्रीति है, और शरीर मिलते जा रहे है तो मनचाही चीज ही तो मिल रही है। फिर सोचो कि इस शरीरमे प्रीति क्यो हुई है? तो उसका कारण यह है कि शरीरके प्रति हमारा भाव बन गया कि यह मै हू। कोई यदि यहाँ अदालत

होती और यह शरीरबन्धनका कैदी अपने बयान देता कि हुजूर ! हमारी इतनी ही गल्ती हुई कि इस शरीरको निरख-कर हमने इतना अनुभव भर किया कि यह मै हू । इससे आगे महाराज मेरा कोई अपराध नही है । मैने परपदार्थोमे कुछ नही किया, किसीका कुछ बिगाड नही किया, केवल इस शरीरको देखकर इतना अनुभव भर कर लिया कि यह मै हू। इस जरासी गल्तीपर हमे इतना बडा दण्ड दिया गया कि जन्ममरणके इतने भयकर कष्टमयी चक्कर लगाने पडे, नरक निगोद आदिकके घोर दुःख सहने पडे । तो भाई केवल इस शरीरको निरखकर इतना अनुभव कर लेना कि यही मै हू, बस यही सबसे बडी गल्ती है इन समस्त दुःखोके उठानेकी । यह दण्ड अनुरूप है ।

शरीरबन्धनकी झंझटसे छूटनेका उपाय— समस्त दुःखोसे छूटनेका उपायमात्र एक है । जो अपना शुद्ध ज्ञानानन्दस्वरूप है उसे निरखकर मान लें कि मै तो यह हू । यह कोई अश-क्य चीज नही कही जा रही है । यह चीज की जा सकती है पर एक हिम्मत बनाकर अपने उस ज्ञानानन्द स्वरूपका अनु-भव भर करनेकी बात है । एक केवल अपनी दृष्टि भर ही तो बदलनी है । जो हम आपकी बाहरकी ओर दृष्टि लगी हुई है उसको वहाँसे हटाकर एक अपने ज्ञानानन्द स्वरूपमे लगाना है । इस क्षणिक दृष्टिसे ही एक ज्ञानप्रकाश होगा । और उस

ज्ञानप्रकाशमे ही ऐसी सामर्थ्य है कि हम आपको शान्ति प्रदान कर सकता है। हम आप लोगोकी अशान्तिका मूल कारण मोहका अधियारा है। हर जगह घटा लो यही बात। कोई अन्य समस्या इस जीवनमे बडी नही कहलाती, वैभव मिट गया तो कोई बडी समस्या नही, परिजनोका वियोग हो गया तो कोई बडी समस्या नही, वाहरो चीजें कुछ थी चली गईं, यह कोई बडी समस्या नही है, कुछ इज्जत पोजीशन कम हो गई तो यह भी कोई बडी समस्या नही, कभी ये प्राण भी चले गये तो यह भी कोई बडी समस्या नही। हाँ बडी समस्या तो यही है कि इन शरीरोमे बँधकर जन्ममरणके चक्कर लगाने पडते है। अब तो कुछ जन्ममरणकी परिपाटीकी इस समस्या का हल करनेकी बात सोचिये।

शरीरबन्धनके संकटसे मुक्त होनेका यत्न बनानेमे ही इस जीवनकी सफलता—यदि शरीरबन्धनसे मुक्त होनेका कोई यत्न बना लिया, मार्ग मिल गया तो इस अपरिमित कालमे अनन्त भवोमे समझिये कि आजका यह मनुष्यभव हमने सफल कर लिया। भव बहुतसे छूटे, अनेक भवोमे विषयकषाय भोगे, सभी बाते की, जो चीजें आज करना चाहते अनन्त बार की। एक इस ही भवमे यदि गम खा ले इन विषयकषायोकी चेष्टावो से, इन अज्ञानमयी समस्त प्रवृत्तियोसे, तो इसमे कुछ बिगाड होता है क्या ? अरे कितने ही भव इस तरहसे बिता लिए,

पर लाभकी कोई बात न मिली, एक इस भवको अच्छे भावो से, अच्छी दृष्टिसे बिता लें तो समझिये कि मनुष्यभव पाना सफल हो गया। और एक इस ही भवकी साधनाके प्रतापसे अपना भविष्य भी उत्तम हो जाता है। तो मै सिद्धप्रभुके ही समान ज्ञानानन्दस्वरूप हू, उसकी हमे सुधि लेना है। उस ही प्रकरणमे यह सिद्धका ध्यान किया जा रहा है कि सिद्ध कैसे है ? कोई लोग सोचते होगे कि बहुत दिन हो गए, सिद्धभक्ति का ही प्रकरण चल रहा है, दूसरा प्रकरण ही नही चलता ? तो भाई अपना मुख्य काम है प्रतिदिन सिद्धप्रभुका स्मरण होना। प्रतिदिन सिद्धप्रभुकी भक्ति जगे और प्रभुके स्वरूपको निरखकर हम अपने आपके स्वरूपका स्पर्श कर लिया करे। जीवनमे खास एक यही काम तो करनेका है, यही धर्म है। जो लोग जिन्दगीभर धर्म करनेका बहुत व्यायाम कर डालते है और उसके फलमे कुछ नहीं मिलता। हाँ, उन धर्मकार्योंके करनेके प्रतापसे कुछ पुण्यसामग्रियाँ प्राप्त हो जाती है उन्हीको पाकर सतोष कर लेते है कि मैंने जो धर्म किया उसका फल पा लिया। लेकिन होता क्या है कि मरणके समयमे मोहभरी चेष्टायें ही होती है। अरे धर्म तो यह है कि सकटरहित ज्ञान प्रकाशमय आत्माके स्वभावका ज्ञान द्वारा स्पर्श हो जाय, उसकी सुधि रहे, जिसकी सुधि लेनेपर विषयकषायोके भाव उत्पन्न नही होते। तो यही एक करने योग्य कार्य है। यही

कार्य सिद्धप्रभुने किया। तो वे प्रभु कैसे है ? सो इस गाथामे बतला रहे हैं कि वे प्रभु सम्यक्त्व आदिक अष्ट गुणो करके सहित है।

प्रभुकी आराधनामे चिन्तनके तीन कक्ष और सम्यक्त्व गुणका प्रतिपादन—इस प्रकरणको तीन कक्षोमे समझना है। सिद्धभगवानमे क्या गुण प्रकट हुआ है और उनके बजाय उस सम्बधमे हमपर क्या बीत रही है और फिर भी मेरा स्वरूप उन सिद्धप्रभुके गुणोके समान ही गुण वाला है। तीन बातें ध्यानमे लानी है। सिद्धभगवानका ऐसा प्रकाश, ऐसा गुण-विकास है और उस गुणकी मेरेमे यह दशा हो रही है, फिर भी मै स्वरूपतः सिद्धके ही समान हू। प्रथम गुण सिद्धभगवान मे कहा है कि सम्यक्त्व प्रकट हुआ है। सम्यग्दर्शन यद्यपि चतुर्थ गुणस्थानसे प्रकट होता है, पर जो सम्यक्त्व प्रभुमे है उसका नाम परमावगाढ सम्यक्त्व है। वह सम्यक्त्व समस्त सम्यक्त्वघातक प्रकृतियोके क्षयसे तो हुआ ही था, साथ ही केवलज्ञानका साथ पाकर परमावगाढ हुआ है। सम्यक्त्व मायने स्वच्छता, विपरीत अभिप्रायसे रहित विशुद्ध अवस्था। अब यहाँ ससारके जीवोपर दृष्टि डालकर देखो-- उनका कितना विपरीत आशय है ? अपने आपके मार्गका, जीवनका, भविष्यका निर्माण ही सही नही सोच पाते है कि हमे करना क्या है ? ससार असार है। यहाँका कोई समागम अपना नही है। सर्व

समागमोसे निराला, शरीरसे भी निराला यह जीव है। देखो यह जो ईंट पत्थरका मकान बना है यह है वास्तवमे इस जीव से बिल्कुल भिन्न, लेकिन मोहका माहात्म्य तो देखिये कि उस मकानको ये जीव अपनी चीज मान बैठे है। पर वह मकान किसका है सो तो बताओ। ऐसे अनेक विपरीत आशय है, किन्तु स्वभावसे देखो तो प्रभुवत् हो स्वच्छता है।

दृष्टान्तपूर्वक विपरीत आशयका दिग्दर्शन और सम्यक्त्व-गुणका प्रतिपादन—एक सन्यासी शहरमे से निकला। मार्गमे एक सेठकी हवेलीपर पहरेदार खडा था। उस पहरेदारसे सन्यासीने पूछा कि यह धर्मशाला किसकी है ? तो पहरेदार बोला—जावो जावो आगे, यहाँ धर्मशाला नही है।··· अरे हम जो पूछते है सो बताओ। यह धर्मशाला किसकी है ?·· अरे बाबा जी, क्यो दिमाग खराब करते हो ? यह धर्मशाला नही है, यह तो अमुक सेठजी की हवेली है।···अरे तो यही तो मै पूछ रहा हू कि यह धर्मशाला किसकी है ? सेठ सुनकर सोचने लगा कि क्या मामला है ? सेठने सन्यासीको बुलाया और कहा-- महाराज विराजिये। महाराज आप ठहरना चाहते है क्या ? धर्मशाला आप तलाश कर रहे थे, सो धर्मशाला तो यहाँसे दूर है, पर आप आज यही ठहरिये और विश्राम कीजिए तो सन्यासी बोला-- हमे ठहरना नहीं है, हम तो सिर्फ जानना चाहते थे कि यह धर्मशाला किसकी है ? तो

सेठ बोला– सन्यासी जी यह धर्मशाला नही है यह तो आपकी हवेली है। इसे किसने बनाना शुरू किया था ?…हमारे बाबाने।' वे कितने दिन इसमे रहे ?…महाराज वे तो यह हवेली बन भी न पायी थी कि पहिले ही चल बसे। फिर किसने इसे पूरा किया ?…हमारे पिताजी ने।' वे इसमे कितने दिन रहे ? 'सिर्फ चार वर्ष।'…आप कब तक इसमे रहेंगे ? ''सेठ कुछ भी उत्तर न दे सका, और समझ गया कि वास्तवमे यह हवेली मेरी नही है, यह तो धर्मशाला है। हमे भी कुछ पता नही कि इसमे कितने दिन ठहरेंगे ? हमारे बादमे फिर और कोई इसमे ठहरेगा। तो यहाँ कौन किसका मकान है ? ऐसे ही ये कुटुम्बी जन, ये समस्त वैभव, ये भी वास्तवमे किसीके कुछ नही है, पर मोही जीव इन्हे अपना मानते है। अरे इस आत्माका सही स्वरूप तो विचारिये। इसमे किसी भी प्रकारका लाग-लपेट नही है। यह शरीर, ये रागादिक भाव, ये कर्म इन सबसे भिन्न यह आत्मा है। यह एक अपने आपके स्वरूपकी बात कही गई है। स्वरूपका परिचय नही है तो अब इस चित्तको कहाँ टिकायें ? बस ये जीव मोह मोहमे ही रहते है। तो इस विशाल दुनियामे जिसका प्रमाण असख्याते योजनका है इतनी बडी दुनियामे जरासे क्षेत्र मे इस जीवने कुछ थोडेसे लोगोमे अपना मोह बसाया है जिसके कारण ये जीव रात-दिन दु:खी रहा करते है। तो यहाँ विप-

रीत आशय पडे हुये हैं। लेकिन स्वरूपदृष्टिसे देखो तो ये सब औपाधिक भाव है। मेरा स्वरूप तो सिद्धप्रभुके सम्यक्त्वगुण के समान ही सम्यक्त्व गुण वाला है।

प्रभुका ज्ञानगुण—प्रभुमे गुण प्रकट हुआ है केवलज्ञान। ऐसा ज्ञान, जिस ज्ञानके द्वारा प्रभु समस्त लोकालोकके त्रिकाल-गत परिणमनोको जान रहे है। प्रभु जानना कुछ नही चाहते, पर ज्ञानकी स्वच्छतामे ऐसा होता ही है। देखो जब तक चाह बनी है तब तक उतना जानना नही बनता। जब चाह नही रहती है तो यह समस्त लोकका जानन हो जाता है। ससारमे यह भी एक बहुत बडी उलझन है कि जब हम कुछ चाहते है तब वह चीज नही मिलती और जब हम चाहते नही तो वह चीज मिलती। उन पुरुषोकी तरह दशा है—जैसे कोई गरीब लोग जब तक जवान रहते है, दांत मजबूत होते है तब तक चनोका ठिकाना नही लगता है, और जब बूढे हो गये तब चनोके ढेर लगे रहते है। यही हाल इस धन-सम्पदा का है। जब चाह होती है तब मनमानी धन-सम्पदा नही प्राप्त होती और जब चाह नही रहती तब विपुल धन-सम्पदा प्राप्त होती है। यो किसी भी स्थितिमे इस जीवको तृप्ति नही मिलती। इस जीवने अभी तक करूँगा, करूँगा, करूँगा तो रात-दिन चिन्तवन किया, पर मरूँगा, मरूँगा, मरूँगा इस बातका कभी ध्यान ही नही किया। तो यह चाह इस ज्ञान-

प्रकाशको रोकती है। जहाँ इच्छा है वहाँ ज्ञानका विकास नही, इच्छा दूर हो तो स्वय ज्ञानका विकास होगा, फिर इसे कुछ चाह ही न रहेगी। हे प्रभो! वह अनन्त ज्ञान मिले अथवा न मिले, लेकिन इतना ज्ञान तो प्रकट हो मुझमे कि ज्ञानके द्वारा खुदको जानते जायें कि यह मैं हू और उस ज्ञान के द्वारा अपने ज्ञानस्वरूपके निकट बसा रहू, बस यही तृप्ति है, यही सर्वअर्थोंकी सिद्धि है। इस ज्ञानने अपनेको जब मात्र ज्ञानस्वरूप अनुभव कर लिया, फिर अब इसे और क्या जरूरत है? कोई विकल्प ही नही रहा, विशुद्ध आनन्द प्रकट हो गया। तो प्रभुके विशुद्ध सम्पूर्ण ज्ञान है।

पर्यायदृष्टिसे प्रभु अप्रभुका ज्ञान और स्वभावदृष्टिसे ज्ञानशक्तिकी समानता—यहाँ ससारी जीवोमे कितनी विभिन्नताये है? कोई धनी, कोई गरीब, कोई मूर्ख, कोई पडित। किसी को अगर कोई लौकिक विद्या आ गई, कुछ कला आ गई तो अभिमान हो गया, मैं तो ऐसा कलावान हू, मै इतनी विद्यायें जानता हू, इस प्रकारका गर्व प्राय सभी लोग करते है, परतु गर्व लायक बात यहाँ कुछ भी नही है। कोई बी ए एम ए ही क्यो न बन गया हो, पर यदि किसी नदीमे फस गया और तैरना नही जानता तब तो उसकी वे सारी कलाये बेकार हो जायेंगी, वह तो उस जगह अपने प्राणोकी रक्षा भी नही कर सकता एक तैरनेकी विद्या न आनेसे। तो यहाँ किस

विद्यापर गर्व करना ? सर्वविद्यावोमे निपुणता किसीका हो ही नही सकती । सर्वविद्याग्रोके ग्रधिपति है सर्वज्ञ भगवान । सिद्धभगवानके कोई इच्छा नही है । जिसके सब ज्ञान है उसको इच्छा नही और जिसके इच्छा है उसके सारा ज्ञान नही । यदि यहांके लोगोको सारा ज्ञान होता तो सबकी सपत्ति एक ग्रादमी बटोर लेता । वह तो पहिलेसे ही जान लेता है कि ग्रभी इस चीजका इतना भाव है, ग्रागे चलकर यह भाव होगा । बस जितना चाहे सम्पत्ति कमा लेता, इसलिए यह तो ग्रच्छी बात है कि जिसके इच्छा है उसके ज्ञान नही है और जिसके ज्ञान है उसके इच्छा नही है । तभी यह सब व्यवस्था बनी हुई है, लूटमार नही है (हँसी) । प्रभुके सपूर्ण ज्ञान है, लेकिन ससारी जीवोके ज्ञानकी दृष्टिसे यहाँ कुछ भी नही पाया जा रहा है, फिर भी ग्रपने ग्रापके स्वरूपको सम्हाले तो ग्रपना स्वरूप वही स्वरूप है जो सिद्धभगवानके प्रकट हुग्रा है, क्योकि चेतन है, चेतनमे द्विविधा नही है । दो तरहके चेतन है– भव्य ग्रौर ग्रभव्य । ऐसे भी दो भेद किए जानेपर मूल पदार्थमे भेद नही है, चैतन्यस्वरूपमे भेद नही है । जो उसकी कला है, स्वभाव है, ग्रसलियत है, उसमे फर्क नही । चाहे भव्य हो ग्रथवा ग्रभव्य, फिर भले ही ग्रभव्य है, वह विकास न कर पायगा, पर यहाँ विकासकी बात नही कह रहे, चैतन्यस्वरूपकी बात कही जा रही है । फिर ग्रभव्यकी सख्या तो भव्योके ग्रनन्तवें

भाग है। प्राय सकल संसारी जीव भव्य है कुछ जीवोको छोडकर। इस जीवका स्वरूप सिद्धके ही समान सर्वज्ञताका पडा हुआ है।

प्रभुका दर्शनगुण—प्रभुमे अनन्त दर्शन है। समस्त पदार्थों को जान और जाने हुए इस आत्माको प्रभुने अपने आपमे अवलोकन कर लिया, यह है अनन्त दर्शन। ये ससारी जीव दर्शनोपयोग करके भी अपनी पकड़ नही कर पाते कि मैने यह दर्शन किया। अन्तर्मुहूर्त अन्तर्मुहूर्तबाद अवलोकनमे आते रहते है, पर धुनि ऐसी लगी है कल्पनाओकी, मोहकी, परदृष्टि की कि परके ज्ञान, ज्ञानके विकल्पमे ही अथवा इष्ट, अनिष्टके विकल्पमे ही वे क्षरण गवा दिये जाते है। दर्शनोपयोग होता रहता है, फिर भी अपने आत्माको अवलोक नही सकते। तो प्रभुमे यो अनन्तदर्शन है। हम आपके चक्षुर्दर्शन, अचक्षुर्दर्शन ऐसी साधारण चीजें पायी जाती है, लेकिन स्वभाव स्वरूप हमारा वही है जैसा कि सिद्ध प्रभुका है। जैसे वे ज्ञानानन्दमे लीन है, विशुद्ध है, स्वच्छ है, स्पष्ट हैं ऐसी ही स्पष्टता, लीनता स्वच्छता हम आपमे भी पायी जाती है। स्वरूपदृष्टिसे देखो तो यह सब जान करके हम आपको इस ओर उत्साह रखना चाहिये कि मै ससारसे, विपत्तियोसे, विडम्बनाओसे छूटकर शीघ्र अपने आपके स्वरूपमे आऊँ और इसीलिए प्रभुका दर्शन है। प्रभुकी वीतरागताको निरखकर हम अपनी वर्तमान कर-

नूतपर खेद होना चाहिये और अन्तरंगमे यह उत्साह जगना चाहिये कि प्रभुवत् मेरा स्वरूप साम्राज्य बने। इस असार संसारमे अन्य पदार्थोकी मुझे वाञ्छा नही है।

सिद्धप्रभुमे अनन्त शक्ति—सिद्धप्रभुमे अनंत शक्ति है। जो अनन्त गुणोका अनन्त विकास हुआ है उसे बनाये रखना, इसके लिए अनन्तशक्ति चाहिये ही। जैसे शरीरमे जो धातु उपधातु और यहां तक कि थूक आदिक मल है वे सब शरीरमें डटे रहे, इसके लिए शरीरमे शक्तिकी जरूरत होती है ना? कुछ लोगोके मुखसे लार सी बह जाती है, थूक भी चू जाता है, आखोंसे पानी भी टपकता है। ये बातें बच्चोमे और जवानो मे नहीं देखी जाती। कारण यह है कि बच्चो और जवानो के शरीरमे ऐसा बल है कि शरीरमे रहने वाले गुण और दोषो को डाट रख सकते है। शरीर निःशक्त है तो वह अपने गुण दोषोको डाट नहीं सकता, ठहरा नहीं सकता। तो यहा भी जब ऐसी बात पायी जाती है तो सभी पदार्थोमें यह बात लगा लीजिये कि पदार्थोमें जो गुण है, विकास है, परिणमन है उनको बनाये रखनेकी उनमे शक्ति है। अब प्रभुमे होना है गुणोका अनन्त विकास तो उस अनन्त विकासको रखनेके [illegible] उस प्रभुके विकास वाले अनन्त [illegible] बनाये रखनेके लिए [illegible] शक्ति है ना? तो जितनी शक्ति है [illegible] अनन्त शक्ति है। [illegible] अपने आपके गुणोको बनाये रखने

के लिए सर्वशक्तिया है। कहीं सर्वशक्तियोका यह अर्थ न होगा कि दूसरे जीवको दुःख दे दे, नरकमे ढकेल दे, आत्मामे गडबडी कर दे, ऐसी शक्ति नही कहलाती है किसी जीवकी, आत्मामे परमात्मामे। प्रत्येक पदार्थ शक्तिमान है और वह अपनेमे ही शक्तिका प्रयोग किए हुए है।

अन्तरायकर्मके क्षयसे अनन्तशक्तिका विकास— प्रभु अनंत वीर्यवान है। उनके अन्तराय कर्मका विनाश हो गया, अनन्त शक्ति प्रकट हो गयी। जैसे ज्ञानके ५ भेद हैं——मतिज्ञान, श्रुतज्ञान, मनःपर्ययज्ञान और केवलज्ञान। और ज्ञानावरणके क्षय हो जानेपर प्रभुमे ५ ज्ञान तो नही बताये गये, एक केवलज्ञान है। तो शेष जो ज्ञान है वे यद्यपि क्षायोपशमिकता न रहनेके कारण नही है, पर स्वरूपदृष्टिमे देखो तो यह शका होगी कि मतिज्ञानमे जो जितना विकास है, श्रुतज्ञानमे जो विकास है वह विकास तो वहा होगा, और इस दृष्टिमे कि जैसे सेरमे छटांक तोला आदिक सब शामिल है तो समस्त विकासोंमे अर्द्धविकास भी शामिल है, लेकिन उनके कहनेका कुछ प्रयोजन ही नही। विकास एक है, और अब परिपूर्ण है, ज्ञानावरणके क्षय होनेमे एक केवलज्ञान है, परिपूर्ण ज्ञान है, यहा अन्य ज्ञानोकी बात नही रहती। ऐसे ही यहा अन्तरायके क्षय से अनन्तशक्ति बतायी है। आत्माकी अनन्तशक्तिका घात अतरायकर्म करता है। अन्तरायके क्षय हो जानेसे अनन्तवीर्य

प्रकट हुआ है। इसमे क्षायिक दान लाभ भोग उपभोग सब गर्भित है। उसमे दान आदिके विकल्प नही है।

ससारी जीवोमें शक्तिकी वर्तमानमे हीनता और स्वभावदृष्टिसे सिद्धोकी शक्तिसे समानता—प्रभु तो अनन्त शक्तिमान है और यहाँ ससारी जीवोमे देखो तो आत्माकी उस अनन्तशक्तिका यहा पूर्ण विकास नही है। अल्पबली होनेसे विकल्पो मे अटक गया है। गुणोका अधूरा विकास है। थोडा ज्ञान है, थोडा सुख है, थोथी कल्पनाये है। अब जितना भी जैसा भी विकास है, उस विकासको सम्हालने वाली जो शक्तिया है वे भी अधूरी ही पर्याप्त है और फिर औपचारिक भी बात देखो, शक्तिमान इस जीवके सम्बंधसे देखो—शरीरमे भी बल आ गया, मुर्दाका शरीर वही है जो एक क्षण पहिले जीवित था, उसके पैर चलते थे। चलते-फिरते भी कोई मर जाते है ना। इतना बडा परिश्रम भी कर रहे थे और एक ही मिनट बाद जब उसका वियोग हो गया तो देह वही है, पर देहमे क्या एक इच भी हटनेकी शक्ति है कि वह पैर यहासे वहा हिला ले। कहा शक्ति गायब हो गई ? तो देहमे जो शक्ति थी वह शक्तिमान आत्माके सम्पर्कसे थी। तो देहका जो बल है यह क्या है ? आत्माके अनन्तशक्ति गुणका एक विकृत विकास है और वह देहमे फैलकर इस रूपमे प्रकट हुआ है। यहा ससारी जीवोमे क्या बल है कितना बल है ? सब अधूरा बल है, फिर भी स्वभावदृष्टिसे देखो तो जैसा यहा सहज वीर्य सहज शक्ति

प्रभुमे है वैसी ही हम आप समस्त जीवोमे है । प्रभुके ध्यानमे हम ये तीन बातें ही तो सीखते है—प्रभु ऐसे है, मै ऐसा हू, पर हूं प्रभु जैसा । इतनेमे ध्यानके योग्य सब बाते आ जाती है ।

आत्मसाधनामें अन्य प्राणीका अप्रतिबन्ध– भैया ! क्या करना है ? मै भी वैसा ही कर सकता हू जो करके प्रभु प्रभु हुये हैं । अपना ही ज्ञान है, अपना ही आत्मा है, अपना ही ध्यान है । इनको अपनी ओर लगायें तो रोकने वाला कौन है ? बाहरी कामोमे कोई रोक करे, प्रतिबध करे, जबरदस्ती करे तो कर ले, तुम इस कमरेसे बाहर नही जा सकते, तुम्हे यही बैठना होगा, अगर बाहर जावोगे तो डडे लगेंगे, ऐसा तो हो सकता है, पर अपना ज्ञान ध्यान बनाये रखनेमे कौन डडे लगा सकेगा ? अरे वह तो अपने आपके अन्दरकी चीज है, इतनेपर भी अपना ज्ञान ध्यान अच्छा नही बना पाते, यह कितने खेद की बात है ? जैसे कोई कृपण पुरुष खुद ही धन कमाये, खुदके ही अधिकारमे है वह धन, पर उसका कुछ उपभोग न कर सके, खर्च न कर सके तो यह तो उसकी गल्ती है । इसी प्रकार अपना ही ज्ञान, अपना ही ध्यान, अपने अन्दरकी चीज, अपने आपकी चीज, पर उसका उपयोग न कर सकें तो यह तो अपनी गल्ती है । हम आप प्रभुकी तरहसे अनन्तवीर्य स्वभाव-सम्पन्न होकर भी अपनी शक्तिको छुपाये हुए है, प्रभुवत् ही

मेरा स्वरूप है, और यत्न करें ज्ञानमय यत्न, अपने ज्ञानके द्वारा निज ज्ञानस्वरूपको लखनेका ही यत्न करे तो वही पवित्रता जग सकती है।

सिद्धप्रभुमें सूक्ष्मत्व गुण— सिद्धभगवानके अब सूक्ष्मत्व गुण प्रकट हुआ है। जीवके साथ नाम कर्मका सम्बंध होनेसे उसके उदयमे यह जीव देहमे बँध जाता है और देहमे सघन फैल जाता है और देहमे प्रसार हो जानेके कारण एक मूर्तरूपसा धारण कर लेता है, पर नामकर्मका अब अभाव हुआ, इससे प्रभु देहरहित है और जैसा आत्माका सूक्ष्मत्व गुण है वह प्रकट हुआ है। सूक्ष्मता तो यहाँ भी ससारी जीवोमे है, लेकिन तैजस और कार्माणका ऐसा घनिष्ट सम्बध है कि उस रूप जहाँ जाना होता, जाता है। इतनेपर भी चूकि वे दोनो शरीर अप्रतिघात है, इसलिए कुछ अडचन विदित नही होती है। किसी कमरेमे कोई रोगी अपने प्राण छोडे और कमरा खूब वद हो, काँचसे खूब वह सटा हुआ हो, जिससे कि कोई घर वाला ऐसा सतोष कर ले कि हम तो अब कमरेके किवाड भी बन्द कर देते है, खिडकियाँ भी बन्द कर देगे, देखें यह कहांसे जायगा ? तो कितने ही उपाय कर लो, पर वह तो निकलता है तो काँच भी नही फूट सकता, उसे धक्का भी देकर नही जाता। रच भी किसीको बाधा न देते हुए आरामसे निकल जाता है। तो जीवमे तो ऐसी सूक्ष्मता है, अमूर्तता है,

पर बन्धनबद्ध होनेके कारण उसका यह रूप बिगडा है । एक एक मित्र अपने रोगी मित्रको देखने गया शामके समय, तो उस समय वह खाटपर लेटा हुआ था, वह बहुत अशक्त हो गया था, उसकी उस समय बहुत हल्की आवाज निकल रही थी । उस समय उस मित्रसे पूछा कि मित्र, इस समय तुम्हारा क्या हाल है ? तो वह बोला– मित्र, क्या बतायें, बिस्तरसे उठा नही जाता, जरा भी नही सरका जाता । यो कुछ हमदर्दीकी बाते हुई । वह मित्र चला गया, उधर रातको ही वह रोगी मित्र कूच कर गया । सुबह जब वह मित्र आया और अपने रोगी मित्रको वहाँ न पाया तो घर वालोसे पूछा कि हमारा मित्र कहाँ चला गया ? तो घरके लोग बोले– वह तो दुनियासे चला गया । तो वह मित्र झुँझलाकर बोला– अरे कल शामको वह मित्र हमसे बिल्कुल झूठ बोल रहा था । कल तक तो कहता था कि बिस्तरसे उठा जाता नही, आज उसे दुनियासे भी चल देनेकी ताकत आ गई । तो इस जीवको कैसे रोका जाय ? इसके रोकनेकी किसीमे ताकत नही । ऐसी ही बात भावोकी है, विचारोकी है, ज्ञान ध्यानकी है । अपने अन्दरमे ज्ञान ध्यान करने विचार करनेकी बात है । उसे रोकनेकी ताकत किसमे है ? तो अपना ध्यान अपने आपके आत्मानुभवमे लगे तो यह तो हमारे बडे कल्याणकी बात है अन्यथा तो जन्म-मरण हो ही रहा है ।

सिद्धप्रभुमे अवगाहनत्व गुण—प्रभुमें अवगाहन गुण प्रकट हुआ है। अवगाहन कहते है समा जानेको। तभी तो देखा जाता है कि एक सिद्ध विराजे है, उसके नीचेके ढाई द्वीपसे, जिस स्थानसे जो भी साधु निर्वाण प्राप्त करे ठीक सीधे वहाँ जाकर समा जाता है। यहाँ हम आपसे कोई समा तो नही पाते। सब न्यारे-न्यारे बैठे है। अवगाहन गुण रुक गया। आयुकर्मके उदयसे सबका तत्त्व न्यारा न्यारा हो गया, सब जुदे-जुदे शरीरमे रुके है, न वहाँ शरीर है, न वहाँ आयुकर्म है। केवल एक ज्योतिमात्र है। जैसे यहां एक प्रकाशमे दूसरा प्रकाश समा जाता है, इसके मायने यह नही कि बस एक ज्योति रह गयी, दूसरी खत्म हो गयी, वे सब अपने आपमे अनन्तशक्तिको लिए हुए है। अपने ज्ञानानन्दका अनुभव करते है, पर अवगाहन गुण ऐसा प्रकट हुआ है कि एकस्थानसे अनत सिद्ध समा जाते है।

ऋषि सतोके स्वरूपावगाहका ध्यान— पूर्वकालमे कल्याणार्थी सन्यासियोने अपने अनुभव लिखे, ससारसकटोसे छूटनेके उपाय लिखे, उन्होने अपने आपकी ईमानदारीसे अपनी बुद्धि बलके अनुसार कोशिश यह की कि हम वस्तुका स्वरूप यथार्थ लिख सके। इस दृष्टिसे जब हम देखते है तो किसी भी शास्त्र को उठा लो, उनके मूल प्रणेताओके विचारोका परिचय करो तो प्रत्येक शास्त्रमे आत्मकल्याणके उपायकी कोई झलक

मिलती है, लेकिन वह टिक यो नही पाती कि वह एकान्त हो जानेसे वस्तुस्वरूपसे दूर हो जाता है, वहा है स्वरूपाश। जिस दर्शनका यह मत है कि आत्मा तो विश्वमे एक है और जीव अनेक है और इन जीवोमे आत्माका प्रकाश सहयोग दे रहा है। यह जीव जब अपना अस्तित्व मानकर कि मैं यह हू, ऐसा अभिमान रखकर इस आत्मप्रकाशसे बढ-बढकर चलता है तो इसे ससारमे रुलना पडता है और जब यह जीव अपने अस्तित्वको उस आत्मप्रकाशमे मिला देता है, अपने अस्तित्वको मिटा देता है, उसमे गर्भित हो जाता है तो उसका निर्वाण होता है। बात इन शब्दोमे कुछ सीधीसी है, पर ऐसा ही स्पष्ट मान लिया जाय तो यह उपाय विपरीत बन जाता है। पर इसका कुछ मर्म देखो तो इस उपायके सुननेमे भी हमे कोई उपाय मिलता है। एक चैतन्यस्वरूप है। जैसे अन्य दार्शनिकोने आत्माको कहा। चैतन्यस्वरूप नाना तो नही होते और चैतन्यस्वरूप एक भी नही होता। वह तो स्वरूप है, जो भी चैतन्यस्वरूप है उस चैतन्यस्वरूपसे जब यह जीव जिसे हम आप आत्मा भी कह सकते, क्योकि जीव और आत्मा एकार्थ-वाचक शब्द है। यहा जीव शब्दसे कह लीजिये, उस प्रकरण का मर्म जाननेके लिए जब यह जीव अर्थात् ससारी प्राणी अपने उस चैतन्यस्वरूपको भूलकर अपना एक जुदा अस्तित्व समझकर जो कि रागद्वेष मोहादिक विभावोमे प्रकट होता है

तब स्वरूपसे बढ-बढ़कर चलता है, ससारमे रुलता है और यह अपने अस्तित्वको जब चैतन्यस्वरूपमे मिला देता है, था तो वही स्वरूप, पर उससे दूर होकर कुछ नाना दिख रहा था तो उस स्वरूपमे अपनेको मिला देनेपर इसका निर्वाण हो जाता है अर्थात् शुद्ध चिन्मात्र रह गया, बस यही निर्वाणकी स्थिति है। वहां क्या है? अवगाहन सूक्ष्मत्व शक्ति ये सब गुण विकसित होते हैं। जैसा सिद्धप्रभुका विकास है वैसी ही हम आपमे शक्ति है। हम अपने आपको सम्हालें तो हम उस स्थितिको प्राप्त कर सकते है जहा फिर भविष्यमे सदाके लिए किसी भी प्रकारके उलझन और सकट नही रह सकते।

संसारकी स्थितियोंमे अगुरुलघुत्वका अभाव— सिद्धभगवानमें अगुरुलघु गुण प्रकट हुआ है। इस अगुरुलघु गुणका बिगाड करने वाले गोत्रकर्मके उदयसे यह जीव ऊँच नीच कुल मे उत्पन्न होता था। अब गोत्रकर्मका अभाव होनेसे कुलोका जन्म छूट गया। अब वे छोटे बड़े न कहलायेगे, किन्तु जो है एक रूप जैसे तैसे ही अथवा सर्वोत्कृष्ट सर्वोच्च ही कहलायेंगे। वस्तुतः देखो तो जितने भी जन्म है वे सब अधम ही है। किसको हम उच्च बोलें कि जिसके दो-चार बार मिलनेके बाद फिर संसारमे रहते हुए उसको नीच कुल न मिले? ऐसे जन्म होते ही नही। अभी कोई राजा हो और मरकर कीट हो गया तो उस राजापनेकी ऐंठका क्या महत्त्व रहा? और ऐसी

ऊँचाई नीचाई मरणके वाद तो होती ही है, पर अनेक ऊँचा नीचाई तो जीवनमे भी देखी गई। तो ससारमे कोई भी स्थि वाछनीय नही है, जिसपर यह निर्णय किया जा सके कि ब यह स्थिति सर्वोत्कृष्ट है और यही सर्वसारभूत वात है, ऐस यहाँ कोई स्थिति नही है। क्योंकि क्लेश सक्लेश सबमे पा जा रहे है। छोटा हो, वडा हो, घनी हो, निर्धन हो सव संक्लेश पाये जाते है। हम किसको समझ लें कि यह वडा है और बडा ही रहेगा ?

अपनी सम्हालसे ही अपना उत्थान– आदिनाथ भगवान के पोता मारीचकुमार जब यह जान गये समवशरणमे कि हमारे कुलमे इक्ष्वाकु वशमे तीर्थङ्कर यह मैं मारीचकुमार होऊँगा, यह बात जानकर उनको अहंकार हो गया, और उन्होने कुछ मत-मतान्तर जैसी प्रवृत्तियाँ भी कर डालीं। हुआ क्या उस आत्माका कि बहुतसा समय तो निगोदिया बनकर व्यतीत करना पडा, अनेक कुगतियोमे जन्म लेना पडा। आखिर अन्तमे सिहके भवसे यह जीव सुल्टा, जब कि सिह एक मुनि-राजके समक्ष आया मासखण्ड मुखमे रखे हुए, आया तो था वह गुस्सेमे, पर मुनिराजकी शान्त मुद्राको देखकर वह एकदम शान्त हो गया। यहाँ भी देख लो---जो आदमी भैंसा, कुत्ता, बन्दर आदिक जानवरोको गुस्सेसे देखने लगता है, उन्हे कुछ छेडनेका प्रयास करता है तो वे उस आदमीपर आक्रमण कर

देते है, पर जो आदमी विना उनकी ओर निगाह किये या सम्यग्दृष्टिसे सीधा चला जाता है उसके सीधेपनको देखकर वे भैंसा, कुत्ता, बन्दर आदिक पशु भी शान्त हो जाते है, उस पुरुषको कोई बाधा नही पहुचाते है। तो ऐसे ही वह सिह मुनिराजकी शान्त मुद्राको देखकर शान्त हो गया। मुनिराजने उसपर दया करके उसे सम्बोधा-- अरे तू निकट भव्य आत्मा है, संसारसे पार होने वाला है, इतना उच्च होकर तू इस पर्यायमे हिसा कर रहा है। आखिर मुनिराजके कुछ संकेतोको जानकर उस सिहने समस्त प्रकारके पापोका त्याग किया और बडे सयमसे रहने लगा। संन्यासमरण करके देव हुआ और और अन्तमे वही देव एक दो पर्याय बाद महावीर स्वामी तीर्थङ्कर होता है। तो छोटेका उत्थान हो सकना और बडेका पतन हो सकना यह तो इस संसारमे चल रहा है। ससारकी स्थितियोका कुछ भी भरोसा नही है। अपने आपके अन्दर कुछ निरखना होगा। समस्त समृद्धिया अपने आपके अन्दर मौजूद है, विद्यमान है। अपनेसे बाहरमे कही भी सुख-शांति की प्राप्ति नही हो सकती। सब कुछ अपनेमे ही है। अपना ज्ञान, अपना आनन्द अपने आत्मामे ही है। जब कभी हम बाहरसे अपने उपयोगको हटाकर एक अपने ज्ञानस्वरूपमे ही अपने उपयोगको लगाते है, उसीमे तन्मय हो जाते है उस समय एक अद्भुत आनन्दकी झलक मिलती है। यदि वही

अद्भुत आनन्द कुछ स्थिरताको प्राप्त हो जाय तो उस ही मे यह सामर्थ्य है कि भव-भवके बाँधे हुए पापकर्म क्षणभरमे ही ध्वस्त हो जाते है।

पदार्थके छह साधारण गुणोमे अस्तित्व और वस्तुत्व गुण—अगुरुलघु शब्दका कई जगह कई अर्थोंमे प्रयोग होता है। अगुरुलघु समस्त पदार्थोंमे होता है। प्रत्येक पदार्थमे ६ साधारणधर्म माने गए हैं। उन ६ बातोके परिचयसे यह स्पष्ट विदित कर लेंगे कि ओह वस्तुके इसी स्वरूपके कारण इस जगतकी व्यवस्था बनी हुई है। कोई अलगसे ऐसा ईश्वर नही है जो कि जगतकी इस व्यवस्थाका करने वाला हो। यहा कोई किसीका कर्ता हर्ता नही। यह जीव ही स्वय अपने भावो से अपनी सृष्टि करता हुआ चला जा रहा है। क्या है वे ६ गुण ? पहिला तो है अस्तित्वगुण, जिसके कारण वस्तु है। आप बतलावो पदार्थमे अस्तित्व है या नही ? पदार्थ है या नही ? है। है के मायने है कि अस्तित्व गुण है, सत्त्व है, तब तो वह है। अच्छा, है तो हो गया, पर यह है तब तक नही वन सकता जब तक कि वह पदार्थ अपने ही स्वरूपसे तो हो और परके स्वरूपसे न हो। स्पष्ट समझमे आता है कि यह पुस्तक है, अपने ही स्वरूपसे है, किसी परके स्वरूपसे नही है। पुस्तक पुस्तकमे ही है, पुस्तकके अतिरिक्त उसमे अन्य कुछ नही है। प्रत्येक पदार्थ अपने आपके स्वरूपसे है, परके स्वरूपसे

नही है । पानीमें तेल डाल देते है, वह तेल पूरे पानीमे फैल जाता है, फिर भी तेलमे तेल है, पानीमे पानी है । पानी तेलरूप नही बन गया और तेल पानीरूप नही बन गया । यो कोई भी पदार्थ किसी अन्यरूप नही बनता । प्रत्येक पदार्थ अपने ही स्वरूपसे है किसी परके स्वरूपसे नही है । कितना ही किसीसे राग हो, पिता-पुत्रका कितना ही प्रेम हो, भक्तिपूर्वक हो, और वे चाहते हो कि हम एक हो जावे, कितनी ही चेष्टा करें, पर पिताका आत्मा अपने स्वरूपसे ही है, पुत्रके स्वरूपसे नही हो सकता, और उस पुत्रका आत्मा अपने स्वरूपसे है, पिताके स्वरूपसे नही हो सकता । तो ये पदार्थ है पर तब टिके हुए है जब इन पदार्थोंमे यह वस्तुत्व गुण पाया जा रहा है कि वे अपने स्वरूपसे है, परके स्वरूपसे नही हैं ।

पदार्थमें द्रव्यत्व गुणका महत्त्व— अस्तित्व वस्तुत्वकी बात होनेपर अब और कल्पना करो, इतना ही रहे यह पदार्थ, इतनेसे काम नही बनता । पदार्थ है और अपने स्वरूपसे है, मगर यह है कब रह सकेगा, जब यह निरन्तर परिणमनशील रहे, परिणमता रहता है तब इसका हैपना है । परिणमन मायने अवस्था । कोईसी भी चीज बतलावो कि जो है तो सही, पर उसका न आकार है, न अवस्था है, न कोई ढग है, न रस है, न गंध है, न कोई स्थिति है, न कोई परिणति है । और हो पदार्थ तो बतलावो । ऐसा हो तो मानकर अनेक

दार्शनिकोने यह बात कही, बस तत्त्व क्या है ? एक ब्रह्म है, और उसका आकार-प्रकार क्या है ? कुछ नही है। वह तो अपरिणामी है। अगर रूप प्रकार ये सब मायामे आ जायें, और जिसकी कुछ भी स्थिति नही, कुछ भी परिणति नही, तो फिर उसका सत्त्व क्या होगा ? तो अस्तित्व और वस्तुत्वके बाद भी द्रव्यत्व गुण मानना होगा, तब हम वस्तुके स्वरूपकी पहिचान कर सकेंगे। प्रत्येक पदार्थ हैं, निरन्तर परिणमते रहते हैं, किसीका परिणमन समझमे आ रहा, किसीका नही समझमे आ रहा, मगर वे परिणमते निरन्तर है। ७ वर्षका बालक १ वर्षके बादमे ५-६ अगुल बढ गया है तो क्या ऐसा होता रहा कि सालमे ११ महीना २९ दिन तो जैसाका तैसा रहा और आखिरी रातभरमे बढ गया या महीनेमे २९ दिन बिल्कुल न बढा और ३०वें दिन बढ गया या दिनके २४ घटेमे २३ घटे न बढा और २४वे घटेमे बढ गया या घटेमे ५९ मिनट तक न बढा और ६०वें मिनटपर एकदम बढ गया ? तो ऐसी बात नही है। वह तो निरन्तर कुछ न कुछ बढता रहा है। तो प्रत्येक पदार्थ निरन्तर परिणमते रहते है।

अगुरुलघुत्व गुणसे पदार्थोंकी सहज व्यवस्था—पदार्थ परिणमते तो है, पर कभी ऐसा नही होता कि कोई पदार्थ किसी दूसरे पदार्थरूप परिणम जाय। यदि ऐसा होने लगे तो फिर कोई वस्तु ही न रहे, वस्तुव्यवस्था ही बिगड जाय। तो

वस्तुकी व्यवस्था तभी बनी हुई है जब कि उसमें अगुरुलघुत्व गुण पाया जा रहा है अर्थात् प्रत्येक वस्तु अपने-अपने रूपसे परिणमती है, कोई भी वस्तु किसी दूसरेके रूपसे नही परिणमती। इसका नाम है अगुरुलघुत्व गुण। इस शब्दमे यह अर्थ कहांसे निकला ? तो इस अगुरुलघुत्वमे दो शब्द है - गुरु और लघु। अ मायने नही। पदार्थ न तो गुरु बन जाय और न लघु बन जाय। गुरु मायने वजनदार और लघु मायने हल्का। तो पदार्थ न वजनदार बन जाय और न हल्का बन जाय, यह कहलाता है अगुरुलघुत्व। इसका यह भाव है कि एक पदार्थसे किसी दूसरे पदार्थमे जाकर कुछ बढ न जाय और एक पदार्थ से निकलकर उसमे कुछ घट न जाय।

जीवोंकी योग्यतासे परिचर्याका लाभ— हम आप जो कुछ भी करते है वह अपनेमे करते है, दूसरेमे कुछ नही करते। केवल एक यह भ्रम मात्र है कि मै किसी दूसरेका कुछ कर देता हूं। ये छोटे-छोटे साल-साल दो सालके घरके बच्चे, जिनकी आप इतनी फिक्र करते है, जिनको रात दिन आप अपने चित्तमे बसाये रहते है, जिन्हे आप सदा खुश देखना चाहते है, जिनका मन बहलानेके लिए आप अनेक प्रकारके साधन जुटाते रहते है, जरा यह तो बतलावो कि उन बच्चों का भाग्य बडा है या आपका ? अरे उन बच्चोका ही भाग्य बड़ा है तभी तो आपको इतनी अधिक उनकी फिक्र रखनी

पडती है, उनकी नौकरी करनी पडती है। उन बच्चोके पुण्य से प्रेरित होकर ही तो आप उनको सेवा कर रहे है। वडे लोग ऐसा सोचने लगते है कि हम भी तो जब छोटे थे, दूसरो की गोदीमे ही खेला करते थे, सभी लोग हमे हाथोहाथ लेते थे, सभी लोग हमारी बडी खुशामद करते थे, अब क्या हो गया जो हमे कोई नही पूछता है ? अरे हो क्या गया, आप पहिले अपने साथमे पुण्यकी गठरी बाँधकर लाये थे, उसके कारण आपकी इतनी अधिक सेवा हो रही थी, लेकिन आप जैसे-जैसे बडे होते गये, विषयकषाय मोह रागद्वेष आदिकमे जैसे-जैसे लगते गये वैसे ही वैसे आपका सारा पुण्य क्षीण होता गया। इस कारण अब आपकी कोई पूछ नही हो रही है। तो यहाँ क्या निर्णय करना कि मै गुरु हू और ये लघु है।

सिद्धोमे स्वगत अगुरुलघुत्व—एक अगुरुलघु नामकर्म है, जिसके उदयसे न तो यह शरीर लोहेकी तरह भारी हो जाता है और रुईकी तरह हलका भी हो जाता है। एक अगुरुलघु सहज भाव है जिसका घात गोत्रकर्मके उदयसे हो रहा है। गोत्रकर्मके उदयसे यह जीव ऊँच-नीच कुलमे उत्पन्न हुआ करता है। तो अब आप देख लीजिये—नामकर्मका तो अभाव हो जानेसे शरीरका अगुरुलघुपना तो रहा नही, उसकी तो चर्चा ही छोडो, और गोत्रकर्मका अभाव होनेसे ऊँच नीच कुल

मे पैदा होवे, ऐसा गुरुलघुपना अब न रहा और वस्तुस्वरूपका अगुरुलघु तो सदा ही पाया जा रहा है। सिद्ध हो गए, पर वे अपनेमे ही अपने ज्ञान और आनन्दको भोग रहे है। एक सिद्ध मे अनेक सिद्ध समाये हुये है और सबका केवलज्ञान अपना जुदा-जुदा परिणमन है, अनत आनन्दका जुदा-जुदा परिणमन है। जैसे एक ज्योतिमे दसो ज्योति आ जायें तो साधारण रूपसे देखनेपर मालूम होता है कि वह ज्योति एक है, पर अधिक ज्योतिको हटाते समय यह स्पष्ट विदित हो जाता है कि इस ज्योतिमे अनेक ज्योतियां समायी हुई थी, यो ही एक मे अनेक सिद्ध समाये हुए है, फिर भी सबका अपना-अपना जुदा-जुदा परिणमन है, पर है समान और सर्वोत्कृष्ट। तो सिद्धोमे अगुरुलघुत्व गुण प्रकट हुआ है उनका यहाँ स्मरण किया गया ह।

अव्याबाध गुणके अधिकारी—जो जीव केवल जीव रह गए है अर्थात् ससारावस्थामे जीवके साथ जो कुछ और विडम्बनायें लदो रहती है जैसे शरीर, कर्म, रागद्वेषादिक, अज्ञानमय भाव जो कुछ उपाधि और औपाधिक तत्त्व लगे रहते है उन सबसे छूटकर जब यह जीव केवल जीव रह जाता है, जीवका स्वरूप है ज्ञान और आनन्द अर्थात् ज्ञानभाव और आनन्दभाव, जब अपने शुद्ध विकासमे रह जाता है तब उसे सिद्धभगवान कहते है। आत्माकी अयत्त विशुद्ध अवस्था, ऐसी

अवस्था पानेका भाव बने और उसकी ही रुचि जगे तो समझिये कि हमने मनुष्य-जन्म पाया, सो अब सफल हुआ। नही तो इन मायामयी धन-वैभव, कुटुम्ब, परिजन, इज्जत, पोजीशन आदिकके विकल्प बनानेसे आत्माको लाभ क्या मिलेगा ? अपना मुख्ये प्रोग्राम अन्तरङ्गमे यह बनावें कि मुझे तो शुद्ध अवस्था प्राप्त करनी है, उससे कम कुछ भी अवस्था प्राप्त करनी योग्य नही है। जिन्होने ऐसी परम अवस्था प्राप्त की उन सिद्धभगवानके अव्याबाध गुण प्रकट हुआ है।

व्याबाधामय संसार– बाधा, उसमे आ और लगा दो तो आ बाधा, अर्थात् चारो तरफसे बाधा होना, वि और लगा दो तो व्याबाधा हो गया। विशेष चारो तरफसे बाधायें होना उसे कहते है व्याबाधा। व्याबाध जब न रहे तब उसे कहते है अव्याबाध। प्रभुमे अव्याबाध गुण है। तो संसारमे व्याबाधाका अवगुण है। कितनी विशेष चारो तरफसे बाधायें लगी है ससारमे। इन बाधावोको भोग करके बता सकना तो आसान हो रहा, पर इन बाधावोका असली स्वरूप शब्दोसे बताना कठिन हो रहा। शरीरमे बँधे है और शरीरको आपा मान रहे है, यह मै हू, यह भ्रम साधारण बाधा नही है। इस जन्ममरणका परम्पराका कारण भ्रम है। शरीर लगा है तो इसकी दृष्टि विशेष हो जानेसे बुद्धि भी मलिन हो गयी। आत्माको क्या करना चाहिये था और कर्तव्यकी सुगम बात

भी नही कर सक रहा। अपनेमे एक बडा भ्रम फैला लिया है, इतनी कायरता जग गयी है कि कोई कहे कि शास्त्र पढ़ लो, तो कहते है अरे आलस्य आता है। यदि ऐसा कहो कि प्रभु जाप कर लो, देवदर्शन कर लो, कुछ थोडा सयम बना लो, कुछ खानेकी हद बना लो, तो कहते हैं कि हमसे नहीं किया जाता है। जरा विचार तो करो, सडकोपर चलने वाले छोटे-छोटे (नाटा) बैल, वे भी बूढे, हड्डियाँ निकली, फिर भी वे जिस गाडीमे जुतते है उसपर बहुत बडा बोझा लादा जाता है। यहाँ तक कि उनके कधेसे खून भी टपकता है, फिर भी न चलें तो डडोसे पीटे जाते है। अरे वे भी तो हम आप जैसे ही जीव है। हम आप भी तो कभी उस अवस्थामे थे अथवा हम आप भी कभी वैसी अवस्था पा सकते हैं। तब तो फिर ये सब दुःख सह लिये जायेंगे। अभी तो जब सुयोग पाया है, उदय पुण्यका मिला है तब इन साधनोके बीच ज्ञानवृद्धिका, धर्मसाधनाका, प्रभुभक्तिका उपाय नही रुचता, भाव नही बनता, यह एक बहुत बडी भूल है, और इस भूलका परिणाम कौन भोगेगा ? कितना व्याधिया हैं इस ससारमे ? अरे इन विषयोके सुख भोगनेमे भी तुरन्त कितनी व्याधायें लगी हैं ? लेकिन उन्हे सहते जाते है और उन्हीसे मौज मानते जाते है। जैसे तेज लाल मिर्च खाने वाले लोग सी-सी करते जाते है, आँखोसे आंसू भी गिरते जाते है और यह भी कहते जाते हैं

कि और लाल मिर्च लावो। यों ही बाधाये सहते जाते है जिनके कारण जिनके रागसे जिनके मोहसे क्लेश पा रहे है, उसका उपाय समझ रहे है उन्हीको मनाना, खुश करना। उनके लिये रागी बने, दीन बने, कायर बनकर बात करें, उपाय सब बेढंगे रचे जाते है और इन विषयोमे ही मस्त रहते है। ऐसी प्रवृत्तियाँ बनानेसे जीवनमे कुछ सुधार नही है। यह ससार'बाधाओका घर है। इन बाधाओसे जो अन्यत रहित हो गये, भविष्यमे कभी भी जिनके ये बाधायें न आ सकें, वे है सिद्धभगवान।

धर्मका सर्वतः मधुर परिणाम—लोग शका रखते हैं कि धर्म करना किसे कहते, कैसे धर्म किया जाता, किसका नाम धर्म है? अरे इसी चिन्तनका नाम तो धर्मसेवन है कि अपनी वर्तमान अवस्था देखे, अपने आत्माका सहजस्वरूप देखें और जो आत्मा इस स्वरूपकी साधनासे महान् हुए है, सिद्ध भगवन्त हुए है, सर्वोच्च हुए है, उनकी परख करे, उन जैसा होने की रुचि रखें, जिस मार्गसे चलकर वे प्रभु हुए है उस ही मार्गसे चलनेकी रुचि बनायें, ऐसा चिन्तन जिस ध्यानमे हो वही तो धर्मसेवन है। धर्ममे दुःख नही है। धर्मसे इस समय भी आनन्द है और आगे भी आनन्द है, क्योकि धर्म जिसके प्रकट हुआ है, आत्मस्वभाव जिसका पूर्ण विकसित हुआ है, ऐसे सिद्ध भगवन्तोके आनन्द ही आनन्द है और उस पथमे

लगने वाले साधु सत जनोके आनन्द ही आनद है । तो ससार बाधाओका घर है । वेदनीय कर्मका अभाव हो जानेसे अब सिद्ध भगवन्तके रचमात्र भी औपचारिक बाधाओंका कारण भी न रहा तो बाधावोका सर्वथा अभाव हो जाता है। ऐसे सिद्ध भगवानमे ८ गुण होते है । अब सिद्धभगवानके प्रकरण मे अन्तिम गाथामे सिद्ध होनेके पूर्व जो साधु-अवस्थामे उन्होने विशेषतायें पायी उन विशेषताओका स्मरण करते हुए अतिम वदना करते है अर्थात् इस पाठमे सिद्धभगवानको नमस्कार करते है ।

तवसिद्धे णयसिद्धे संजमसिद्धे चरित्तसिद्धे य ।
णाणम्हि दसणम्हि य सिद्धे सिरसा णमसामि ॥६॥

तप.सिद्ध—ऐसे सिद्धभगवन्तोको सिर झुकाकर नमस्कार करता हू जो तपश्चरणसे सिद्ध हुए है । साधु जन सिद्ध होने के प्रयत्नमे रत्नत्रयकी साधना करते है । सिद्ध होनेका मार्ग तो एक ही है, अपने आत्माके सहजस्वरूपका श्रद्धान करना, उसका उपयोग रखना और उस सहज ज्ञानस्वरूपमे अपनेको रमाना । यह सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान, सम्यक्चारित्र निर्मल होकर जहाँ उत्कृष्ट रूपसे बर्तने लगता है बस वहाँ निर्वाण हो जाता है । तो मोक्षका मार्ग तो एक इस अन्तस्तत्त्वसे सम्बध रखता है । इसका श्रद्धान, इसका ज्ञान और इसका आचरण मोक्षमार्ग है । ऐसा श्रद्धान करने वाले साधु जन उनकी अपनी

विशिष्ट योग्यता होनेसे वे कोई तो तपश्चरणमे मुख्य वृत्ति रखते है, कोई ज्ञानमे, कोई सयममे, इस प्रकारसे उनकी कुछ वृत्तिया विशिष्ट होनेसे उनके भेदोसे स्मरण किया जा रहा है कि जो तपश्चरणकी मुख्यता करके सिद्ध हुए है वे तप सिद्ध-भगवान है।

तपःसिद्धताका एक उदाहरण—जैसे उदाहरणमे बाहुबलि स्वामीको ले, उनका तपश्चरण बहुत ही अद्भुत था, जिसका प्रताप और यश अब भी गाया जा रहा है। उनको हुये कितने वर्ष हो गए होंगे ? अरब खरब वर्ष नही, बल्कि असख्याते वर्ष हो गए, कुछ कम एक कोडाकोडी सागर हो गया है, फिर भी अभी तक उनका प्रताप और यश चल रहा है। इसी से समझ लो कि उनके तपश्चरणका उस समय भी कितना प्रभाव था ? अब भी बाहुबलिकी प्रतिमाको निरखकर एक बार तो मन सबका कह उठता है कि धन्य है ऐसा तपश्चरण। एक वर्ष तक एक ही आसनसे कायोत्सर्ग मुद्रामे खडे रहकर आत्मध्यान करते रहे। उतने समय तक न उन्होने करवट बदली, न चले-फिरे, न चर्या किया। कितना अद्भुत उनमे पराक्रम था, सहनन भी अपूर्व था। अति हीन सहनन वाले आजकलके कुछ मनचले लोग ऐसा कह बैठते है कि यह तो सिर्फ बात ही बात है, ऐसा हो कहां सकेगा, पर ऐसी बात नही है। उनमे ऐसा अद्भुत पराक्रम ही था। उनको जब

शुक्लध्यान हुआ, उत्कृष्ट निर्विकल्पसमाधि हुई तो फिर अन्त-र्मुहूर्तमे केवलज्ञान प्राप्त हो गया। तो जबसे वे साधु हुए और जब तक केवलज्ञान नही हुआ उस बीचके समयमे आप देख लीजिये, प्रायः सब समय तपश्चरणमे गया। ऐसे पुरुष कह-लाते है तपःसिद्ध।

नयसिद्ध—कोई नयसिद्ध हुये है। जितने भी सिद्ध हुए हैं सबने अविरुद्ध मार्ग अपनाया, लेकिन कुछ रुचिके ढंगसे, कुछ अयोग्यतासे कुछ साधनामे भेद रहे। जिनको निश्चयनयका आलम्बन बहुत अधिक सुहाता था वे व्यवहारसे विरोध करते नही, किन्तु एक रुचि जग गयी, जिसकी मुख्यता बन गयी और ऐसी मुख्यता वाले भी अपने अन्तरगमे निर्विकल्पकी साधना बनाकर उसी रत्नत्रयका लाभ लेकर सिद्ध हुये है वे पुरुष नयसिद्ध कहलाते है। उनमे अनेक ऐसे भी है कि जिन्होने व्यवहारप्रवृत्तिको नही छोड़ा, निर्दोष व्यवहारप्रवृत्तिको करते ही रहे और पतीतिमे यह स्वभाव रहा। यह स्वभाव प्रतीतिमे न रहे तब तो काम कोई नही होता। ऐसे अनेक नयसिद्ध हुए है। उन सिद्धोको सिरसे नमस्कार करता हू।

संयमसिद्ध और चारित्रसिद्ध—कोई सयमसिद्ध हुए। जीवरक्षा, विषयोसे वैराग्य यह जिनको प्रिय था। अनेक अन-शन, बड़े-बड़े उपवास, इन्द्रियविषयोको नियन्त्रित करनेका प्रयत्न और जीवरक्षाका दयाका बड़ा भाव, ऐसे सयमपूर्वक

जिन्होने जीवन बिताया, तपश्चरण किया और अपनी समता रखी, ऐसे ज्ञानी पुरुषोने अन्तमे रत्नत्रयकी पूर्णताको प्राप्त कर सिद्ध हुए है। ऐसे अनेक संयमी सिद्ध है, उन सिद्धोको मेरा नमस्कार है। अनेक चारित्रसिद्ध है। चारित्र कहते है आत्मरमणको। मोह और क्षोभसे रहित परिणाम, यह साधना जिनकी बनी, ऐसा अपने आपपर नियत्रण हुआ कि जहाँ चाहे जिस स्थितिमे अपने आपके स्वरूपमे रम सकते है। अनेक सिद्ध ऐसे हुए है कि साधु अवस्थामे भोजन, विहार, उपदेश आदि कुछ कर रहे है और उसी प्रसगके बीच अपने निराहार निष्क्रिय आत्मस्वभावकी सुधि आयी तो कुछ क्षण विश्रान्त हो जाते है, ठहर जाते है, क्षणमात्रमे ही वे अपने आपकी समृद्धिका सारा अवलोकन कर लेते है। जिनको अपने स्वरूपपर अधिकार मिला है, ऐसे पुरुष जो किसी भी क्षण अपने आपमे रमण कर लेते है, ऐसी जिनकी वृत्ति बनी, ऐसे चारित्रकी विशेषतासे जिन्होने रत्नत्रयकी साधना की, वे चारित्रसिद्ध सिद्धभगवत है, उनको हमारा नमस्कार हो।

ज्ञानसिद्ध भगवतोको नमस्कार हो। अनेक सिद्ध ज्ञानमे सिद्ध हुए है। सिद्ध तो सभी ज्ञानमे सिद्ध होते है, ज्ञानमे परिपूर्ण होते है, ज्ञानसे सिद्ध होते है, ज्ञान द्वारा ज्ञानकी अनुभूतिकी निरतरतासे सिद्ध होते है, तो भी यहाँ यह बताना है कि जिनके ज्ञानकी विशेषता थी, बाह्य तपश्चरण चारित्र

सयमकी विशेषता न थी तो उन्होने ज्ञानके उपयोगसे, ज्ञानके प्रेमसे, ज्ञानामृतके पानसे परिविशुद्ध होकर निर्वाण प्राप्त किया। ऐसे ज्ञानसिद्ध भगवतोको हमारा नमस्कार हो। यह भगवान आत्मा ज्ञानमय है। ससारावस्थामे अनुसधानी जीवोने राग द्वेषोसे चित्तको रमाकर, ज्ञानको रमाकर अपनी सुध खो दी है। जब कोई आत्मा सुयोगवश अपनी सुध सभालता है, आत्म-स्वरूप निरखकर उसे ही ज्ञानमे रखता है, तो ज्ञानमे ज्ञानको रमानेकी अतिशयतासे वे निर्ग्रन्थ सत निर्वाण प्राप्त करते है, ऐसे ज्ञानसिद्ध भगवतोको नमस्कार हो। दर्शनसिद्ध भगवतो को नमस्कार हो। दर्शनको, चिन्मात्र प्रतिभासको, सम्यग्ज्ञान से कुछ भी तत्त्व जानते हुए अपनेको अवलोकनेसे जिनका प्रताप बढा और इस अन्तः परमार्थ चैतन्यप्रतपनसे विभावकर्म नष्ट हुआ ऐसे दर्शनसिद्ध भगवतोको हमारा नमस्कार हो।

इस सिद्धभक्तिमे सिद्धप्रभुकी भक्ति की गई है। साधु समाधिबलसे सिद्ध अवस्थाको प्राप्त करते है, जिस अवस्थामे अनन्त ज्ञान दर्शन सुख शक्ति प्रकट रहती है। अनादिबद्ध आत्मा वस्तुस्वरूपकी परीक्षा करके जब आत्मस्वभावमे और अनात्मभावमे भेदज्ञान कर लेता है तब परभावसे हटकर, स्वभावमे रमकर आत्मीय शुद्ध आनन्दका अनुभव करता है। ज्ञानमे ज्ञानस्वरूपका अनुभव करता है तो इस ज्ञानानुभूतिके साथ ही सम्यक्त्व प्रकट होता है। अब ज्ञानानुभूतिकी स्थिरता

को उनकी वृत्ति चलनेके लिये उनकी वृत्ति जगती है। एतदर्थ वे अहंकार ममकारके आश्रयभूत परिजन वैभव सचित्त अचित्त को परिग्रहको दूर करके निर्ग्रन्थ होते है। ये निर्ग्रन्थ सत जन शुद्ध ज्ञायकस्वभाव निज अन्तस्तत्त्वके निर्विकल्प ध्यानके प्रताप से परमध्यान पाते हैं तव चार घातिया कर्म नष्ट होते है, सो सकलपरमात्मा बनते है, पुनः पुन. शेप अघातिया कर्म नष्ट होते है। सकल कर्मोसे रहित होने पर सिद्धप्रभुके सम्यक्त्व, ज्ञान, दर्शन, अगुरुलघु, अवगाहना, सूक्ष्मत्व, वीर्य, निरावाध ये आठ गुण प्रकट होते है। ऐसे अष्टकर्मरहित, अष्टगुणसहित सिद्ध भगवतोको हमारा नमस्कार हो।

अब सिद्धभक्तिकी अञ्चलिका प्रारम्भ होती है। इच्छामि भते सिद्धभत्तिका उस्सग्गो कओ तस्सालोचेउ सिद्ध-भत्तिकाउस्सग्गो कओ तस्सालोचेउं सम्मणाणसम्मदसणसम्म-चारित्तजुत्ताण, अट्ठविह कम्मविप्पमुक्काण, अट्ठगुणसपण्णाण, उड्ढलोय मत्थयम्मि पइट्ठियाण, तवसिद्धाण, णयसिद्धाण, संजमसिद्धाण चरित्तसिद्धाण अतीदाणागत वट्ठमाणकालत्तय सिद्धाण, सव्वसिद्धाणं विच्चकाल अच्चेमि, पूजेमि, वदामि णमसामि, दुक्खक्खओ, कम्मक्खओ, बोहिलाहो, सुगइगमण, समाहिमरण, जिणगुणसपत्ति होउ मज्झ। हे भगवन्! सिद्ध भक्तिका जो कायोत्सर्ग किया है उसकी आलोचना करना चाहता हू। अथवा हे भगवन्! सिद्धभक्तिका कायोत्सर्ग करना

चाहता हूं, उसकी आलोचनाके लिये सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान, सम्यक्चारित्रसे युक्त, अष्ट प्रकारके कर्मोंसे सदाके लिये पूर्णतया मुक्त, अष्टगुणोसे सम्पन्न, ऊर्ध्वलोकके मस्तकपर प्रतिष्ठित, तपःसिद्ध, नयसिद्ध, सयमसिद्ध, चरित्रसिद्ध, अतीत अनागत वर्तमान तीन कालोमे सिद्ध, सर्वसिद्धोको नित्यकाल अर्चता हू, पूजता हू, वदता हू, नमसा हू । मेरे दुःखोका क्षय, कर्मोका क्षय, बोधिका लाभ, सुगतिमे गमन, समाधिमरण और जिनगुणोकी संप्राप्ति होवे । इसके बाद नौ बार नमस्कार मत्र पढा जाता है । णमो अरहंताणं, णमो सिद्धाण, णमो आयरियाणं, णमो उवज्झायाणं, णमो लोए सव्वसाहूणं ।

ॐ ह्री श्री अनन्तानन्तपरमसिद्धेभ्यो नमो नमः ।

॥ सिद्धभक्ति प्रवचन समाप्त ॥

चित्स्वंस्तवनम्

[१०५ क्षु० मनोहर जी वर्णी (सहजानन्द महाराज)]

** प्रभजामि शिवं चिदिदं सहजम् **

शिवमार्गनमूलमजं शिवदम् निजकार्यमुकारणरूपमिदम् ।
भवकाननदाहविदाहहरम् प्रभजामि शिवं चिदिदं सहजम् ॥१॥

भवसृष्टिकरं शिवसृष्टिहरम् शिवसृष्टिकरं भवसृष्टिहरम् ।
गतसर्वविधानविकल्पनयम् प्रभजामि शिवं चिदिदं सहजम् ॥२॥

शिवसृष्ट्ययकरं भवसृष्ट्ययहरम् भवसृष्ट्ययकरं शिवसृष्ट्ययहरम् ।
गतसर्वनिषेधविकल्पनयम् प्रभजामि शिवं चिदिदं सहजम् ॥३॥

परिणामगतं परिणामरहम् परिणामभवं परिणामयुतम् ।
उपपादविनाशविकल्परहम् प्रभजामि शिवं चिदिदं सहजम् ॥४॥

स्वचतुष्टयमूलमभिन्नगुणम् मतिदर्शनशक्तिसुशर्ममयम् ।
अचलं शिवशङ्करदृष्टिपथम् प्रभजामि शिवं चिदिदं सहजम् ॥५॥